Series in Hindi titled "Excerpts from my Jungle Diary" by Pankaj Oudhia, written between June 04 to September 09, 2009.

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-1

- पंकज अवधिया

खोरबहरा, कौहुआ, कुल्लु और गोरे साहब की रेलगाडी

"साहब, ये कौहुआ का पेड है। मै अपने बचपन से इसे देख रहा हूँ। इसकी हम पूजा करते है।क्यो? क्योकि इसने हमारे गाँव को आज तक नाना प्रकार की बीमारियो से सुरक्षित रखा है। आज भी मै इसकी छाल से बनी चाय से ही दिन की शुरुआत करता हूँ। मुझे मालूम है कि इससे ह्रदय मजबूत रहता है। दूर गाँव के लोग जब इसे जलाठ लकडी के लिये काटने आये तो मै लेट गया। जान दे दूंगा पर इसे काटने नही दूंगा। हमारे सियान (बुजुर्ग) बताते है कि गोरे साहब पूरा जंगल यहाँ से ले गये पर इस पेड की महत्ता को देखते हुये बिना काटे छोड दिया। आप जो ये नाला देख रहे है, ये अभी सूखा है पर बरसात मे लबालब भर जाता है। बरसात और गर्मी मे यह पेड इतना पानी पी लेता है कि पूरी गर्मी निकाल लेता है। ये हमारी इतनी सेवा करता है पर हम इसके लिये ज्यादा कुछ नही कर पाते है।" रायपुर से पचास-पचपन किमी की दूरी पर श्री खोरबहरा यह सब मुझे बता रहे थे। वे एक मन्दिर के पुजारी है। मै अक्सर यहाँ आता रहता हूँ। यहाँ देवी का मन्दिर है और इस ओर के जंगल मे जाने के लिये यही से होकर जाना होता है।

श्री खोरबहरा परिवार वाले थे। वैराग्य और देवी सेवा मे मन क्या लगा, गाँव छोडकर जंगल मे बने मन्दिर मे आ टिके। मै अक्सर उनके साथ पैदल ही जंगल मे लम्बे निकल जाता हूँ। न जाने कितनी जानकारियाँ है उनके पास। घंटो हम चलते रहते है और दुर्लभ वनस्पतियो को खोजते रहते है। रास्ते मे भालू मिल गये तो पहले वे मुझे पेड पर चढाते है फिर खुद चढते है। तेन्दुआ मिल गया तो जोर से चिल्ला कर कहते है कि देवी के मन्दिर तक पहुँच और दर्शन कर, मै आता हूँ, साहब को जंगल दिखाकर। फिर मेरी ओर मुड कर कहते है कि ये देवी के दरबार जा रहा है। मै चौडी आँखो से यह सब देखता रहता हूँ। मै अपने आधुनिक जूतो के बाद भी सम्भल कर चलता हूँ और वे नंगे पाँव गरम धरती पर बेफिक्र से चलते जाते है।

"क्या यहाँ कुल्लु का पेड नही है?" मैने पूछा। कुल्लु यानि स्टरकुलिया यूरेंस जिसे अंग्रेजी मे इंडियन घोस्ट ट्री भी कहते है। सफेद भूत से कम नही दिखता है ये पेड। इसकी गोन्द

की देश-विदेश मे बहुत माँग है। पेड के नरम तने पर एक कुल्हाडी मारी नही कि विनम्रता से पेड गोंद उगलने लगता है। इतनी विनम्रता कि वह सर्वस्व लुटा देता है। उफ तक नही करता। स्वार्थी मनुष्य बिना देरी किये गोन्द बटोरता है और बाजार की ओर निकल पड्ता है। उसे मालूम होता है कि अब दोबारा उसे यहाँ नही आना है। क्यो? क्योकि अब इस पेड को सूखकर मरने से ऊपर वाला भी नही बचा सकता। पथरीली जमीन पर ही यह उगता है। माँ प्रकृति बडी मुश्किल से इन्हे तैयार करती है और एक पल मे ही सब लुट जाता है। बताते है कि सरकार ने कभी इसके एकत्रण पर प्रतिबन्ध लगाया था पर आप तो जानते है कि प्रतिबन्ध इस तरह के दोहन को बढा देते है। प्रतिबन्ध के दौरान (और आज भी) इसकी गोन्द खुलेआम बाजरो मे बिकती रही। पारम्परिक चिकित्सक इस बात को जानते है। इसलिये उन्होने अपने रोगियो को इसे देना बन्द कर दिया है। मै पिछले पन्द्रह वर्षो से इस पेड की प्राकृतिक आबादी पर नजर गडाये हूँ। पहले बहुतायत मे होने वाला यह पेड देखते ही देखते दुर्लभ से दुर्लभतम हो गया। मीलो चलने पर ही एक या दो पेड मिलते है और वो भी छलनी सीने वाले, मौत की बाट जोहते। इस भयावह स्थिति को भाँपते हुये मैने भी इसके विषय मे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान को सार्वजनिक तौर पर बताना बन्द कर दिया है।

“एक पेड है साहब। बडी मुश्किल से बचा के रखा है।“ खोरबहरा ने जवाब दिया। काफी दूर तक पैदल चलने के बाद जब हम उस पेड तक पहुँचे तो पता चला कि गोन्द एकत्र करने वाले वहाँ पहले पहुँच चुके थे। पेड के जानलेवा जख्म को देखकर मन रो पडा। खोरबहरा ने दर्जनो गालियाँ दी उस अज्ञात हत्यारे को और फिर सिर पकडकर बैठ गये।

उस दिन मै आगे वन ग्रामो मे गया तो कुल्लु की बात करता रहा। जिन गाँवो मे ये सैकडो की तादात मे थे वहाँ अब ये खोजे नही मिलते है। और सबसे बुरी बात यह है कि नयी पीढी के युवाओ को इस पेड की भूमिका के बारे मे पता ही नही है। बहुत से युवा तो ये भी नही जानते कि गाँव मे ये है कहाँ?

वापस लौटकर हम फिर उसी सूखे नाले पर पहुँचे। खोरबहरा बोले “ गोरे साहब को यह जगह पसन्द थी इसलिये वे अपनी गाडी यहाँ रुकवाते थे।“ मैने पूछा, “गाडी”? मोटरगाडी?” खोरबहरा ने जो जवाब दिया वह यकीन करने लायक नही था। “गाडी, माने रेलगाडी। पहले यहाँ से रेलगाडी जाती थी। जंगल से लकडी को काटकर बडे शहरो तक ले जाने के लिये अंग्रेजो ने यहाँ छोटी (नैरो गेज की) रेलगाडी चलायी थी। जब काम हो गया तो पटरियाँ निकाल ली गयी।“ जिस जगह की बात मै कर रहा हूँ वहाँ कभी रेलगाडी चलती होगी इसकी परिकल्पना करना भी मुश्किल था। हम बचपन से सुनते रहे

है कि रायपुर और नगरी के बीच रेल मार्ग था अंग्रेजो के जमाने मे पर वह मार्ग यहाँ से गुजरता होगा यह मैने न कभी पढा और न ही सुना। मैने सूखे नाले की तस्वीरे ली। फिर उस नाले मे कुछ दूर तक आगे बढा। यह रेल मार्ग बडा ही मनोरम लगा। अंग्रेजो के समय तो और भी मनोरम रहा होगा क्योकि उस समय यह क्षेत्र घने जंगलो से ढका रहा होगा।

घर लौटते ही मैने इंटरनेट खंगालना शुरु किया इस मार्ग की जानकारी के लिये पर कुछ भी, जी हाँ, कुछ भी नही मिला। मुझे लगता है कि पर्यटको के लिये तरस रहे छत्तीसगढ के लिये यह रेलमार्ग वरदान साबित हो सकता है। इस रेलमार्ग पर से पर्यटक गुजरे तो गदगद हो जाये। यदि इसे पुनरजीवित कर दिया जाये तो फिर क्या कहने?

"मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने" यह लेखमाला जंगल यात्रा के दौरान हो रहे नित नये अनुभवो पर आधारित है। मेरे पास बाँटने को ढेरो जानकारियाँ है। अपने साथ इन्हे सहेज कर रखूंगा तो शेष दुनिया को उस "धरती के स्वर्ग" के बारे मे नही बता पाऊँगा जो मेरी कर्म-स्थली है। मै इसे आपके लिये लिख रहा हूँ पर चाहता हूँ कि पीढीयो तक इसे पढा जाये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-2

- पंकज अवधिया

एक नया कल्पवृक्ष, नये जंगली कीट और बारिश मे मारुति आल्टो

"यह कल्पवृक्ष है। इसके नीचे ही देवी जी विराजमान है।"घने जंगल मे एक प्राचीन मन्दिर की पूरे मन से सेवा कर रहे एक पुजारी जी ने कहा। मैने वृक्ष को ध्यान से देखा और पहचानने की कोशिश की। फिर पूछा कि इसे कल्पवृक्ष क्यो कह रहे है? क्या यह वाकई पुराणो मे वर्णित कल्पवृक्ष है? इस पर वे बोले कि मै बचपन से इस वृक्ष की महत्ता के बारे मे सुनता आ रहा हूँ। इसके नीचे बैठने से समस्त मनोकामनाए पूरी होती

है या नही, यह मै नही कह सकता पर इसका कोई भी भाग ऐसा नही है जो पारम्परिक औषधीय मिश्रणो मे नही डलता हो। दूर-दूर से पारम्परिक चिकित्सक आते है और इसके नीचे औषधीय वनस्पति युक्त पात्रो को रात भर गाड देते है। फिर औषधीय गुणो से सम्पन्न पात्रो को लेकर चले जाते है रोगियो को देने के लिये। कई बार लम्बे सम्य तक पात्रो को गाडा जाता है। बहुत से रोगियो को इस पेड के नीचे बैठने की सलाह दी जाती है। पहली वर्षा के समय विशेष पात्रो मे इसके ऊपरी भागो से बहकर आता हुआ जल एकत्र कर लिया जाता। इस जल का प्रयोग वर्षभर किया जाता है। ऐसा वृक्ष तो दूर-दूर तक नही है। इसलिये हम इसे कल्पवृक्ष कहते है।" मैने उनकी बाते ध्यान से सुनी पर उनका यह कहना कि यह वृक्ष दूर-दूर तक नही पाया जाता है, सही नही लगा। मैने आस-पास घूमकर वस्तुस्थिति का पता लगाने का निश्चय किया।

मैने कई घंटो तक भ्रमण किया पर सचमुच मुझे वैसा दूसरा वृक्ष नही दिखा। यह आश्चर्य का विषय था। वे जिस वृक्ष को कल्पवृक्ष कह रहे थे वास्तव मे वह पाकर का पुराना वृक्ष था। पाकर के फल चिडियो द्वारा पसन्द किये जाते है और उन्ही के द्वारा फैलाये जाते है। ऐसे मे पाकर के वृक्ष आस-पास न दिखे, ऐसा सोचा भी नही जा सकता था। मनुष्यो ने अपनी बस्ती मे पीपल और बरगद को तो खूब सम्मान दिया पर पाकर को कम लोगो ने ही पसन्द किया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पारम्परिक चिकित्सा मे यदि पीपल और बरगद के उपयोगो को मिलाकर एक सूची तैयार की जाये तो वह पाकर के पारम्परिक उपयोगो के सामने छोटी दिखायी पडेगी। आधुनिक विज्ञान ने भी इस वृक्ष के साथ यही किया। पीपल और बरगद पर जमकर शोध हुये पर पाकर को भुला दिया गया। पाकर मनुष्यो की बस्ती से दूर जंगलो मे उगते रहे। माँ प्रकृति ने पाकर को जंगली जीवो के लिये छोड दिया। पर अब पाकर अचानक कम होते जा रहे है। यह अचानक शब्द मेरे लिये है क्योकि इस विशेष वृक्ष पर मेरी नजर केवल इसके उपयोगो तक सीमित थी। इनकी संख्या पर मैने गौर नही किया था। पर जब गौर करना शुरु किया तो लगा कि बहुत देर हो चुकी है। पाकर जलाउ लकडी के लिये काटे जा रहे है। "लकडी माफिया" ने इसे देखते ही देखते दुर्लभ बना दिया।

भ्रमण से लौटकर मैने पुजारी जी को वृक्ष की सही पहचान बतायी। इसके ढेरो सरल उपयोग बताये और उनसे नयी बाते जानी। वे मुझे वृक्ष के उस हिस्से मे ले गये जहाँ एक विशेष प्रकार का कीट छालो को नुकसान पहुँचा रहा था। उन्होने बताया कि ये रात को सक्रिय होते है और दिन मे वृक्ष के आस-पास की मिट्टी मे घुसे रहते है। मैने कीट की तस्वीरे ली। पाकर के कीटो पर बहुत कम शोध हुये है। मैने पुजारी जी से राख और

मिट्टी तेल माँगा और फिर उन्हे मिलाकर मिश्रण को उस स्थान की मिट्टी मे मिला दिया जहाँ कीट थे। इस मिश्रण से कीट वृक्ष से दूर हो जायेंगे। मिश्रण मे ज्यादा समय तक रहने से उनकी मौत भी हो सकती है। मैने पुजारी जी से इस प्रक्रिया को कुछ सप्ताह तक दोहराते रहने को कहा ताकि वृक्ष को इनसे पूरी मुक्ति मिल सके। फलदार वृक्षो की जैविक खेती कर रहे किसान अक्सर यह सरल उपाय अपनाते है। मैने मिश्रण को मिलाते समय कुछ कीट भी एकत्र कर लिये। इन्हे गाडी मे रखे बक्सो मे सुरक्षित रख लिया। पाकर की छाल भी रख ली। ताकि इसे खाकर वे बक्से मे जीवित रहे, मेरी प्रयोगशाला पहुँचने तक।

प्रयोगशाला मैने अपने घर मे बना रखी है। मेरा सहायक बडा ही परेशान रहता है। खास तौर पर जब मै जंगल से कीट लेकर आता हूँ। उन्हे खाने-पिलाने मे बडी समस्या होती है। अब जंगली वृक्ष तो शहरो मे नही होते और रोज लम्बी दूरी तय करके पत्तियाँ या दूसरे पौध भाग लाना सम्भव नही है। ऐसे मे सहायक को ही काफी भाग-दौड करनी पडती है। मैने जंगल के पास के गाँवो मे स्थानीय लोगो से घर मे प्रयोगशाला आरम्भ करंने को कहता हूँ तो वे तैयार नही होते। आम लोगो मे कीटो के प्रति कम रुचि है। घर के दूसरे सदस्य भी कीटो को नापसन्द करते है। यह समस्या मेरे घर पर भी है। जंगली कीट विशेषकर वृक्षो पर आश्रित बीटल्स बडे होते है और आम लोग उनसे दूर भागते है। मै पाकर से एकत्र किये गये कीटो का जीवन-चक्र देखना चाहता हूँ। इनसे मेरी एक ओर रुचि भी जुडी है।

जैसा कि आप जानते है मै औषधीय कीटो पर भी काम करता हूँ। मै यह सुनिश्चित करना चाहता हूँ कि कही पाकर से एकत्र किये गये ये कीट पारम्परिक चिकित्सा मे प्रयोग तो नही होते है। इसके लिये मुझे कीटो के नमूने लेकर विशेषज्ञ पारम्परिक चिकित्सको के पास जाना होगा। यदि सौभाग्य से ये उपयोगी कीट निकल गये तो फिर विस्तार से इनका अध्य्यन करना होगा। "करना होगा" इसे बाध्यता न समझे। यह मेरी रुचि है। इस सब के लिये अपनी जेब से ही रुपया खर्च होना है पर इस दौरान जो ज्ञान मिलेगा वह अमूल्य होगा।

अक्सर मै किराये के वाहन से जंगल जाना पसन्द करता हूँ पर इस बार मैने निज वाहन से जाने का मन बनाया। मेरे पास मारुति आल्टो है। योजना थी कि पास के गाँव मे गाडी खडा करके पैदल ही जंगल के अन्दर जायेंगे पर हमने जोखिम उठाया तो गाडी सहित जंगल के अन्दर पहुँच गये। जंगल सूखा था। शाखाए गिरी हुयी थी जिनसे बचकर कम गति से गाडी चलानी होती थी। शाम को जब हम लौटने लगे तो बारिश होने लगी।

जंगल की मिट्टी गाडी के चक्को को जकड लेने के लिये बेताब थी। अन्धड मे सूखी टहनियाँ सामने के शीशो पर पत्थर की तरह बरस रही थी। पर हम निकल आये। यह अच्छा भी हुआ और नही भी। नही इसलिये क्योकि यदि जंगल मे फँसते तो एक नया अनुभव मिलता। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-3

- पंकज अवधिया

अनोखा साजा वृक्ष, ग्राम देवता और विकास

एक वनग्राम मे हमे साजा का एक अनोखा वृक्ष दिखा। एक नही, दो नही बल्कि तीन वृक्ष आपस मे जुडे हुये थे। ये वृक्ष बहुत पुराने थे। मै रुक गया और तस्वीरे लेने लगा। पास ही खेत पर एक किसान बन्दरो को भगाने मे जुटा हुआ था। बन्दर उसकी बाडी मे लगे धनिया के पौधो को उखाड-उखाड कर यह देख रहे थे कि वे ठीक से उगे है कि नही। वह एक तरफ से बन्दरो को भगाता तो बन्दर दूसरी ओर से चले आते। जब वह अपनी पूरी शक्ति लगाता तो बन्दर पास के कुसुम वृक्ष पर चले जाते। वे इतनी ऊँचाई पर बैठते कि कोई भी आसानी से वृक्ष के नीचे से पत्थर मार सके। पर जानकार भूलकर भी ऐसी नही करते। दरअसल यह एक जाल होता है। यदि कोई वृक्ष के नीचे पहुँच जाता तो बन्दर अपने "वेपन आफ मास डिस्ट्रक्शन" का प्रयोग करते। इसे "बायोलाजिकल वेपन" भी कह सकते है। वे सीधे नीचे खडे व्यक्ति पर मल-मूत्र की बौछार करते। मजाल है कि उनका निशाना चूके। हडबडाहट मे जब वह व्यक्ति नहाने जाता तब बन्दर आसानी से धनिया और दूसरे पौधो की छानबीन कर लेते। पर यहाँ किसान समझदार था।

किसान ने इस बात की पुष्टि की कि साजा का यह वृक्ष बहुत पुराना है। इतना पुराना कि उसके बुजुर्ग भी इसे बचपन से देख रहे है। इतना अनोखा व पुराना वृक्ष हो और उसके नीचे देवता का वास न हो, यह हो ही नही सकता। किसान ने बताया कि यहाँ ग्राम देवता विराजमान है। सारा गाँव और आस-पास के लोग इन्हे पूजते है। इनकी पूजा मे जो कुछ अर्पित होता है उससे इस अनोखे वृक्ष को पोषण मिलता है। वैसे यह पोषण नही

मिले तो भी वृक्ष तो निस्वार्थ रुप से असंख्य जीवो की सेवा करता रहेगा। मैने अपने जीवन मे ऐसा वृक्ष नही देखा था। पर किसान ने कहा कि ऐसे बहुत से वृक्ष जंगल मे है पर उनके नीचे देवता का वास नही है। मुझे अपने पर खीझ हुयी कि जंगल मे ऐसे वृक्ष है तो मेरी नजर अब तक उन पर नही पडी। ऐसा अनोखा वृक्ष यदि मिल जाये तो एक पूरा दिन तस्वीरे लेते गुजारा जा सकता है। एक वृक्ष के लिये एक दिन? पागल तो नही हो गये हो?, आप यह कह सकते है। पर वृक्ष के अलग-अलग आयामो के अलावा उनमे दिन के अलग-अलग घंटो मे आने वाले कीट-पतंगे और नाना प्रकार के पंछी, गिलहरी, गिरगिट, मकडियाँ-इन सब को ध्यान से देखकर तस्वीरे ले तो एक क्या कई महिने लग जायेंगे। फिर गाँव के आम लोगो से इस वृक्ष की महत्ता पर चर्चा भी तो होती है। यदि आप चाहे कि किन्ही दो लोगो से बात करके सब कुछ जान लेने का भ्रम पाल सकते है पर यह आपकी भूल होगी। गाँवो मे हर व्यक्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से वृक्ष से जुडा रहता है। सबके अपने अनुभव होते है। सबकी अपनी कहानी होती है। सब खुलकर नही बोलते पर जब बोलते है तो उनके अन्दर का ज्ञान फूट पडता है। अब बताइये मै श्री खोरबहरा के पास सालो से जा रहा हूँ। तस्वीरे ले रहा हूँ। पर इस बार उन्होने बताया कि यहाँ से गोरे साहब की रेल जाती थी। पहले क्यो नही बताया? अरे मैने पूछा नही इसलिये बताया नही। पर पूछा तो मैने इस बार भी नही था।

साजा छत्तीसगढ का जाना-पहचाना वृक्ष है। यहाँ बहुत से छोटे-बडे गाँवो का नाम साजा है। साजा के वृक्ष आबादी के दबाव के शिकार हो रहे है दूसरो की तरह। साजा अपनी लकडी के लिये आम लोगो की जुबान पर चढा हुआ है पर यह आश्चर्य का विषय है कि वे इसके औषधीय उपयोगो के विषय मे कम ही जानते है। साजा अर्जुन के ही परिवार का है। और अर्जुन तो हर्रा और बहेडा का सगा सम्बन्धी है। अर्जुन यानि वही अर्जुन जिसका वर्णन कौहुआ के रुप मे इस लेखमाला के पहले लेख मे है। जब साजा के इतने गुणी परिवारजन है तो यह सोचने वाली बात है कि कैसे साजा दिव्य औषधीय गुणो से परिपूर्ण नही होगा? साजा पर मैने हजारो पन्ने लिखे है पर यह अच्छी बात है कि अभी तक जडी-बूटी के व्यापारियो की निगाहो से यह नही गुजरा है। साजा की दिल्ली के खारी बावली बाजार मे माँग नही है। कुछ समय पहले इसके विशेष फलो की माँग कोलकाता के व्यापारियो ने की थी तो सबके कान खडे हो गये थे। बाद मे पता चला कि गुलदस्तो को सजाने के लिये इसके सूखे फलो की माँग उठी थी पर वह स्थायी नही थी। अब इंटरनेट, मोबाइल और बाइक का जमाना है। जंगल मे नयी वनस्पति का संग्रहण कुछ घंटो मे ही धमतरी और रायपुर के बाजारो मे हलचल मचा देता है। वनस्पतियो के स्थानीय नाम के लिये वे मेरे शोध लेखो का सहारा लेते है और फिर सीधे दिल्ली से बात

कर लेते है। उनके कारिन्दे मोटरसाइकिल से जाकर वह वनस्पति ले आते है और महानगरो मे कूरियर कर देते है। मामला फिर भी न सुलझे तो सिंगापुर या अमेरिका का व्यापारी बनकर छदम नाम से मुझे ई-मेल किया जाता है। अक्सर वे प्रभाव जमाने के लिये इतनी बडी मात्रा की माग़ कर बैठते है जितनी पूरी दुनिया से एकत्र नही की जा सकती।

साजा का यह अनोखा वृक्ष मुझे कुछ पलो के लिये दुखी भी करता है। जहाँ यह वर्तमान मे है वहाँ बगल से एक पतली पर पक्की सडक जाती है। इसे देर-सबेर चौडी होना ही है, राजधानी से सीधे जो जुडती है। जब वह समय आयेगा तो बिना किसी देरी के इस वृक्ष को जड से उखाड दिया जायेगा। देवता और उनके भक्तो से बिना पूछे न्यायालय के आदेशो का हवाला देकर देवता को पक्के ठिकाने पर बैठा दिया जायेगा। सडक चौडी हो जायेगी। विकास के नाम पर ऐसा अत्याचार अब तो आम बात हो गयी है पर अपने घर और गाँव के बिगाड का दुख वे ही जानते है जिन पर यह गुजरती है। अभी कान्हा नेशनल पार्क से लौटा हूँ जहाँ पार्क बनने पर अन्दर के गाँवो को बाहर बसने के लिये कहा गया। पीढीयो पुराने खेतो को छोडकर वे आ गये पर अपने देवी-देवताओ को छोडना उन्हे गँवारा नही हुआ। पार्क के अन्दर आज भी श्रवण सरोवर है जिसके बारे मे मान्यता है कि यहाँ श्रवण कुमार आये थे अपने माता-पिता के साथ। यहाँ पर साल मे एक बार मेला लगता था। बडी संख्या मे श्रद्धालु आते थे। पर टाइगर पर बढते खतरे को देखते हुये इस पर जनाक्रोश की अन्देखी कर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लोग मन-मसोसकर रह गये। पता नही कब यह गुस्सा ज्वालामुखी बनकर फूटे। वैसे यह याद रखना होगा कि ज्वालामुखी पीढीयो बाद भी फूटते है।

कान्हा की स्थिति को मैने दोनो नजरिये से देखा। मन मे विचार आया कि क्या मेले पर प्रतिबन्ध लगाने से टाइगर और दूसरे वन्यजीवो के शिकार पर अंकुश लग गया? नही, शिकार तो तूफानी गति से जारी है। फिर मेले पर रोक क्यो? मेले मे आये लोग बहुत कचरा फैलाते है। पर इस पर अंकुश लगाया जा सकता है।आम लोगो को मना करने की बजाय उन दुकानो को मेले मे न लगाया जाये जो कचरा फैलाने वाले उत्पाद बेचती है। एक पतला सा अस्थायी गलियारा बना दिया जाये ताकि श्रद्धालु जंगल के अन्दर प्रवेश न करे। तानाशाही से नही ग्राम समितियो के माध्यम से मेले का आयोजन हो। आज दर्शन करने नही मिलता उससे तो अच्छा है कि कुछ कडे नियमो के साथ दर्शन करने मिले ताकि पार्क का नुकसान न हो। मुझे विश्वास है कि आम लोग ऐसी किसी पहल पर सकारात्मक रुख ही अपनायेंगे।

जंगल के कानून अंग्रेजो के समय से चले आ रहे है। देश को आजाद हुये इतने साल हो गये पर जंगल और जंगल के लोगो के प्रति योजनाकारो का रवैया जस का तस है। अभी भी जंगल काटे जा रहे है और उन्हे खेतो की तरह माना जा रहा है। जैव-विविधता से पूर्ण जंगलो मे सागौन जैसे आर्थिक महत्व के वृक्षो के मोनोकल्चर लगाये जा रहे है। आम वनवासियो के लिये पहले गोरे साहबो का हुक्म था अब जंगल विभाग के अफसरो का। जंगलो के मामले मे अब भी देश काफी हद तक गुलाम है, ऐसा कहा जाये तो शायद गलत न होगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-4

- पंकज अवधिया

मनहर, गुडरिया, कर्रा और मछलियाँ

नाश्ता करने की गरज से गाँव के एक जलपान गृह मे रुके ही थे कि बहुत से हृष्ट-पुष्ट बदन वाले लोग आ गये। उनके पीछे पालकीनुमा कोई चीज थी। मैने कैमरा निकाल लिया। पास आने पर पता चला कि वे पीछे तालाब से मछली पकड आ रहे थे। दो लम्बे बाँसो के बीच पालकीनुमा चीज दरअसल उनके बडे भारी जाल थे। जलपान गृह मे वे चाय पीने के लिये रुके थे। फिर उनका इरादा खस्ता खा लेने का हुआ जो चाय से भी सस्ते यानि सिर्फ पचास पैसे मे आता है। वे मुझे रुचि से देखने लगे। ड्रायवर ने पहल की और पूछा कि ढीमर हो क्या? उन्होने कहा कि नही, गोंड है। मैने जंगलो की ओर इशारा करते हुये कहा कि इस खजाने के रहते भी जाल से मछली पकडते हो? मछली पकडने के लिये उपयोगी वनस्पतियो के बारे नही जानते हो क्या? उनमे से कुछ ने अनिभिज्ञता दिखायी जबकि कुछ ने कहा कि मनहर नाम की वनस्पति से हम मछली पकडते है पर यह साल भर नही मिलती। मैने कहा कि यह काम तो कर्रा से भी कर सकते है। वे सब एक स्वर मे बोल पडे, अरे साहब, कर्रा से मछली नही पकडी जाती। आप कुछ भूल कर रहे है। कर्रा जहरीला पौधा है। जब धान के खेत मे बंकी नामक कीट का प्रकोप होता है और सभी उपलब्ध कीटनाशक असफल हो जाते है तब हम कर्रा का

उपयोग करते है। कर्रा युक्त पानी से धान का रंग ही बदल जाता है। कीटो से मुक्ति मिल जाती है। पर मछली नही पकडी जाती। मैने जोर दिया पर वे मानने को तैयार नही हुये। "चलो ठीक है, आस-पास पानी की डबरी हो तो मै यह कमाल दिखा सकता हूँ।" मैने कहा और वे तैयार हो गये।

आनन-फानन मे कर्रा के फल एकत्र कर लिये गये। डबरी के थोडे से पानी मे इन फलो को पीसकर मिलाया गया। बस कुछ समय मे ही मछलियाँ बेसुध होकर तैरने लगी। उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। सारी मछलियाँ एक बार मे ही बटोर ली गयी। इस बीच उनके बुजुर्ग भी आ गये। किसी युवा ने जब मछली को मुँह मे डालने की कोशिश की तो वे चिल्ला पडे। मैने बुजुर्गो का समर्थन किया। अभी मछलियाँ खाने लायक नही थी। कर्रा के जहर से मनुष्यो को नुकसान न हो इसके लिये शोधन की जरुरत थी। मैने उन्हे विधि बतायी। बुजुर्गो ने सहमति जतायी।

"फिश-पायजन" के रुप मे बहुत सी वनस्पतियाँ देश भर मे प्रयोग की जाती है। मैने उत्तरी बंगाल के गाँवो मे ऐसे बहुत से प्रयोग देखे है। एक बार मुझे बतौर जडी-बूटी सलाहकार एक प्लाइवुड कम्पनी ने आमंत्रित किया। खाली समय मे जब मै उनकी सा मिले मे घूम रहा था तब मुझे ग्रामीणो की भीड दिखायी दी। वे मिल के सामने एक खास लकडी की छीलन बटोरने खडे हुये थे। मिल से उन्हे यह मुफ्त मे मिल जाती थी। वे इस छीलन को किसी भी जल स्त्रोत मे डाल देते थे। कुछ ही मिनटो मे मछलियाँ बेसुध होकर सतह पर आ जाती थी। फिर बिना श्रम के उन्हे एकत्र कर वे ले आते थे। मैने वहाँ के साप्ताहिक बाजार मे मछली बिकती नही देखी तो बडा ही आश्चर्य हुआ। मुझे बताया गया कि सभी इतनी आसानी से मछली पकडना जानते है तो भला बाजार से पैसे देकर मछली कौन खरीदेगा? मैने आस-पास के जलस्त्रोतो को मछली विहीन पाया।

छत्तीसगढ के कई भागो मे गुडरिया नामक शीतकालीन वनस्पति के प्रयोग से इस तरह मछलियाँ पकडी जाती है। अब तक अपने सर्वेक्षणो के माध्यम से मैने सैकडो ऐसी वनस्पतियो के विषय मे जानकारी एकत्र की है। इन वनस्पतियो के प्रयोग की अनगिनत विधियाँ है पर सभी की अपनी सीमाए है। मसलन कर्रा का ही उदाहरण ले। आपने पढा कि कैसे कर्रा से उपचारित जल से एकत्र की गयी मछलियो को खाने से पहले शोधन जरुरी है। फिर कर्रा का प्रयोग छोटे जल स्त्रोतो मे किया जा सकता है। बडे तालाबो जिनका प्रयोग ग्रामीण और उनके पशु करते है, मे कर्रा के प्रयोग की बात सोची भी नही जा सकती। इसी तरह मनहर के फल साल भर नही उगते। गुडरिया से गर्मियो मे यह काम नही लिया जा सकता। सभी के साथ ऐसी सीमाए क्यो है? इस पर पारम्परिक

चिकित्सक कहते है कि यदि ऐसी कोई आदर्श वनस्पति मिल गयी तो मनुष्य़ कुछ ही समय मे इस दुनिया से मछलियो का अस्तित्व मिटा देगा। माँ प्रकृति इस बात को जानती है। उनके लिये तो मनुष्य़ और मछलियाँ एक समान है। इसलिये ऐसी व्यवस्था है। पर माँ प्रकृति हर बार सफल नही हो पाती है।

बहुत कम लोग यह जानते है कि बायोडीजल के लिये लगाये जा रहे रतनजोत (जैट्रोफा) मे भी फिश पायजन के गुण होते है। आधुनिक शोधो द्वारा रतनजोत के इस प्रयोग को मान्यता मिल चुकी है। पर ये शोध साफ चेताते है कि रतनजोत के जहर से मरी मछलियाँ किसी भी रुप मे मनुष्यो के सेवन के योग्य नही है। शोधन के बाद भी। जब कोई बडी योजना लम्बे समय के लिये बनायी जाती है तो सभी से सलाह मशविरा की जरुरत नही समझी जाती है। कुछ लोग ही इस तरह की योजनाओ को क्रियांवित कर देते है। छत्तीसगढ मे जब रतनजोत का ज्वर चढा तो सभी जगह रतनजोत लगाया जाने लगा। राजनेताओ को खुश करने के लिये अफसरो ने बडे बाँध से जल आपूर्ति करने वाली बडी नहरो के दोनो ओर सैकडो किलोमीटर तक रतनजोत रोप दिया। टारगेट पूरा हो गया। अब पचास साल से अधिक वर्षो तक रतनजोत इसी जगह पर जमे हुये फलता-फूलता रहेगा। इसके असंख्य जहरीले बीज पानी मे गिरते रहेंगे। दशको तक अंजाने ही मछलियाँ मरती रहेंगी। इन नहरो के पानी का उपयोग पीने के लिये होता है। अंजाने रुप से रतनजोत का जहर शरीर मे पहुँचता रहेगा। हजारो लोग इस पानी मे स्नान करते है इन नहरो के किनारो पर। उनकी त्वचा के सम्पर्क मे जहरीला पानी आयेगा। कैंसर विशेषज्ञ तो पहले ही सिद्ध कर चुके है कि रतनजोत के पौध भाग विशेषकर तेल के सम्पर्क से त्वचा का कैंसर होता है। इसका मतलब अगली कई पीढीयो तक रोग और अकाल मौत का प्रबन्ध कर दिया गया है। जब विकराल रुप मे यह समस्या सामने आयेगी तो न राजनेता रहेंगे और न ही अफसर।

राजनेता और अफसर कह सकते है कि उन्हे इसके बारे मे बिल्कुल भी जानकारी नही थी। वे सही हो सकते है पर यदि उन्होने राजनीतिक द्वेषो को बगल मे रखकर खुलेमन से सबसे राय लेकर योजना बनायी होती तो ऐसे आत्मघाती कदम कभी नही उठते।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-5

- पंकज अवधिया

अपनी खैर मनाता खैर का वृक्ष

हमारे देश मे पान खाने वालो की कमी नही है और वह पान पान ही क्या जो मुँह लाल न करे। कत्था पीढीयो से हमारा मुँह लाल कर रहा है। पर क्या आपने कभी सोचा है कि यह कत्था कहाँ से आता है? जी, आपने सही कहा, खैर के वृक्ष से। क्या हमारे देश मे खैर की व्यवसायिक खेती होती है? यदि नही तो आखिर कहाँ से कत्था असंख्य भारतीयो के लिये रोज आ रहा है? आपने कभी इस पर ध्यान नही दिया होगा। शुरुआत से लेकर अब तक कत्था प्राकृतिक रुप से उग रहे खैर के वृक्षो से मिलता है। खैर से कत्था प्राप्ति के लिये खैर पर हो रहे जुल्म से अब इन उपयोगी वृक्षो की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। पिछले कुछ दशको से जिन वनीय क्षेत्रो मे इनकी बहुतायत होती थी, अब वहाँ यह ढूँढे नही मिलता। छत्तीसगढ मे खैर नाम पर आधारित शहर और गाँव है जो यह साफ बताते है कि इन स्थानो मे खैर के वृक्ष बडी संख्या मे होते थे। आज इन स्थानो मे ये वृक्ष तेजी से कम होते जा रहे है। अपनी इस यात्रा के दौरान मैने खैर के कुछ वृक्षो को देखा और साथ ही पारम्परिक चिकित्सको के उस प्रयास को भी जाना जिसकी सहायता से वे इन वृक्षो को बचाने की कोशिश कर रह है।

खैर का उपयोग पारम्परिक चिकित्सा मे बतौर औषधि होता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथ खैर के पौध भागो के दिव्य औषधीय गुणो का बखान करते नही थकते। जटिल रोग की अंतिम अवस्था मे छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सक खैर के हवाले रोगियो को छोड देते है। "खैर के हवाले? भला वो कैसे?" यह आप पूछ सकते है। मै विस्तार से बताता हूँ। खैर के पुराने वृक्ष से खैर सार बनता है। यह रोगियो को दवा के रुप मे दिया जता है। रोगियो को पुराने वृक्ष के नीचे दिन का अधिकतम समय व्यतीत करने के लिये कहा जात है। दिन मे सुबह इस वृक्ष से आलिंगन करने कहा जाता है। इस वृक्ष की सेवा रोगियो के जिम्मे होती है। वे विशेष घोलो से इस वृक्ष को सिंचित करते है। खैर की पत्तियो के उबटन से स्नान कराया जाता है। चरण पादुका भी इसकी लकडी से बनती है। शैय्या मे ताजी पात्तियो को बिछाया जाता है जबकि खैर के जल को रोगी को पीने दिया जाता है। इसी जल मे खाना बनाया जाता है। रोगी खैरमय हो जाता है और बहुत से

मामलो मे रोगी की जीवनी शक्ति फिर से जाग जाती है और वह जटिल रोग पर काबू पा लेता है। मैने इस पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है।

"साहब इस पर तो लकडी वालो की भी नजर है। मै लाख समझाता हूँ पर वे नही मानते। खैर की लकडी ढाबो मे जलती आपको मिल जायेगी।" श्री खोरबहरा इस बारे मे जानकारी दे ही रहे थे कि चार-पाँच साइकिल सवार वहाँ से गुजरे। उनके पीछे ताजे कटे वृक्षो के गठ्ठर थे। मुझे देखकर वे तेजी से आगे बढे। मैने कैमरा निकाला तो उनमे से एक हडबडा कर गिर गया। खोरबहरा ने लकडियो की जाँच की तो वे चौक पडे। इसमे खैर की लकडी भी थी। उन्होने तेज स्वर मे पूछा कि कहाँ का वृक्ष काटे हो जी? कुछ देर की खामोशी के बाद जब उधर से जवाब नही आया तो उनकी आँखो मे क्रोध उतर आया। लकडी वाले ने बताया कि यही पीछे से काटा है। श्री खोरबहरा को काटो तो खून नही। जिस खैर को बचाने के लिये उन्होने जान लगा दी वह लकडियो के ढेर के रुप मे उनके सामने था। उन्होने बाद मे मुझे बताया कि इस सडक से दिन मे 2000 से अधिक साइकिले निकलती है। सबमे जंगल की लकडियो के ढेर होते है। आप सोच सकते है कि साल भर मे ये कितना जंगल साफ कर लेते होंगे। मैने लकडी माफिया से जुडे लडको के सामान की जाँच की तो मुझे एक पानी की बोतल मिली, एक सस्ता मोबाइल और गुटखे के कुछ पाउच। यह हमारी युवा पीढी है जो अपने जंगलो के विनाश मे जुटी है।

मेरी इस जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सक खैर को बचाने के लिये व्यग्र दिखे। इसमे उनका निज स्वार्थ है पर यह जन-कल्याण से जुडा हुआ है। वे अपने रोगियो के लिये इसे बचाना चाहते है। खैर का प्रवर्धन कठिन नही है। पर मुश्किल इस बात की है कि इसका व्यापक रोपण का जिम्मा कौन अपने सिर पर ले। मैने छत्तीसगढ और आस-पास के राज्यो से खैर के 17,800 से अधिक पारम्परिक नुस्खे एकत्र किये है। इनमे से ज्यादातर नुस्खे प्रभावी है। इनके साथ शर्त यही है कि औषधि के लिये एकत्र किये गये खैर के पौध भाग पुराने वृक्ष से चुने गये हो। आज यदि इसका व्यापक रोपण किया जाये तो इन वृक्षो को औषधीय गुणो से परिपूर्ण होने के लिये दशको लगेंगे। इसलिये खैर की मौजूद आबादी को बचाना जरुरी है। कत्था के विकल्पो की खोज जरुरी है। साथ ही कत्था के एकत्रण पर नियंत्रण आवश्यक है। कही ऐसा न हो कि खैर के विषय मे समृद्ध पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान हमारे पास बचा रहे पर इससे रोगियो की जान बचाने के लिये खैर ही न बचे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-6

- पंकज अवधिया

प्रेम लता का मोह पाश और जंगली सोता

"वो देखिये, वो मोटे वृक्ष के नीचे, मोटी रस्सी जैसा, दिखा? अरे, मेरी अंगुली की दिशा मे देखिये, है ना? हाँ ,हाँ वही, चलो नीचे चलकर देखते है।" कुछ स्थानीय लोग पहाड की चोटी पर चढकर नीचे घाटी की ओर इशारा कर रहे थे। उनका कहना था कि नीचे साजा के वृक्ष पर अजगर लिपटा हुआ है। पर वे पूरी तरह आश्वस्त नही थे। जिस स्थान की यह घटना वहाँ के लिये अजगर का ऐसे दिख जाना आम बात है। अभी की सारी हलचल तो मेरे लिये अजगर खोजना था ताकि मै तस्वीरे ले सकूँ। मै ठहरा जडी-बूटियो वाला। अजगर की तस्वीरे कम ही लेता हूँ। मैने लोगो से वनस्पतियाँ बताने को कहा पर वे तो अजगर खोजते रहे। आखिर तय हुआ कि घाटी मे उतरेंगे सीधी ढलान से। हम नीचे उतरने लगे। जैसे-जैसे हम उस वृक्ष के पास पहुँच रहे थे हमारी घडकने बढ रही थी। पर हमारे साथ कुछ शूरवीर थे। इनकी गाथा पहले सुने।

ये शूरवीर वे थे जो स्थानीय जंगलो मे अक्सर जाते रहते थे। एक बार पास की गहरी गुफा रात मे इन्हे अन्दर जाना था ताकि रात भर निशाचर पन्छियो का शिकार कर सके। गुफा के मुहाने पर एक मोटे अजगर ने डेरा जमाकर रखा था। आर-पार कुछ इस तरह पसरा था मानो किसी दूसरे को अन्दर नही जाने देना चाहता था। इन शूरवीरो ने बीच से अजगर को उठाया और गुफा के अन्दर घुस गये। रात भर अपने काम मे लगे रहे मशाल लेकर फिर जब सुबह वापस लौटे तो देखा कि अजगर रास्ता घेरकर बैठा है। अब तो निकल नही सकते थे। दिन भर वैसे ही फँसे रहे। उनके साथी जब उनकी तलाश मे निकले तब उन्हे वस्तुस्थिति का पता लगा। बहुत से लोगो ने मिलकर अजगर को सरकाया।

चलिये अब फिर उस ढलान पर चले जहाँ से हम उतर रहे थे। जैसे-जैसे हम पास आ रहे थे अजगर का रंग लाल-काला सा दिख रहा था। पास जाकर लोग चिल्लाये, "अरे ये अजगर नही है, कोई मोटी लता है।" मैने इसकी पहचान प्रेम लता के रुप मे की। प्रेम

लता यहाँ का स्थानीय नाम है। यह औषधीय वनस्पति है पर प्रेम से इसका औषधीय सम्बन्ध नही है। हाँ, हताश प्रेमी को क्षेत्र के तांत्रिक अवश्य यह सलाह देते है कि प्रेम लता के फूल शरीर मे मलकर खूब स्नान करे और फिर प्रेमिका के पास प्रणय निवेदन ले कर जाये। वे दावा करते है कि इससे लाभ होता है। इस दावे पर पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि प्रेमिका माने या न माने पर इस बहाने प्रेमी की त्वचा को लाभ तो हो ही जाता है। शरीर से बदबू जाती रहती है। प्रेमी अपने आप को तरोताजा महसूस करता है। हो सकता है इससे उसके प्रणय निवेदन के ढंग़ पर असर पडता हो। वैसे तांत्रिको के नियम बडे कठोर है। यदि इससे बात बन गयी तो प्रेमी को विवाह के बाद यहाँ आना पडता है और लता के सेवा करनी होती है। फिर बच्चा होने पर आना पडता है। इस तरह वह आजीवन इससे जुड जाता है। वैसे मुझे यह लता इस क्षेत्र मे बहुतायत मे दिखी। इसका अर्थ प्रेम की सुगन्ध इस भाग मे बिखरी है। इस बारे मे तांत्रिको का ज्ञान यही तक सीमित नही है, कोई जानना चाहे तो।

यदि दो प्रेमी है और एक प्रेमिका, तिस पर दोनो प्रेमी प्रेम लता का प्रयोग कर प्रेमिका के पास एक ही समय मे पहुँचे तो? तांत्रिक कहते है कि ऐसा कम ही होता है। पर ऐसे मे बारामासी नाले के पास उग रही प्रेम लता का असर अधिक होता है। पारम्परिक चिकित्सक औषधीय नजरिये से जल स्त्रोतो के पास उग रही प्रेम लता को औषधीय गुणो से परिपूर्ण मानते है। जिस बडे वृक्ष से लिपटकर यह उगती है उसकी भूमिका भी अहम होती है। मैने प्रेम लता पर जमकर काम किया है। पर अफसोस अपने कुँवारेपन के लिये मै इसका उपयोग नही कर पाया हूँ। मैने इससे स्नान किया है पर प्रणय निवेदन के लिये नही जा पाया। भरी गर्मी मे जब ड्रायवर एसी चलाकर जंगल मे चलता है तो मै जिद करके खिडकी खुलवा देता हूँ। लू लगती है पर कोरिया और प्रेम लता के फूलो की मादक खुशबू सारी थकान को गायब कर देती है।

अजगर न मिलने से निराश लोग फिर से उसकी तलाश मे जुट गये। जंगल के जिस निर्जन स्थान की बात मै कर रहा हूँ वहाँ पास के गाँव के लोग दिन मे आ जाते है। पर शाम होते ही वापस लौट जाते है। जंगल घना है और दिन मे ही जंगली जानवर दिख जाते है। यहाँ भीषण गर्मी मे जल के स्त्रोत सूख गये है, ऐसा ऊपर से प्रतीत होता है। पर घने जंगल मे जाने से पता चलता है कि माँ प्रकृति ने सबके लिये व्यवस्था रख छोडी है। इस निर्जन स्थान मे शंकर जी का छोटा सा मन्दिर है। वहाँ एक पुजारी चौबीसो घंटे अकेले रहते है। एक मरियल सा काले रंग का कुत्ता है उनके पास जिसके गले मे घंटी

बन्धी है। जंगली जानवरो के साथ रहते हुए वह भी जंगली सा हो गया है। जब हम वहाँ पहुँचे तो उसने हमे भी जंगली जानवर की तरह ट्रीट किया।

पुजारी जी हमे नीचे एक सोते के पास ले कर गये। जहाँ से आधे घंटे मे आधा बाल्टी पानी रिसता था। इसी पानी पर वे गर्मियो मे निर्भर रहते है। दिन भर इस सोते मे जंगली जानवरो का आना लगा रहता है। जब हम पानी भर रहे थे तब हमे साफ अहसास हो रहा था कि बहुत से व्याकुल जीव आस-पास की झाडियो मे हमारे जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जो बडे जीव थे उन्हे सोते के पास लम्बे समय तक रुकना पडता था। जितना अधिक समय उतना अधिक खतरा। सचमुच रोमाँचक अनुभव था वह।

पुजारी ने भक्तगणो से यह सोता बचाकर रखा है। शिकारियो को इस स्थान के बारे मे पता लग गया तो तो वे इस स्थान को इतना रक्तरंजीत कर देंगे कि पीढीयो तक सोते से पानी की जगह रक्त रिसता रहेगा। सारी गोपनियता के बाद भी गाँव के कुछ लोगो ने इसका पता लगा लिया है। वे इसे "गंगा कुंड" का नाम दे रहे है। साल मे दो बार यहाँ मेला लगता है। यदि इस नये-नवेले "गंगा कुंड" ने मान्यता प्राप्त कर ली तो कुंड ही बच जायेगा पानी नही रहेगा। पता नही तब गर्मियो मे वन्य जीव क्या करेंगे? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-7

- पंकज अवधिया

भालू के साथ बकरियो सी मे-मे और पुजारी जी की बाते

"पर सोयेंगे कहाँ? यहाँ तो कोई झोपडी भी नही है। क्या हम सब भगवान के इस मन्दिर मे समा जायेंगे?" घने जंगल मे जब मन्दिर के पुजारी ने हमसे रात वही रुकने का अनुरोध किया तो मैने ये प्रश्न पूछे। उन्होने कहा कि भगवान के मन्दिर मे तो एक नाग रहता है। मै उसको नही छेडता। इसलिये वहाँ नही सोयेंगे। वहाँ पास ही कुसुम का पेड है। उससे कुछ दूरी पर खुले आसमान के नीचे सोयेंगे। देखियेगा, रात को ऐसी नीन्द

आयेगी कि आप जीवन भर याद रखेंगे। ऐसा सुकून कितने भी पैसे बरबाद कर ले, नही मिलेगा। पुजारी जी की बात मे दम था पर घने जंगल मे खुले आसमान के नीचे बिना सुरक्षा के खाट पर सोने का दम न मुझमे था न ही मेरे ड्रायवर के पास। वह बोल पडा, "और रात को जंगली जानवर आ गये तो।" पुजारी जी बोले कुछ दिन पहले एक तेन्दुआ आ गया था। मै तो गहरी नीन्द मे था। मेरा यह काला कुत्ता पास कर कूँ-कूँ करने लगा। मैने टार्च जलाकर इधर-उधर देखा तो कुछ ही दूर पर दो आँखे दिखी। वह तेन्दुआ ही था। उसके इरादे नेक नही थे। मैने झट से माचिस जलायी और पास की पडे पुआल के ढेर मे आग लगा दी। इस आग से वह चौका पर भागा नही। आजकल सडको मे इतनी गाडियाँ चलती है कि इन्हे रौशनी की आदत होती जा रही है। मैने कुछ आग उसकी ओर फेकी तब जाकर वह दूर हटा।

पुजारी जी के साथ घटी ये घटना रोंगटे खडे करने वाली थी। हम उनके फैन हो गये जब उन्होने बताया कि पिछली रातो से मै वैसे ही सो रहा हूँ। तेन्दुए से कोई डर नही है पर भालू आ गये तो मुश्किल हो जायेगी। पास के डोंगर मे भालू का गढ है। यूँ तो वे इस ओर नही आते पर स्वभाव से भालू जिज्ञासु होते है। मेले के दिनो मे श्रद्धालुओ के जाने के बाद कचरे के आस-पास मैने भालूओ को बहुत बार देखा है-पुजारी जी ने बताया। मैने पूछा कि भालू से बचने का कोई जमीनी ज्ञान दीजिये। वे बोले कि भालू के आने पर बकरी की मे-मे आवाज निकाले। वह इस अजीब आवाज से डर कर लौट जायेगा। हमे विश्वास नही हुआ। अब हर बात का कारण जाने बिना उस पर जल्दी से विश्वास जो नही होता है।

इस प्रयोग को आजमाने का मौका हमे लौटते वक्त मिल गया। हम मारुति आल्टो मे थे। जंगल के रास्ते से बाहर आ रहे थे। मारुति आल्टो यानि जमीन से करीब रहने वाले लोग। एक छोटा से भालू ने हमारा रास्ता काटा तो गाडी की सीट से वह विशालकाय दिखा। मैने हिम्मत करके खिडकी का शीशा नीचा किया और मे-मे की आवाज निकाली। ड्रायवर विपरीत परिस्थिति से निपटने के लिये पूरी तरह मुस्तैद था। भालू हमारी ओर आता तो हम चम्पत हो जाते। मे-मे, मे-मे, काफी देर करने के बाद भालू ने सिर उठाकर हमे ऐसे देखा कि हम शरम से पानी-पानी हो गये। इंसान होकर बकरियो-सी मे-मे? उसकी नजरो मे अच्छे भाव नही थे। हमने वहाँ से आगे बढने मे ही भलाई समझी।

पुजारी जी के साथ हम रात गुजारने के लिये इसलिये तैयार न हो सके क्योकि हमे लगा कि अन्धेरा होने के बाद हम करेंगे क्या? नाइट विजन वाले कैमरे होते तो कुछ बात बनती। तीन लोग की बजाय कुछ ज्यादा लोग होते और रात को अलाव जलाकर शिकारो

और भूतो के किस्से होते और इस बीच किसी को लघु-शंका के लिये कुछ दूर जाना पडता, ऐसी रोमाँचक रात गुजारने का आनन्द ही कुछ और है। पुजारी जी के बारे मे गाँव मे कुछ लोगो ने कहा कि वह पाखंडी है। पर सबने यह माना कि समाज से दूर अकेले सालो से यह शख्स जंगल मे पडा हुआ है। बरसात मे कई हफ्तो तक उनसे सम्पर्क कटा होता है। ऐसे मे भी वे साधना मे लीन रहते है। शराब और गाँजे से दूर है। ऐसा जीवन जीने के लिये बहुत ही कठिन प्रण चाहिये। उनका मजाक उडाना सहज है पर उनके साथ विपरीत परिस्थितियो मे एक दिन भी रहना मुश्किल है। मैने उनसे अगली यात्रा के दौरान शहर से कुछ लाने की बात कही तो बडे ही संकोच से बोले कि हो सके तो सत्तू ले आना। असली वाला सत्तू जिसमे जौ हो। अब यहाँ तो गाँवो मे यह नही मिलता। पुजारी जी सही कह रहे थे। जौ छत्तीसगढ की लोकप्रिय फसल नही है। इसलिये जौ वाला सत्तू यहाँ गाँवो मे नही मिलता।

अपनी हर यात्रा के दौरान मै आस-पास उग रही वनस्पतियो के विषय मे पुजारी जी को कुछ बता देता हूँ। वे जडी-बूटियो मे अधिक रुचि नही लेते। अपने लिये तो वे इनका प्रयोग करते है पर उन्हे लगता है कि यदि चिकित्सा आरम्भ की जाये तो लोगो की आमद बढ जायेगी और जंगल खतरे मे पड जायेगा। उनका पक्ष विचारणीय लगा। उन्होने एक कमजोर बालक के बारे मे बताया जिसकी उम्र नौ वर्ष की थी पर शरीर का विकास नही हो रहा था। डाक्टर जवाब दे चुके थे। डाक्टर तो यह भी कह रहे थे कि तीन साल से अधिक वह बचेगा नही। उसके माता-पिता पुजारी जी के पास बडी उम्मीद लेकर आये थे। पर उनके पास इसकी जानकारी नही थी। मैने अपने ज्ञान से उन्हे कुछ सरल उपाय सुझाये है। लगता तो है कि बहुत देर हो चुकी है पर फिर भी प्रयास करने मे कोई बुराई नही है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-8

- पंकज अवधिया

जंगल की सुधरती सडके और घायल भालू

“अरे, धीरे, और धीरे, हाँ अब रोक दो और रुके रहो। चलो, अब थोडा पीछे ले लो। हाँ, अब ठीक है।“मेरे इन शब्दो से ड्रायवर के कान पक चुके है। सरकार ने सुदूर गाँवो तक, जंगल के कोनो तक सडक बना दी है। मख्खन की तरह सपाट सडक। जंगल की हरियाली और ऐसी सडक, भला ऐसे मे किसका मन नही होगा कि गाडी भगायी जाये। पर मेरा ड्रायवर यह नही कर पाता है। टेटका (गिरगिट), टिटरा (गिलहरी) हो या भालू सडक मे इनकी हलचल को भाँपते हुये मै यह निर्देश देता रहता हूँ। जंगलो से गुजरने वाली सडको मे गाडियाँ पूरी रफ्तार से दौडती है तो जाने-अनजाने असंख्य जंगली जीव इनके नीचे आकर मर जाते है। केवल साँपो को सुरक्षा की कुछ गारंटी मिली हुयी है। बडी से बडी गाडियाँ साँपो को देखकर रुकने का प्रयास करती है।

अपनी इस जंगल यात्रा के दौरान हमे सडक से कुछ दूरी पर एक भालू दिखा जो लंगडा रहा था। ध्यान से देखने पर आभास हुआ कि उसे किसी बडी गाडी से चोट लगी है। वह बेबस दिख रहा था पर मदद के लिये उसके पास नही जाया जा सकता था। जंगल मे घायल जीव जल्दी ही किसी दूसरे जीव के शिकार हो जाते है। भालू की हालत नही सुधरती तो उसका भी वही हश्र होता। उधेडबुन मे हम कुछ दूरी पर रुके रहे। भालू का व्यव्हार कुत्तो की तरह नही होता। यदि कोई कुत्ता गाडी के नीचे आ जाये तो उसके साथी बडी देर तक हर आती-जाती गाडी को भौकते रहते है। लम्बी दूरी तक उनके पीछे भी जाते है। पर भालू ऐसा नही करते है। इसलिये हमने रुकने का मन बनाया। मेरे किट मे हमेशा आर्निका नामक होम्योपैथी दवा होती है। इस दवा ने चोट-चपेट से मुझे कई बार बचाया है।

कुछ वर्षो पहले ठंड के मौसम मे रात एक बजे रायपुर से जबलपुर जा रही एक बस बरसते पानी मे पहाड से खाई मे गिर गयी। मै उस बस मे बतौर यात्री था। ड्रायवर की तत्काल मौत हो गयी। चारो ओर हाहाकार मचा था। मेरे मुँह से खून बह रहा था। ऐसा खून जो रुकने का नाम नही ले रहा था। ऐसे मे आर्निका ने जबरदस्त भूमिका अदा की। मैने घायल यात्रियो को भी यह गोलियाँ दी तब तक जब तक पूरी शीशी खाली नही हो गयी। हमारी सहयात्री दो स्कूली छात्राए थी जो विज्ञान प्रदर्शनी मे जा रही थी। उनमे से एक के पूरे दाँत टूट गये थे। आर्निका से उन्हे दर्द से मुक्ति मिली।

एक सुबह एक घायल तोता आँगन मे आ गिरा। किसी शिकारी पंछी के चंगुल से निकल कर वह भागा था। लहूलुहान था। पानी मे घोलकर आर्निका दी गयी तो कुछ समय मे ही उसने इस जानलेवा चोट से मुक्ति पा ली। जंगलो मे ऐसे घायल जानवर जिनके मुँह तक

यह दवा पहुँच सकती है, को मैने यह दवा देकर राहत पहुँचायी है पर हमारे सामने पडे भालू के लिये हम कुछ नही कर पा रहे थे।

हमे रुका देखकर मोटरसाइकिल मे जा रहे कुछ ग्रामीण रुक गये। उन्हे भी भालू की हालत देखकर उस पर दया आ गयी। आमतौर पर भालू की आक्रामक प्रवृत्ति के कारण इसे कम ही पसन्द किया जाता है। एक साहसी ग्रामीण ने मुझे गोली देने को कहा। फिर उसने बाँस का खोखला तना लेकर एक नली बनायी। हम उसे देखते रहे और वह भालू की ओर बढने लगा। भालू जैसे ही सम्भल पाता उससे पहले वह पास के पेड मे चढ गया। भालू नाराज हो रहा था। आमतौर पर भालू पेड मे चढ जाते है पर घायल होने के कारण यह भालू ऐसा नही कर पा रहा था। ग्रामीण की योजना एकदम स्पष्ट थी। वह भालू के खुले मुँह मे पेड पर चढे-चढे ही जोर की फूँक से नली मे भरी गोलियो को पहुँचाता। इस तरह की नली को ढलका भी कहा जाता है। आमतौर पर पशुओ के चिकित्सक उन्हे दवाए ऐसे ही देते है। हमे जब इसके बारे मे पढाया जाता था तो हम मजाक मे कहते थे कि नली पशु के मुँह मे लगाने के बाद चिकित्सक जोर से नली मे फूँक मारता है। यदि पशु ने पहले फूँक मार दी तो चिकित्सक गया काम से।

सारे प्रयास विफल होते दिख रहे थे। पेड पर चढे ग्रामीण का निशाना नही लग रहा था। थकहार कर वह वापस हमारे पास आ गया। अब हमारे पास भालू को उसके हाल मे छोड देने के अलावा कोई चारा नही था। ग्रामीणो ने जंगली फल एकत्र किये और भालू के पास रख दिये। उनका कहना था कि भालू अब ज्यादा देर जीवित नही रहेगा। रात हो रही थी। हम आगे बढ गये। घायल भालू पीछे छूट गया और मै ऐसे संसार की कल्पना मे खो गया जहाँ भालू मनुष्यो से संवाद स्थापित कर ले और हमारी गाडी रोककर पूछे, क्या आपके पास आर्निका है? जरा सी चोट लग गयी है। और हाँ, ये नम्बर जंगल विभाग मे बता देना। इस गाडी से ही मुझे ठोकर लगी है। मुझे मालूम है कि ऐसा संसार यथार्थ से दूर है पर कम से कम यह उम्मीद की जा सकती है कि घायल भालू को अस्पताल तक ले जाने के लिये जंगल विभाग का हेलीकाप्टर कुछ दशको मे उपलब्ध हो सकेगा जैसा कि हम डिस्कवरी जैसे चैनलो मे देखते है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-9

- पंकज अवधिया

"गोल्डन राड माफिया" के कारण खत्म होते जंगली अमलतास

आमतौर पर जंगलो मे दो तरह के अमलतास देखने को मिलते है। एक छोटे वृक्ष के रुप मे तो दूसरा बडे वृक्ष के रुप मे। दोनो के अपने-अपने पारम्परिक चिकित्सकीय उपयोग है। यह भी मजेदार बात है कि इनके प्रकारो को लेकर पारम्परिक चिकित्सक खेमो मे बँटे हुये है।शहरो मे जिस अमलतास को सजावटी पौधो के रुप मे लगाया जाता है उसे पारम्परिक चिकित्सक सन्देह से देखते है। इसलिये दवा के रुप मे उनका उपयोग नही करते है। अमलतास के बडे वृक्ष शहर मे नही मिलते है। यदि पहले किसी ने लगाये भी हो तो विकास के नाम पर उन्हे काट दिया गया है।

जंगल मे गर्मियो मे अमलतास अपनी विशेष छटा बिखेरते है। इस समय पलाश अपना प्रदर्शन खत्म कर चुके होते है। आम लोगो का ध्यान अमलतास के सुनहरे फूल ही खीचते है। साल भर इस ओर ध्यान ही नही जाता है। छत्तीसगढ मे अमलतास को धनबोहार या बेन्द्रा लाठी कहा जाता है। इसे जंगल झरना भी कहा जाता है। औषधि के रुप मे इसकी माँग होने के कारण इसके सभी पौध भागो का एकत्रण व्यापारी करवाते है। जिन वृक्षो के बीजो का एकत्रण होता है उनके जंगल मे फैलने की सम्भावना कम होती जाती है। पुराने वृक्ष रह जाते है। अब नये वृक्ष तो कोई लगाता नही। इससे धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती जाती है। अमलतास के साथ भी यही हो रहा है। उन भागो मे जहाँ जंगल के अन्दर खाद-पानी देकर इमारती लकडियो के लिये वन विभाग खेती कर रहा है वहाँ शहरो से बीज लाकर अमलतास की शहरी किस्मे लगायी जा रही है। पर तेजी से घट रही जंगली जातियो की ओर किसी का ध्यान नही है।

इस जंगल यात्रा के दौरान मुझे बताया गया कि बन्दर की लाठी की तरह दिखने वाले अमलतास की फल्लियो की माँग अचानक हाल के वर्षो मे बढी है। इस माँग के अचानक बढने को आमतौर पर नया पेटेंट और किसी बडी दवा कम्पनी द्वारा नये उत्पाद बनाने की तैयारी से जोड कर देखा जाता है। मैने अपने सम्पर्को से इस बारे मे जानने की कोशिश की तो पता चला कि ऐसा कोई नया पेटेंट या उत्पाद नही आया है। दिल्ली से कोलकाता तक के व्यापारियो ने दो टूक कह दिया कि हम तो उतना ही अमलतास खरीद रहे है जितना हम सालो से ले रहे है (इस बात की सम्भावना कम ही है कि वे सच बोल

रहे हो।)। फिर अमलतास की बढती माँग का क्या कारण हो सकता है? इसका जवाब मुझे मुम्बई के एक सात सितारा होटल के मालिक के ई-मेल से मिला।

होटल मालिक को किसी जाने-माने (?) वास्तुशास्त्री ने कहा था कि होटल के हर कमरे मे गोल्डन राड रखने से मन्दी के कारण जो होटल व्यवसाय ठप्प हो रहा है वह सही राह पर आ जायेगा। होटल मालिक ने इंटरनेट पर मेरे आलेख देखे और मुझे सन्देश भेज दिया। साथ मे कूरियर से वास्तुशास्त्री द्वारा दिये गये गोल्डन राड का नमूना भेज दिया। कूरियर से जो बक्सा आया उसमे लाल कपडे मे लिपटी हुयी काले रंग की अमलतास की फली थी। कुछ चावल के दाने, सिन्दूर और हल्दी थी। इसमे गोल्डन अर्थात सुनहरा कुछ नही था। वैसे भी वनस्पति विज्ञान मे गोल्डन राड अमलतास को नही कहा जाता है। सालिडेगो सिम्प्लेक्स नामक सजावटी पौधा वास्तविक गोल्डन राड है। अब वास्तुशास्त्री ने सोचा होगा कि मै अमलतास कहूँगा तो ज्यादा पैसे कैसे वसूल पाऊँगा इसलिये उसने गोल्डन राड कह दिया होगा। होटल मालिक को साफ हिदायत थी कि लाल कपडे मे बन्द सामग्री को खोलकर न देखे। वैसे होटल मालिक इसे खोल भी लेता तो अमलतास को शायद ही पहचान पाता। वास्तुशास्त्री ने सभी कमरो मे इसे रखवाने के लिये कुछ लाख रुपये लेने का प्रस्ताव रखा था। यह भी कहा गया था कि हर छै महिने मे इसे बदला जाना जरुरी है।

इस आधार पर मैने अपने शहर और दूसरे बडे शहरो मे वास्तुशास्त्रियो से सम्पर्क किया तो पता चला कि "गोल्डन राड माफिया" का जाल चारो ओर फैला हुआ है। देश भर से अमलतास की फल्लियाँ खरीदी जा रही है। इसी का दबाव हमारे जंगल भी झेल रहे है। अमलतास की बढती माँग एक ओर वनोपज संग्रह करने वालो को लाभांवित कर रही है दूसरी ओर अमलतास का प्रयोग रोजमर्रा के जीवन मे कर रहे पारम्परिक चिकित्सको को चिंतित कर रही है। चिंता तो मुझे भी बहुत हो रही है क्योकि यदि यह दौर जारी रहा तो अन्य वनस्पतियो की तरह अमलतास के वृक्ष भी जंगलो से गायब हो जायेंगे।

इसे रोकने के लिये क्या किया जा सकता है? मैने पारम्परिक चिकित्सको से लेकर पर्यावरणविदो और मित्रो से पूछा। सभी ने यह सलाह दी कि इस बारे मे जनता को सरल भाषा मे समझाया जाये और अनुरोध किया जाये कि वे वास्तुशास्त्री के चक्कर मे न पडे। यह उपाय मुझे अधिक कारगर नही लगता है क्योकि इस तरह के लेखो को कम पढा जाता है और फिर अन्ध-विश्वास की काली परत इतनी मोटी है कि वह एक लेख की धुलाई से शायद ही हटे। जब तक जनमत तैयार होगा तब तक देर हो चुकी होगी। मुझे लगता है कि अन्ध-विश्वास के विरुद्ध अलख जगा रही संस्थाए अब भारतीय कानून का

सहारा लेकर इन वास्तुशास्त्रियो के आगे मोर्चा खोले। इन्हे खुलेआम चुनौती दी जाये ताकि इनके हौसले पस्त हो। वे इसका अनुमोदन बन्द करेंगे तो अपने आप अमलतास पर दबाव कम हो जायेगा। इसका सीधा असर होगा।

नया राज्य बनने के बाद छतीसगढ मे हवाई यातायात बहुत बढ गया है। तेज शोर के कारण आसमान की ओर तकने को मजबूर पारम्परिक चिकित्सक एक बढिया सुझाव देते है। वे कहते है कि ऐसे जंगली वृक्ष जो बीजो से बढते है और तेजी से खत्म होते जा रहे है उन्हे ये हवाई यातायात फैलने मे मदद कर सकता है। नाना-प्रकार के बीजो को एकत्र कर इन हवाई साधनो विशेषकर हेलीकाप्टर मे भर दिया जाये। जब ये जंगल के ऊपर से गुजरे तो बीजो को बिखरा दिया जाये। ऐसा करते रहने से कालांतर मे कुछ तो जंगल बचे रहेंगे। पारम्परिक चिकित्सक का सोचना सही है पर अफसोस, हमारे देश मे योजना बनाने का कार्य इनके हाथो मे नही है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-10

- पंकज अवधिया

नया मोबाइली संवाद, सेन्हा और कुल्लु से आलिंगन

राजधानी से घंटो का सफर करके हम जंगल पहुँचे तो भूख लग गयी। एक उम्र थी जब कुछ भी खाये, न खाये सब चल जाता था पर अब दो समय का खाना जरुरी लगता है। अब जंगल भ्रमण काम के लिये होता है मौज-मस्ती के लिये नही, इसलिये जंगल पहुँचकर खाना बनाना और फिर मजे से खाना नितांत असम्भव लगता है। अल सुबह जब घर से निकलते है तो शहर के होटल खुले नही होते है। आस-पास के कस्बो मे गरम जलेबी और आलू-पोहा के साथ चाय मिल जाती है। इसी के सहारे पहले दिन गुजार लेते थे। जंगलो मे स्थित सुदूर गाँवो मे जलपान गृह मुश्किल से मिलते है। वहाँ सुबह वाला नाश्ता होता है जिसे दिन भर या दूसरे दिन तक बेचा जाता है। इस नाश्ते का भी अपना मजा है पर अब यह पचता नही है। इसलिये आजकल घर से दाल-भात लेकर निकलते है। अपने लिये भी और ड्रायवर के लिये भी। खाने की हडबडी रहती है क्योकि हम ज्यादा

से ज्यादा समय जंगल मे घूमना चाहते है। जैसे ही रात हुयी कैमरे का काम खत्म हो जाता है। इस बार की जंगल यात्रा मे ऐसे ही एक अनजान वन ग्राम मे हम रुक गये। छोटा सा होटल था जिसे ग्राहको की उम्मीद नही थी। छोटी गाडी मे दो शहरियो को देखकर उन्हे अटपटा लगा।

मैने पूछा कि क्या हम यहाँ खाना खा सकते है? आपके यहाँ चाय पी लेंगे। होटल वाला तैयार हो गया। हमे नमक और प्याज मिल गया। बातो ही बातो मे मैने होटल वाले से अनुरोध किया कि कोई स्थानीय आदमी दिलवा दो तो हम आस-पास के जंगल घूम आयेंगे। होटल वाले ने हमे बडे ही अटपटे ढंग से घूरा। फिर अपने दोस्तो के साथ बातचीत मे मशगूल हो गया। कुछ देर बाद मैने फिर से अपनी बात दोहरायी। होटल वाले ने इसे अनसुना कर दिया। मोबाइल पर वे सब गाना सुन रहे थे। अपनी ही दुनिया मे मगन दिखते थे। हमे तो जंगल घूमना था। अकेले नही जाना चाहते थे। किसी को तो ले जाना ही था। यदि दिन भर का मेहनताना देना होता तो भी। पता नही मुझे क्या सूझी मैने अपना एन 73 मोबाइल निकाला और वही गाना बजा दिया जो उन लोगो के मोबाइल मे बज रहा था। गाना फिल्म कयामत से कयामत तक का था, गजब का है दिन, देखो जरा। अब एन 73 मे जबरदस्त आवाज आती है। अचानक ही वे सब पास आ गये और मोबाइली गाना सुनने लगे। कुछ पलो मे माहौल बदल गया और उनमे से एक व्यक्ति जिसका नाम तिहारु था, साथ चलने के लिये तैयार हो गया। उसकी शर्त यही थी कि जंगल भ्रमण के दौरान मोबाइल मे गाना ऐसे ही बजते रहना चाहिये। संवाद स्थापित करने के इस नये ढंग ने मुझे आश्चर्य मे डाल दिया।

"ये सेन्हा है, साहब। इसका कोई भाग उपयोग मे नही आता।"भरी गर्मी मे नयी पत्तियो से युक्त सेन्हा के पौधो और बडे पेडो की ओर इशारा करते हुये तिहारु ने कहा। तिहारु के ये शब्द कि इसका कोई भाग उपयोग मे नही आता, मेरे लिये सुकून भरे थे। इसका साफ मतलब था कि सेन्हा को हमारी आने वाली पीढी भी देख पायेगी। कोई उपयोग नही होने के कारण यह मानव आबादी के बढते दबाव से बचा रहेगा जबकि थोडी भी उपयोगी प्रजातियो को आज की पीढी बिना किसी दया के निपटा देगी। सेन्हा के फल बडे आकर्षक होते है। पर व्यापारी इसे एकत्र नही करवाते है। अक्सर वे इन फलो को मेरे पास भेजकर कहते जरुर है कि इसका कोई उपयोग बताइये। ये जंगल मे बहुत है। कोई नया उपयोग बतायेंगे तो जितनी मात्रा मे बोलेंगे हम एकत्र करवा देंगे। मैने सेन्हा के औषधीय गुणो पर काफी जानकारियाँ एकत्र की है। पारम्परिक चिकित्सक इसके पौध भागो का प्रयोग नाना प्रकार के रोगो की चिकित्सा मे करते है। पर मेरी तरह वे भी डरते है कि इसके

उपयोग सार्वजनिक होने पर इसके लिये मारामारी मच जायेगी। मेरे लिये यह बडी दुविधा वाली स्थिति है। ज्ञान यदि नये शोधो के लिये उपलब्ध न कराया जाये तो इसका प्रसार नही हो पायेगा। यदि उपलब्ध कराया तो इसके सार्वजनिक होने मे देर नही लगेगी। सार्वजनिक होते ही यह प्रजाति खतरे मे पड जायेगी। भले ही यह ब्लाग और यह लेखमाला हिन्दी मे है पर स्टैट काउंटर के आँकडे बताते है कि दुनिया भर की जानी-मानी दवा कम्पनियो से लोग इस पर नजर गडाये है। वे एक नही पाँच नही, सत्रह घंटो तक इस ब्लाग पर टिके रहते है। फिर भारतीय शोध संस्थानो के माध्यम से शोध के नाम पर जानकरियाँ माँगते है। हाल ही मे "अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग" नामक लेखमाला मे कैंसर की जडी-बूटी पर लिखे गये लेख की प्रति लेकर कुछ विदेशी पर्यटक उस लेख मे वर्णित स्थान की तलाश करते पाये गये है। इतनी जल्दी यह सब होगा इसकी मुझे उम्मीद नही थी। एक ओर तो मुझे अपने अनुभव आप सब से बाँटने मे आनन्द आता है वही दूसरी ओर गिद्ध नजरो से डर भी लगता है। यही कारण है कि मूल लेखो से स्थान और विशेषज्ञो की पहचान हटाकर सम्पादित लेखो को यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

तिहारु से मिलते ही मुझे कुल्लु के पेड की याद आयी। वह इसे इस नाम से नही जनता था पर जब मैने उसकी तस्वीर दिखायी तो उसने झट से कहा कि पास की पहाडी मे एक-दो पेड है। उसने भी वही बात दोहरायी कि उसके देखते ही देखते यह आस-पास के जंगलो से साफ हो गया। पता नही कब ये बचे हुये एक-दो पेड भी कट जाये। हमने पहले उसी ओर का रुख किया। पथरीली जमीन मे ही कुल्लु मिलता है यह आप पहले पढ चुके है। इस बार भी हमे वह ऐसी ही परिस्थितियो मे मिला। कान्हा मे जब हमने इसे देखा तो इसमे फल लगे थे। जब चार जून की यात्रा वाले स्थान पर इसे देखा तो इसकी पत्तियाँ झड चुकी थी पर यहाँ हमे नयी हरी पत्तियो से युक्त कुल्लु दिखा। मेरे ड्रायवर ने कपडे उतारने शुरु किये। तिहारु घबरा गया। अधोवस्त्र पहने हुये ड्रायवर अपने बिछडे हुये सगे की तरह उससे लिपट गया। तिहारु यह सब देखता रहा। पाँच मिनट बाद वह उससे अलग हुआ और हाथ जोडकर कुल्लु की सात बार परिक्रमा की। किसी पारम्परिक चिकित्सक ने उसे बताया था कि उसके असाध्य समझे जाने वाले रोग के लिये इस तरह आलिंगन जरुरी था। उसे यह दिन मे कई बार करना था पर शहरो मे तो ये पेड है नही। जंगलो मे भी मुश्किल से मिलते है। इसलिये जब भी वह इन्हे देखता है बस लिपट जाता है। पारम्परिक चिकित्सक ने उसे कोई दवा नही दी थी। इस बात को बहुत महिने गुजर चुके है पर यह कुल्लु के आलिंगन का असर ही है कि वह यह मौका कभी नही छोडता। तिहारु को यह सब अच्छा लगा। उसने भी इस प्रक्रिया को दोहराया।

उसने कहा कि वह अब रोज आयेगा। इस पर ड्रायवर ने तपाक से कहा कि एक बार गले मिल गये तो अब यह तुम्हारा रिश्तेदार हो गया। तुम्हारी जान के लिये यह अपना सर्वस्व लुटा देगा पर तुम्हे भी यही करना होगा। ड्रायवर की बात सुनकर मै अभिभूत था। ऐसी महान आत्माओ का साथ जंगल भ्रमण को और भी सार्थक बना देता है।

मै बार-बार यह लिखता रहता हूँ कि जंगल मे जो काम मै करता हूँ उसकी विधिवत शिक्षा मैने नही ली। यह तो शौक है जो जीवन बन गया है। दुनिया भर से शोधकर्ता जब सही पहचान के लिये वनस्पतियो के नमूने और चित्र भेजते है तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। हाल ही मेरे द्वारा खीची गयी चालीस हजारवी तस्वीर इंटरनेट पर विश्व समुदाय के लिये उपलब्ध हुयी है। तीन लाख तस्वीरो मे से केवल चालीस हजार ही अभी अपलोड कर पाया हूँ। दुनिया के जाने-माने वनस्पति विशेषज्ञ लिखते है कि इतनी सारी तस्वीरो और करोडो पन्नो का ज्ञान कोई भी मुफ्त मे नही बाँटता। मुझे इस बात का अहसास है कि ये बहुत उपयोगी सामग्रियाँ है पर इन्हे पूरी तरह पढने वाले विद्यार्थी तेजी से कम हो रहे है। उनके रुचि जगाने मे मै थोडा भी सफल हो जाऊँ तो मै अपने जीवन को सार्थक मानूँगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-11

- पंकज अवधिया

एंटी-एजिंग गुणो वाली खपरा भाजी और भिम्भौरा की मिट्टी

"रोक लो, रोक लो। एक और भिम्भौरा। यही रुको मै अन्दर जाकर तस्वीर लेकर आता हूँ।"जब भी मै भिम्भौरा या दीमक की बाम्बी के पास ऐसे गाडी रुकवाता हूँ तो मेरे साथ चल रहे लोग खीझ उठते है। "कैसा वैज्ञानिक है? जब देखो तक भिम्भौरा की ही तस्वीरे लेता रहता है। अभी-अभी तो दस तस्वीरे ली थी। अब फिर गाडी रुकवा रहा है।" ऐसी जाने क्या-क्या बाते उनके मन मे चलती रहती है। पर मेरा तस्वीरे लेना कम नही होता है। भिम्भौरा चाहे बडे हो या छोटे अपने आप मे काफी जानकारियाँ समेटे हुये होते है।

भिम्भौरा यदि छोटा हो तो गाडी मे बैठे-बैठे ही पता लग जाता है कि आस-पास रेतीली मिट्टी है। क्योकि रेत के महल बडे नही होते है। यदि भिम्भौरा बहुत ऊँचा होता है तो उस जगह बरसात मे चलने की हम सोच भी नही सकते है। कोशिश रहती है कि कैसे भी पानी गिरने से पहले उस स्थान से गाडी बाहर आ जाये। एक बार ऐसे स्थानो मे गाडी फँसी नही कि लेने के देने पड जाते है। जितना गाडी को बाहर निकालो उतनी और फँसती जाती है। भिम्भौरा को भूमिगत जल का सूचक भी माना जाता है। आधुनिक शोध इस बात की पुष्टि करते है कि जहाँ पुराना भिम्भौरा होता है वहाँ भूमिगत जल होता ही है। भिम्भौरा दीमक का घर होता है। जंगलो मे टूटे हुये भिम्भौरा अक्सर दिख जाते है। इससे हम इस बात का अनुमान लगा लेते है कि यहाँ भालूओ का आना-जाना है। भिम्भौरा की तोड-फोड भोजन की तलाश मे भालू करते है। आमतौर पर भिम्भौरा से लोग दूर ही रहते है। यह माना जाता है कि यहाँ विषैले साँप रहते है। यह बात गलत भी नही है। मुझे तस्वीरे लेता देखकर अक्सर स्थानीय लोग दूरी बनाये रखने की सलाह देते है।

शहरो मे जब दीमक का प्रकोप बढ जाता है तो विशेषज्ञ भिम्भौरा खोजते है। भिम्भौरा मे दीमक की रानी होती है जो बडी संख्या मे बच्चे देती रहती है। घरो के अन्दर आप दीमको पर जितना भी अंकुश लगा ले जब तक भिम्भौरा रहेगा और रानी जिन्दा रहेगी, समस्या का हल नही निकलेगा। पेस्ट कंट्रोल वाले दीमको को तो मारते है पर कभी भी रानी को नही मारते है। इससे साल दर साल उन्हे दीमक मारने का ठेका मिलता रहता है। शहरी इलाको मे दीमक के समूल नाश के लिये रानी को खत्म किया जाता है। इसके लिये बडे भिम्भौरा की तलाश की जाती है। फिर उसके सभी प्रवेश मार्गो को बन्द करके उसमे फास्फीन गैस छोडी जाती है। इससे हजारो की संख्या मे दीमक और उनकी रानी का नाश हो जाता है। भिम्भौरा के अन्दर रहने वाले साँप भी मर जाते है।

मैने इस जंगल यात्रा मे बहुत से ऊँचे भिम्भौरा देखे। मैने उनकी तस्वीरे तो ली ही साथ ही उनकी मिट्टी भी एकत्र कर ली। पारम्परिक चिकित्सा मे भिम्भौरा की मिट्टी का विशेष महत्व है। इसका प्रयोग बाहरी और आँतरिक तौर पर औषधि के रुप मे होता है। भले ही सारे भिम्भौरा एक जैसे दिखे पर पारम्परिक चिकित्सक भिम्भौरो को सौ से अधिक प्रकारो मे बाँटते है। साधारण जुकाम से लेकर कैंसर जैसे जटिल रोग की चिकित्सा मे नाना प्रकार के भिम्भौरा से एकत्र की गयी मिट्टी के प्रयोग से रोगियो की जान बचायी जाती है। मैने अभी तक देश भर मे नाना प्रकार के भिम्भौरा की दस हजार से अधिक तस्वीरे खीची है। सबकी अपनी कहानी है। विशेष वनस्पतियो के पास बने ऊँचे

भिम्भौरा से मिट्टी एकत्र करके पारम्परिक चिकित्सक उसे उन पारम्परिक मिश्रणो मे मिलाते है जो कि जटिल होते है। जटिल यानि जिनमे दो सौ से ज्यादा वनस्पतियो का प्रयोग किया जाता है। ऐसे मिश्रण भिम्भौरा की मिट्टी के बिना अधूरे माने जाते है। मुझे याद आता है कि उत्तरी छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको ने कुछ वर्षो पहले इस तरह के भिम्भौरा का जिक्र करते हुये कहा था कि जब भी अवसर मिले मै उनके लिये यह विशेष मिट्टी लेकर आऊँ। उन्होने एक मंत्र भी दिया था। भिम्भौरा के सामने खडे होकर पहले इसे पढना था फिर हाथ जोडकर भिम्भौरा को प्रणाम करना था। उसके बाद ही लकडी से मिट्टी खोदना था।

मैने बतायी गयी विधि अपनायी। मुझे मंत्र दोहराता देखकर तिहारु ने मजाक मे कहा कि आप भी बैगाई जानते है क्या साहब? मंत्र पर मेरा विश्वास कुछ कम है पर यदि मै सही विधि नही अपनाऊँगा तो पारम्परिक चिकित्सक मुझसे यह उपहार स्वीकार नही करेंगे। मैने मिट्टी एकत्र की और उसे लाल कपडे मे रख लिया। अब जल्दी ही मै उत्तरी छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको से मिलने की कोशिश करुंगा।

तिहारु ने भिम्भौरा मे मेरी रुचि देखकर बताया कि इन पर बहुत सी वनस्पतियाँ उगती है। इस ऊँचे भिम्भौरा से एकत्र की गयी खपरा भाजी का प्रयोग इस क्षेत्र के पारम्परिक चिकित्सक रोगियो की जीवनी शक्ति बढाने के लिये करते है। खपरा भाजी से मुझे बस्तर के पारम्परिक चिकित्सको की याद आ गयी। प्रसव के बाद कम जीवनी शक्ति वाली महिला को वे इसी खपरा भाजी को खाने की सलाह देते है। साथ मे हल्दी युक्त औषधीय चावल भी दिया जाता है। भिम्भौरा से एकत्र की गयी मिट्टी मे वनस्पतियाँ मिलाकर सरसो तेल के साथ लेप बनाया जाता है। फिर इस लेप को महिला के तलवो पर खूब देर तक मला जाता है। खपरा भाजी से मुझे उत्तरी छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सक भी याद आते है जो इस भाजी के साथ दूसरी वनस्पतियो को पानी मे उबालकर भाप को ज्वर के कारण पीडा सह रहे रोगी की ओर छोडते है। फिर ज्वर उतर जाने के बाद भिम्भौरा की मिट्टी को मल-मल कर स्नान करने की सलाह देते है। तिहारु की बातो से तो सारा का सारा "खपरा-पुराण" याद आ गया।

अपनी एंटी-एजिंग प्रापर्टी के कारण खपरा भाजी पर देश-विदेश मे बहुत अनुसन्धान हुये है पर ज्यादातर शोधकर्ताओ ने व्यापारियो से खपरा भाजी खरीदी और प्रयोग किये। यदि वे स्वयम जंगल मे जाते और पारम्परिक विधियो के अनुसार इसे एकत्र करते तो वे सही मायने मे इसके दिव्य औषधीय गुणो को जान पाते। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-12

- पंकज अवधिया

बुढापे मे जवानी लाने वाला कठपीपल और चरवाहे का रतनजोतीय दर्द

देवस्थानो मे अक्सर पीपल और बरगद के वृक्ष होते है। "ये बरगद ही है ना?" मैने यह प्रश्न पूछा और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही उसकी तस्वीर लेने लगा। "नही ये बरगद नही, कठपीपल है।" मै चौक पडा। कठपीपल मेरे लिये सुना हुआ नाम था पर मैने इसे देखा नही था। मैने कैमरे से नजरे हटाकर उस वृक्ष को ध्यान से देखा तो वह बरगद की तरह ही दिखा। पास से पत्तियो को देखा तो वे बरगद से हटकर लगी पर पीपल की तरह तो बिल्कुल नही थी। "कठपीपल?"। आश्चर्य के साथ मै खुश भी हो रहा था। जिस वृक्ष के बारे मे मैने पारम्परिक चिकित्सको से सुनकर सैकडो पन्ने लिखे थे वह आज सामने था। अब वह वृक्ष मुझे किसी देवता के समान लगने लगा था।

"यहाँ केवल दो कठपीपल है। एक आपके सामने और दूसरा वो रहा। ये आस-पास कही नही है। यह तो इस देवस्थान का प्रताप है जो यहाँ इसने आसन ग्रहण किया है।" स्थानीय लोगो ने बताया। दूसरे कठपीपल को देखा तो उसकी विशालता देख आँखे चौडी हो गयी। उस पुराने वृक्ष को चबूतरे से घेर दिया गया था। मन्नत माँगने के लिये लोगो ने नारियल बाँध रखे थे। हर साल इसी के साये मे मेला लगता है। मुझे लगा कि मेरे जंगल आने का उद्देश्य पूरा हो गया। स्थानीय लोगो के अनुसार इस कठपीपल की महिमा अपरम्पार है। आमतौर पर लोग इसे बरगद मान बैठते है। कोई पूछता नही तो कोई बताता भी नही। पर जानकार पारम्परिक चिकित्सक इसकी बडी सेवा करते है और विशेष तिथियो मे इसके पौध भागो को एकत्र करके अपने पास जतन से रख लेते है। नाना प्रकार के वात की चिकित्सा करने वाले पारम्परिक चिकित्सक अपने पास लकडी से बना एक बेलन रखते है। औषधीय तेलो से मालिश के बाद इस बेलन को प्रभावित भागो मे चलाया जाता है। इसमे पारम्परिक चिकित्सक की कुशलता तो रहती ही है साथ ही बेलन जिस लकडी से बना होता है उसकी भी विशेष भूमिका होती है। आमतौर पर पुराने महुआ और तेन्दु के वृक्ष के भीतरी भाग से इसे बनाया जाता है। लकडी का बेलन कई प्रकार के

असाध्य रोगो की चिकित्सा मे भी प्रयोग किये जाते है। जैसे मौत से जूझते कैंसर के मरीज की चिकित्सा के दौरान आराम के पलो मे बेलन पूरे शरीर मे फिराया जाता है। कठपीपल से बना बेलन इसी कार्य के लिये प्रयोग होता है। आमतौर पर सोलह किस्म के बेलन पारम्परिक चिकित्सक उपयोग करते है पर हमेशा शुरुआत कठपीपल के बेलन से होती है। मैने कठपीपल के बेलन देखे थे और उनके प्रयोग भी पर कठपीपल के वृक्ष को पहली बार देखा।

आपसे बातचीत मे मै भले ही गम्भीर लगूँ पर मुझे जंगल मे एक अबोध बच्चे की तरह जाना होता है। हर जानी-अनजानी चीजो पर अबोध बच्चे की सी प्रतिक्रिया करनी होती है। यदि मै अपने आप को विशेषज्ञ मान बैठता और देवस्थान के बरगद के बारे मे स्थानीय लोगो से नही पूछता तो मेरी हेकडी बनी रहती पर अमूल्य ज्ञान प्राप्त नही कर पाता। इस जंगल यात्रा की सुबह का ही किस्सा ले।

सफर के दौरान हमने बडे बाँध से आ रही सिचाई नहरो को देखा। उसमे रतनजोत लगा हुआ था अंतहीन कतारो मे। बस फिर क्या था गाडी नहर के किनारे पर ले ली। मुख्य मार्ग छोड दिया। तस्वीरो का दौर शुरु हो गया। रतनजोत पर ढेरो कीडे मिले, यह दिखा कि कैसे इसका रोपण स्थानीय वनस्पतियो को नुकसान पहुँचा रहा था, कैसी मिट्टी मे यह अच्छे से उग रहा था और कैसी मे इसकी बढत प्रभावित हो रही थी। अचानक हमे एक बकरी चराने वाला मिला। नहर के किनारे जहाँ मोटरसाइकिल चलती थी, वहाँ हमारी चार पहिया को देखकर वह ठिठका। ड्रायवर ने मेरा परिचय देना चाहा पर मैने उसे मना किया। मैने ऐसे ही पूछा, "ये कौन सा पौधा है? हम लोग व्यापारी है, मुख्य मार्ग से जा रहे थे, इस पौधे को देखकर इधर आ गये।" अब चरवाहे ने रतनजोत के बारे मे बताना शुरु किया। कुछ देर के बाद वह खीझ कर बोला कि अब मुझे जाना है। उसकी खीझ का कारण जानना चाहा तो उसने खुलासा किया कि पहले नहर के किनारे घास और दूसरे खरसवार उग जाते थे। इससे उंनके जानवरो को चारा मिल जाता था। उसके साथी चरवाहे यही आते थे पर जब से रतनजोत लगा है, इसकी सघन आबादी के कारण दूसरी वनस्पति उगती नही है। अब हमे आधे दिन की दूरी पार करनी होती है तब ढंग का चारा मिलता है। चरवाहे का दर्द सुनकर मुझसे रहा नही गया। मैने उसकी बातो की फिल्म तैयार कर ली। चरवाहे का दर्द बयाँ करता था कि कैसे वातानुकूलित कमरो मे बनायी गयी योजनाओ मे आम आदमी का ध्यान नही रखा जाता है?

जंगल से वापस लौटकर जब मैने ई-मेल चेक किया तो मुझे आस्ट्रेलिया से एक वैज्ञानिक मित्र का सन्देश मिला। वे वहाँ रतनजोत का विरोध कर रहे है। उन्हे दूसरे ही दिन एक

सरकारी बैठक मे भाग लेकर रतनजोत के दुष्प्रभावो के बारे मे बताना था। इस बैठक मे बडी संख्या मे रतनजोत समर्थक आने वाले थे। उनकी तैयारी जोरदार थी। वैज्ञानिको ने मेरे शोध लेखो और तस्वीरो को पहले ही अपनी प्रस्तुति मे शामिल कर लिया था। वैज्ञानिक मित्र कुछ और शोध सामग्री चाहते थे। मैने उन्हे चरवाहे की समस्या वाली फिल्म अंग्रेजी सब टाइटिल के साथ भेज दी। दूसरे दिन व्याख्यान के बाद उस वैज्ञानिक मित्र ने यह फिल्म दिखायी तो लोगो ने गहरी रुचि दिखायी। स्थानीय वनस्पतियो की रक्षा के लिये वहाँ कठोर से कठोर कदम उठाये जाते है। रतनजोत भारत की तरह उनके लिये भी विदेशी पौधा है जिसे वे बरदाश्त नही करने वाले। वैज्ञानिक मित्र ने मुझे बताया कि इस फिल्म ने जंग जीतने मे मदद की।

मैने यह फिल्म एक स्थानीय योजनाकार को भी दी थी पर उन्होने इसे किनारे पटकते हुये कहा कि सब बकवास है। रतनजोत से क्रांति हो रही है। देश भर के अखबारो को देखो, कहाँ चरवाहे की बात सुनते हो।

चलिये अब कठपीपल पर वापस आये। शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिये पारम्परिक चिकित्सक 36 से अधिक प्रकार के जंगली फलो को मिलाकर एक मिश्रण तैयार करते है। इस मिश्रण को लम्बे समय तक दिया जाता है। इसमे कठपीपल के फल अहम भूमिका निभाते है। पारम्परिक चिकित्सक यह दावा करते है कि ऐसे मिश्रणो का सही प्रयोग सालो तक रोगो से रक्षा कर सकता है। रोगो का कम आक्रमण यानि शरीर को कम क्षति। शरीर को कम क्षति यानि बुढापे मे भी उसी दक्षता से काम किया जा सकता है जैसे जवानी मे किया जाता है।

उस क्षेत्र विशेष मे कठपीपल के प्रति भक्ति देखकर लगा कि वहाँ इसे कोई खतरा नही है।पर मुझे दूसरे क्षेत्रो के पारम्परिक चिकित्सको की बात याद आ रही है। उन्होने कठपीपल की घटती संख्या पर सदा ही चिंता दिखायी है। मैने कठपीपल की ढेरो तस्वीरे रख ली है। इनके आधार पर मै विभिन्न जंगलो मे इनकी उपस्थिति का पता लगाता रहूंगा और इन पर नजर रखने की कोशिश करता रहूंगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-13

- पंकज अवधिया

परलोक वाहन की ठोकर और बिजली बरसात मे भटकता कुंज

सामने घना जंगल था। काले बादल आसमान पर थे। बिजली चमक रही थी। राहगीर गाँवो मे रुक गये थे। तेज अन्धड चल रहा था। ऐसे मे बीच जंगल मे हमारी गाडी चली जा रही थी। कुछ देर मे शाखाए गिरने लगी। हमारी गति कम हो गयी। जंगल मे चलते-चलते हम कुल्लु का वृक्ष भी ढूँढते जा रहे थे। अचानक जंगल मे एक व्यक्ति की छाया दिखायी दी। ब्रेक लगाया और ची इ इ ई की आवाज के साथ गाडी रुक गयी। क्या तुमने भी वही देखा जो मैने देखा? मैने ड्रायवर से पूछा। वह बोला कि हाँ, पीछे जंगल मे एक आदमी तो दिखा है। गाडी पीछे ली तो वह साफ-साफ दिखने लगा। अचानक बिजली कडकी और माहौल डरावना लगने लगा। गाडी को देखकर वह आदमी पास आ गया। उसने सोचा कि हम रास्ता न भटक गये हो। खिडकी खोली तो उसने गाडी के अन्दर झाँका। "अरे, डाक्टर साहब, नमस्कार।" मै चौक पडा। मैने पूछा, "कौन? मै पहचान नही पाया।" "मै कुंज, विश्वनाथ जी का पोता।" उसने कहा।

विश्वनाथ जी से तो मिलने मै जा रहा था। वे पारम्परिक चिकित्सक है और जंगल का चप्पा-चप्पा जानते है। मै उनके साथ काफी समय तक रहा भी पर मैने कभी कुंज को वहाँ नही देखा। दरअसल विश्वनाथ जी के रोगियो से तंग आकर उनके बेटे ने उन्हे बाहर का रास्ता दिखा दिया था। अपने परिवार से दूर वे लोगो का इलाज करते और फक्कडी का जीवन जीते।

"साहब, दादा आपके बारे मे बहुत बताते थे। आपकी खीची तस्वीरो का सेट उनके पास था। वे जाते-जाते मुझे दे गये है।"कुंज की इन बातो से मेरी तन्द्रा टूटी। कुंज ने बताया कि वह पिताजी से विद्रोह करके दादा के पास आ गया और बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब दादा के रोगी उसी के पास आते है। श्री विश्वनाथ अब उडीसा के घने जंगलो मे किसी आश्रम मे रहते है। वे अब शायद ही लौटे। कुंज की बात सुनकर अब मुझे उसका खराब मौसम मे बाहर निकलना आश्चर्यजनक नही लग रहा था। मैने अपने लेखो मे पहले लिखा है कि आसमानी बिजली से झुलसे वृक्ष पारम्परिक चिकित्सा मे बहुत उपयोगी माने जाते है। बिजली गिरने के बाद जितनी जल्दी प्रभावित वृक्ष के पास पहुँचे उतनी ही कारगर औषधि मिलती है। कुंज के दादा इस तरह के अनोखे प्रयोगो मे दक्ष है। उनके जाने के बाद अब यह कुंज की जिम्मेदारी थी। बिजली से प्रभावित वृक्ष तक पहुँचने

के लिये पारम्परिक चिकित्सक बहुत जोखिम उठाते है। इस जोखिम के बदले उन्हे ऐसी औषधि मिलती है जो साल भर मे अनगिनत लोगो को राहत पहुँचा पाती है।

"कुंज, गाज से डर नही लगता?" मैने पूछा। "उसने वृक्षो की ओर इशारा करते हुये कहा कि बजरंगबली साथ मे है तो किस बात का डर? मैने उसकी अंगुली की दिशा मे देखा तो बहुत से बन्दर दिखायी दिये। आम लोगो की यह धारणा है कि आसमानी बिजली से बन्दर बचे रहते है। वे वृक्ष बदलते रहते है। कुंज भी उनका अनुसरण कर रहा था। "और साहब, हम लोगो को मान्यता कब मिलेगी? दादा कहते थे कि डाक्टर साहब से सम्पर्क मे रहना तो वे एक दिन जरुर पारम्परिक चिकित्सा को मान्यता दिलायेंगे।" कुंज ने मेरे पुराने जख्म को कुरेद दिया। जब से मैने पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण शुरु किया है उससे पहले से ही मै पारम्परिक चिकित्सको को कानूनी मान्यता दिलाने की शपथ लिये हुये हूँ। कानूनी मान्यता की आस मे न जाने कितने साथी बिछुड गये पर अभी भी मान्यता दूर की कौडी नजर आती है। हमारे देशवासी इस पारम्परिक ज्ञान का मूल्य नही जानते है। वे विश्वास को अन्ध-विश्वास कहते है। विदेशी इस ज्ञान के पीछे दीवाने है पर पारम्परिक चिकित्सक के पक्ष मे कोई भी खडा नही होना चाहता है।

कुंज से मुलाकात ने मुझे तरोताजा कर दिया। सुबह जब मै अपनी गाडी से शहर के अन्दर ही था तब एक बडा हादसा होते-होते बचा। मै गाडी चला रहा था। ड्रायवर बगल की सीट मे बैठा था। शहर के अन्दर भीडभाड वाले इलाके मे जैसे ही मैने एक आटो को ओवरटेक करना चाहा भडाक से आवाज आयी है और मेरी खिडकी से सटकर एक दस चक्के का ट्रक निकला। इतना सट के कि शीशे के परखच्चे उड गये। मैने गाडी अन्दर की ओर कर ली और ट्रक की चपेट मे आने से बच गया। सब कुछ पलक झपकते ही हो गया। हमारे देखते ही देखते डगमगाता हुआ ट्रक नजरो से ओझल हो गया। हम बच तो गये पर गाडी का दरवाजा अटक गया। खरोच के निशान आ गये। ड्रायवर बाहर निकला पर ट्रक का नम्बर नोट नही कर पाया। मैने गाडी किनारे की। गाडी की बाडी पर असर था। गाडी सलामत थी। मैने बिना घर मे फोन किये सफर जारी रखने का मन बनाया। बार-बार मन मे लोगो की चेतावनी ध्यान मे आ रही थी। "आप वैज्ञानिक हो, दस तरह की बाते मन मे चलती रहती है, आप तो ड्रायविंग नही किया करो।" और जाने क्या-क्या। ड्रायवर ने गाडी चलाने का अनुरोध किया तो मैने मना कर दिया। हम आगे बढे।

कुछ दूर चलने पर देखा कि एक जगह पर भीड लगी है। उस ट्रक ने एक जीप को ठोकर मारी थी। कुछ दूर पर दो और गाडियो से टकराने के बाद वह गायब हो गया था। जीप

वाले को अस्पताल ले जाया जा रहा था। हम सौभाग्यशाली रहे। रात को जब लौटे तो वही ट्रक एक पुलिस थाने मे खडा दिखा। वह पकडा गया था। लोगो ने उसकी पिटाई की थी और उस पर मामला दर्ज किया जा चुका था। उसे अपने किये की सजा मिल गयी थी। रेत की ट्रको पर खेप पूरी करने का दबाव रहता है। जितनी अधिक खेप, उतने अधिक पैसे। इसी लालच मे वे शहरी लोगो की जान के दुश्मन बन जाते है।

कुंज के प्रश्न का जवाब मेरे पास नही था। मैने वही घिसा पिटा जवाब देकर उसे संतुष्ट करने का प्रयास किया। उससे विदा लेकर हम आगे बढे। हमे एक और पारम्परिक चिकित्सक से मिलना था। मै उनसे दस-बारह साल बाद मिलने जा रहा था। एक वनग्राम मे पहुँचने के बाद हमे वहाँ की फिजा बदली-बदली लगी। पारम्परिक चिकित्सक के घर के आस-पास नये घर बन गये थे। गाँव का नक्शा बदल गया था। बरामदे मे घुसते ही उनकी हार लगी तस्वीर देखकर मन बैठ गया। उनका लडका पूजा कर रहा था। मै बरामदे मे बैठकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा फिर पैदल ही गाँव की गलियो मे निकल गया। लोगो से चर्चा हुयी। उन्होने बताया कि पारम्परिक चिकित्सक के गुजरने के बाद से अब रोगी कम आते है। लडके ने पिताजी से ज्यादा कुछ सीखा नही।

इस बीच खबर आयी कि लडके की पूजा समाप्त हो गयी है। मै घर आ गया। लडके ने पहचान लिया और फिर मेरे मुंडाये हुये सिर को देखकर बोला कि ये कैसे? कैंसर हो गया है क्या? मैने मुस्कुराकर कहा कि नही भाई, बालो को विशेष उपचार के लिये साफ किया है। उससे बात चल निकली। मुझे यह जानकर बडा ही दुख हुआ कि लडके ने जंगल जाना छोड दिया है। अब वह दुकान से दवाए खरीदकर रोगियो को देता है। क्रोसीन और एनासीन से उसकी आलमारी भरी पडी थी। मैने जंगल से लायी साधारण जडी-बूटी उसे दिखायी तो उसने हाथ जोड लिये। वह नही पहचान पाया। वह अपने को पारम्परिक चिकित्सक कहता है पर उसकी चिकित्सा मे परम्परा का नामोनिशान नही है। उसके पिता शायद उसे करीब से जानते थे। यही कारण है कि वे पारम्परिक चिकित्सा के सारे राज अपने साथ ले गये। उन्होने रक्त सम्बन्धी रोगो का गूढ ज्ञान मुझे दिया था जो अब दस्तावेज के रुप मे मेरे पास उपलब्ध है। मैने लडके को ये दस्तावेज देने चाहे तो उसने लेने से इंकार कर दिया। यह सब कुछ बडा ही दुखदायी था।

वापस लौटते समय ड्रायवर गाडी चलाता रहा और मै जंगल मे पारम्परिक चिकित्सको के साथ बिताये दिनो की याद मे खोया रहा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-14

- पंकज अवधिया

बिना हर्ब का हर्बल व्याग्रा और बरसात की प्रतीक्षा मे बैठा जंगल

"इस बार बरसात मे देर हो रही है। लक्षण ठीक नजर नही आ रहे है। लाल कीडो की खोज मे मै एक हफ्ते से भटक रहा हूँ पर अभी तक वे नही निकले है। यदि पानी नही गिरा या देर से गिरा तो मुश्किल बढ जायेगी।" इस जंगल यात्रा के दौरान बरसात मे हो रही देरी से हर कोई परेशान दिखा। लाल कीडा एक तरह का बग है जो कि पानी गिरने के बाद ही जमीन पर निकलता है। पारम्परिक चिकित्सक जीवित और स्वाभाविक मौत मरे, दोनो ही प्रकार के लाल कीडे को एकत्र कर लेते है। लाल कीडे की सहायता से बहुत से रोगो की पहचान की जाती है। आम तौर पर रोगी को नंगे बदन लिटा कर उसके पेट मे कुछ कीडे छोड दिये जाते है। ये कीडे रोगी को कोई नुकसान नही पहुँचाते है। पारम्परिक चिकित्सक बस कीडो के बदले व्यवहार का अध्ययन करते है। इससे ही वे रोगो का पता लगाते है। अब उनके पास आधुनिक प्रयोगशाला तो है नही। मैने अपने लम्बे अनुभव से यह पाया है कि बहुत बार आधुनिक लैब के परिणाम इनके सामने बौने साबित हो जाते है।

पारम्परिक चिकित्सक बडे जतन से इन कीडो को लम्बे समय तक रखते है। मरे हुये कीडो से रक्त सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा की जाती है। इन्हे वनस्पतियो के साथ मिलाया जाता है पर अपनी निगरानी मे पारम्परिक चिकित्सक इसका प्रयोग करते है। इस बार बरसात न होने होने से लाल कीडे खोजे नही मिल रहे है। इससे पारम्परिक चिकित्सको को विकल्पो की शरण मे जाना होगा।

रेड वेलवेट माइट का मौसम भी अब आने ही वाला है। इस बार इनके आने मे देरी होगी क्योकि मानसून भटक गया है। अभी-अभी ग्वालियर से खबर आयी है कि वहाँ समय से पहले ये धरती से बाहर निकल आये है। छत्तीसगढ मे पारम्परिक चिकित्सक बेसब्री से इस माइट की प्रतीक्षा मे है। इस माइट का एक बडा व्यापार है। पारम्परिक चिकित्सको के उलट व्यापारी मन ही मन प्रार्थना कर रहे है कि इस बार पानी कम गिरे और न गिरे

तो और अच्छा। क्यो? क्योकि कम पानी मतलब माइट के मुँहमाँगे दाम। कम पानी के वर्षो मे एक-एक माइट की कीमत लगती है। दाम आसमान छूने लगते है। व्यापारी मरे हुये माइट को सुखाकर अपने पास रख लेते है। जब दाम और बढते है तब वे गोदाम से इन्हे निकालते है। पारम्परिक चिकित्सक कम मात्रा मे माइट एकत्र करते है। वे अल्प-मात्रा मे इसके प्रयोग के पक्षधर है क्योकि इनकी तासिर गर्म मानी जाती है। वे इन्हे एकत्र करते ही इनसे चूर्ण और तेल बना लेते है और फिर उसी रुप मे साल भर प्रयोग करते है। देश-दुनिया के बाजार मे यह हर्बल व्याग्रा के रुप मे बिकता है पर पारम्परिक चिकित्सक इसके ढेरो उपयोग जानते है। वे साधारण ज्वर से लेकर मधुमेह की जटिल अवस्था मे इसका प्रयोग करते है। माइट तो हर्ब (वनस्पति) नही है पर फिर भी माइट से बना तेल इसी नाम से बेचा जाता है। इसे खाने की सलाह भी दी जाती है और इसके तेल के बाहरी प्रयोग की। पारम्परिक चिकित्सक जब इन व्यवसायिक उत्पादो को देखते है तो ठहाके मार के हँसते है। फिर अपनी झोपडी के पीछे जाकर दूब सहित दूसरे साधारण खरपतवार ले आते है और कहते है कि ये साधारण वनस्पतियाँ इस व्याग्रा की बाप है। ये वनस्पतियाँ आकर्षक डब्बो मे बन्द नही है इसलिये कोई इनकी कद्र नही जानता।

बरसात मे हो रही देरी से रेड वेलवेट माइट के व्यापारियो के अलावा वन्य प्राणियो के शिकारी भी खुश है। अपनी इस जंगल यात्रा के दौरान कच्ची सडको मे चलते हुये हमे हर दस कदम पर रुकना पडता था। सभी जगह फन्दे लगाये गये है। इतने मजबूत फन्दे कि यदि आदमी इसमे फँस जाये तो वह भी न निकल पाये। शिकारियो के हौसले बुलन्द लगते है। जहाँ भी फन्दे दिखे हम समझ जाते है कि आस-पास पानी है। प्यास के मारे वन्य-प्राणी जैसे ही पानी की ओर आते है फन्दे मे फँस जाते है। इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते है कि उन्हे फन्दे लगे होने का अहसास है पर प्यास के आगे वे मजबूर है। जब सारे फन्दे अपना काम कर चुके होते है तो वे बेफिक्री से पानी पीते है। पर उनकी बेफिक्री स्थायी नही होती। शिकारी रातो-रात फन्दो को खाली कर देते है। बायसन के लिये लगाये गये एक फन्दे मे हमारी मारुति आल्टो का अगला हिस्सा फँस गया। गाडी बिल्कुल डरी नही। उसे पूरा विश्वास था कि हम उसे किसी भी हाल मे निकाल लेंगे। हमने ऐसा किया भी।

आज ही अखबारो मे यह खबर आयी कि पिथौरा मे दो बायसन मारे गये है। शिकारियो ने फन्दे को शायद ज्यादा कारगर नही समझा और पानी मे ही यूरिया और कीटनाशक मिला दिया। दो बायसन वहाँ पर मरे पाये गये। अखबारो और जंगल विभाग के लिये तो

बात यही समाप्त हो गयी। बायसान को जला दिया गया और जुर्म दर्ज कर लिया गया। पर जहर मिले पानी की ओर किसी ने ध्यान नही दिया। वह अंब भी जंगल मे वैसे ही है और प्यास से व्याकुल वन्य-प्राणियो को मौत खुला निमंत्रण दे रही है। न जाने कितने और जीव उस जहर भरे पानी को पीयेंगे और मरते जायेंगे। जब पानी सूख जायेगा और पहली बारिश से डबरी भरेगी तो एक बार फिर जहर अपना असर दिखायेगा। जंगलो से गुजरने वाले हमारे जैसे साधारण लोग जब इतनी सी बात समझ सकते है तो सक्षम विभाग क्यो नही जहरीले पानी युक्त स्त्रोतो को बन्द करने की पहल करते है? मुझे याद आता है कि एक बार बारनवापारा के जंगलो मे बायसन के मरने की खबर सुनकर हम लोग वहाँ गये थे। मरे हुये बायसन को ले जाया जा चुका था। जहरीले पानी की डबरी वैसे ही थी। ग्रामीणो ने मदद की तो हम लोगो ने बबूल के काँटो से उसे घेर दिया ताकि उस ओर का रुख कोई वन्य प्राणी न करे। सब ऐसा क्यो नही करते?

बरसात नही होने के कारण अब बाइक सवार जंगलो मे बढ गये है। ये शिकारी नही बल्कि शिकार के शौकीन है। ये चिडियो के शिकारियो की तलाश मे रहते है। मरी हुयी चिडियो को खरीदकर वही पकाकर खा लेते है। जंगल मे चिडियो को पकाकर खाये जाने के बहुत से ताजे निशान मिलते रहते है। बाइक सवार अपने साथ बीयर की बोतल लाते है पर वापस नही ले जाते है। बाइक सवारो की इस करतूत से सबसे बडी हानि उन पारम्परिक चिकित्सको को होती है जो नंगे पैर जंगलो मे चलते है। निश्चित ही काँच के टुकडे वन्य प्राणियो के लिये भी मुसीबत बनते होंगे।

बुजुर्ग किसान बरसात मे हो रही देरी के चलते आस-पास के मन्दिर के पुजारियो के पास आ जाते है। पुजारी राजधानी से खरीदे हुये पंचांग को बाँचते है और फिर बताते है कि इस दिन वर्षा का सम्भावना है। किसान उस दिन की बेसब्री से प्रतीक्षा करते है। फिर मायूस होकर पंचांग की अगली तारीख लेने चले जाते है। वे अपने खेतो का भी मुआयना करते है। विशेष वनस्पतियो पर उनकी नजर है। इसी से वे पूर्वानुमान लगा लेंगे कि इस बार मौसम कैसा रहने वाला है?

इन विपरीत परिस्थितियो को झेल रहे जंगल के आम लोगो के बीच कैमरा लिये घूमते हुये मन मे बडी टीस होती है। कष्टो का दस्तावेजीकरण मन को भारी कर देता है।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-15

- पंकज अवधिया

जंगलो के लिये अभिशाप ढाबे और उनकी काली करतूते

"चाय के साथ मसाला पापड ले आना। मसाला पापड मिलता है ना यहाँ?" मैने तो सिर्फ चाय के लिये कहा था पर ड्रायवर ने उसमे मसाला पापड भी जोड दिया। हमारी योजना एक ढाबे मे रुककर चाय पीने की थी ताकि वहाँ गाडी खडी करके पीछे के पहाड को पैदल पारकर पारम्परिक चिकित्सको के गाँव पहुँचा जाये और फिर उनके साथ जंगल जाया जाये। हम अक्सर इस ढाबे मे आते थे। विशेषकर उन दिनो मे जब मै इस क्षेत्र विशेष मे वानस्पतिक सर्वेक्षण कर रहा था। ढाबा वही था पर इसके मालिक बदलते रहते है। अभी किसी बाहरी व्यक्ति के पास इसका मालिकाना हक है। छोकरे भी उसने बाहर के ही रखे है। इस बार जब हम ढाबे के पास पहुँचे तो सारी रंगत ही बदली-बदली नजर आयी। ढाबे के पीछे काफी दूर तक जंगल साफ हो चुका था। पहले ढाबे के सामने खटिया लगी होती थी जिसमे ट्रक वाले अपनी पीठ सीधी कर लिया करते थे। अब पीछे तक ढाबे का विस्तार हो गया था।

इस बीच मसाला पापड के साथ चाय आ गयी। मसाला पापड मे टमाटर और प्याज की टापिंग की गयी थी। दोनो ही बडे ताजे लग रहे थे। जैसे ही मैने एक टुकडा खाया टमाटर के टुकडो से रस टपक पडा। खून की तरह लाल रस। मेरा मुँह लाल हो गया। हाथ भी लाल हो गया। मेरे क्रोध का ठिकाना नही रहा। तुरंत छोकरे को बुलाया। "इसमे रंग डाला है। कौन-सा रंग? जरा डिब्बा दिखाओ?" मेरी बात सुनकर वह झट से डिब्बा ले आया। डिब्बा देखकर मेरे होश उड गये। यह कपडो को चटक रंग देने वाला रसायन था। अब मै तो रंग चुका था और कुछ किया नही जा सकता था इसलिये डाँट-डपट के बाद मसाला पापड वापस लौटा दिया। मैने मालिक से शिकायत की। फिर रसोई का मुआयना किया। इतनी सारी उल्टी-पुल्टी सामग्रियाँ थी कि ढाबे के खाने से नफरत हो गयी। हम जंगल की ओर चल पडे।

ढाबे के आस-पास घने जंगल मे बहुत से पुराने वृक्ष थे जिन्हे पारम्परिक चिकित्सको ने चिन्हित करके रखा था। अब वे नही दिख रहे थे। गाँव पहुँचते तक हमे अवैध खुदाई के बहुत से चिन्ह मिले। जब पारम्परिक चिकित्सको से मुलाकात हुयी तो उनकी रुलाई फूट पडी। ढाबे के नये मालिक की ये सारी करतूते थी। जंगल साफ हो गया है। अवैध खुदाई हो रही है। देर रात तक लोगो का जमावडा होने लगा है। ये ट्रक वाले नही थे बल्कि आस-पास के शहरो से आने-वाले लोग है। अधिक लोगो के आने से बेकार भोजन सामग्री का ढेर बढता जा रहा है। यह सामग्री माँसाहारी वन्य प्राणियो को आकर्षित कर रही है। ये वन्य प्राणी गाँव पार कर आते है। पहले रात मे ये गाँव की गलियो से गुजरते थे पर अब दिन मे कभी भी आ जाते है। ग्रामीण जानते है कि इनसे बचने मे ही भलाई है। यदि ये मारे गये तो उन्हे जेल भेज दिया जायेगा। ढाबे मे भालू तो जैसे डेरा जमाये ही रहते है। वैसे भी ये कचरा प्रेमी होते है। लकडबग्घे और तेन्दुए भी आ जाते है।

एक ग्रामीण ने दबे स्वर मे बताया कि ढाबे मे कुछ लोगो को उसने वन्य प्राणियो के शारीरिक अंग बेचते देखा है। बडी गाडियो मे सवार शहरी इन अंगो की मुँहमाँगी कीमत देते है। शहरी वैसे ही अन्ध-विश्वासी होते है, ग्रामीणो से ज्यादा। भालू के नाखून से लेकर तेन्दुए की हड्डियाँ बिकती है। मुझे ग्रामीण की बातो पर एकाएक विश्वास नही हुआ। मुख्य मार्ग मे स्थित ढाबे मे ऐसा खुलेआम होना आश्चर्य का विषय था। पर ग्रामीण की बात का अविश्वास भी तो नही किया जा सकता था।

मुझे याद आता है कि वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान एक बार छत्तीसगढ के हीरा क्षेत्र मे जाना हुआ। वहाँ सरकारी गाडियो को एक ढाबे मे खडा देखकर उसे बडा ढाबा मानकर खाने के लिये रुक गये। रुकते ही ढाबे के कुछ लोग आये और पूछने लगे कि क्या आपको हीरे चाहिये? क्या आप हीरे खरीदने आये है? मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। क्या अब ऐसे दिन आ गये है कि हीरे ढाबे मे बिकेंगे? मैने कहा कि हम तो जडी-बूटी की खोज मे आये है तो उनका शक यकीन मे बदल गया। वे पीछे ही लग गये। तब हमने बिना खाये-पीये लौटने मे ही अपनी भलाई समझी।

ऐसे ही एक ढाबे मे हमने वन्य प्राणियो की खाल के नाम पर कुत्ते की खाल बिकती देखी। महानगर से आया एक खरीददार मुँहमाँगे दाम पर उसे ले गया। खाल को रंगा गया था ताकि वह बाघ की पुरानी खाल जैसी लगे। जानकार झट से पहचान जाते पर नौसीखीये बेवकूफ बन जाते है। किसी तांत्रिक ने उस नौसीखीये से कहा था कि बाघ की खाल मे बैठकर पूजा करने से समस्त मनोकामनाए पूर्ण होगी। अब तो वह कुत्ते की खाल पर बैठा अपनी मनोकामना पूर्ण होने की बाट जोह रहा होगा। उस ढाबे के मालिक को

जब हमने हडकाया तो वह बोला कि अमुक दिन आना तो मै असली खाल दे दूंगा। इसका मतलब ढाबे से खालो का व्यापार हो रहा था। खाल पर इस चर्चा से दिल को छूने वाली एक घटना याद आ रही है।

छत्तीसगढ मे जतमाई गढ है। यहाँ झरना है और माँ का मन्दिर भी। एक बार एक हिरण वहाँ भटकता हुआ आ गया और मन्दिर के पास ही उसने प्राण छोड दिये। पुजारी के लिये यह घटना अनर्थ से कम नही थी। माँ जिन वन्य प्राणियो की रक्षा करती है वे ही यदि मन्दिर के पास आकर जान देने लगे, मतलब कुछ गडबड है। पुजारी ने उसका अंतिम संस्कार किया पूरे विधि विधान से और फिर खाल को अपने पास रख लिया। खाल मे गुलाल लगाकर उसकी पूजा शुरु हो ग्यी। उस दौरान मै गया तो खाल की पूजा देखकर मैने प्रश्न किये। सारी बाते पता चली। मुझे पुजारी के वन्य-प्राणी प्रेम पर अभिमान हुआ। वह चाहता तो वह खाल उसके लिये पैसे का एक बडा स्त्रोत थी। पर उसने जंगल और वन्य प्राणियो को धार्मिक आस्थाओ के नजरिये से देखा है। यह नजरिया कभी भी वन्य प्राणियो व मनुष्यो के बीच दीवार नही खडी करेगा।

अपनी इस जंगल यात्रा के दौरान ढाबे के बारे मे और भी चौकाने वाली बाते पता चली। ग्रामीणो का साफ कहना था कि कही भी कुछ खम्बे गडाकर ढाबे बना लिये जाते है और फिर देखते ही देखते वे बहुत बडे हो जाते है। फिर आस-पास ढाबो की बाढ आ जाती है। आज जब ज्यादातर ट्रक वाले अपना खाना खुद पकाकर खाने मे विश्वास करते है ऐसे मे ढाबे कम होने की बजाय बढते जा रहे है। ढाबे की आमदनी उन कार्यो से हो रही है जो सीधे तौर पर ढाबे से सम्बन्धित नही है। पारम्परिक चिकित्सक तो साफ शब्दो मे कहते है कि वन की सुरक्षा मे लगे विभागो को एक "ढाबा निगरानी समिति" बनानी चाहिये।

मुझे मालूम है कि हम शहरी ढाबो को लेकर बहुत उत्साहित रहते है। हम इसके उजले पक्ष को तो देखते है पर इसके कृष्ण पक्ष को अनदेखा कर देते है। इसी कम देखे और कम जाने पक्ष को सामने रखना इस लेख का उद्देश्य है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-16

- पंकज अवधिया

लाल पानी वाला ग्लास और महिनो से ज्वर से जूझता रोगी

कुछ दूर चलने के बाद हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ भुईनीम के बहुत से छोटे-छोटे पौधे उग रहे थे। पारम्परिक चिकित्सक ने रोगी से कहा कि मैने घेरा बना दिया है। आप उन पौधो पर मूत्र विसर्जन कर दे। रोगी ने ऐसा ही किया। इसके बार उसे लकडी के ग्लास मे पानी पीने को दिया गया। पानी का रंग लकडी के कारण लाल हो चुका था। पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि आप सब बरगद के इस पुराने वृक्ष के साये मे बैठे और जब रोगी को अगली बार मूत्र विसर्जन की इच्छा हो तो भुईनीम के दूसरे घेरे पर करे। इसबीच मै अपने दूसरे रोगियो को देख लेता हूँ। अलग-अलग तरह के लकडी के ग्लास मे पानी पीने के बाद पाँच घेरो मे मूत्र विसर्जन करना होगा। उसके कुछ समय बाद मै रोग का कारण बता पाऊँगा। रोगी और उसके परिजन पूरी तत्परता से यह कार्य करने लगे।

इस जंगल यात्रा मे निकलने के कुछ दिनो पहले ही से एक पारिवारिक मित्र मुझसे लगातार सम्पर्क कर रहे थे। उनकी पत्नी पिछले तीन महिनो से परेशान थी। दिन भर हल्का ज्वर रहता था। उन्होने चिकित्सक बदले और फिर दवाईयाँ बदली पर ज्वर का आना बन्द नही हुआ। किसी ने मलेरिया कहा, किसी से टायफाइड तो किसी ने लू लगना बताया। तीन महिनो तक नाना प्रकार की एंटी-बायटिक खा-खा कर उनकी हालत खराब हो गयी। मरता क्या न करता। उन्होने किसी तांत्रिक की शरण ली। मजेदार बात यह रही कि तांत्रिक ने मेडीकल रपट की माँग की। रपट को उलटने और पलटने के बाद उसने फरमान जारी किया कि यह एक तरह का ब्लड कैंसर है। उसने दावा किया कि अभी मशीने इसे नही पकड पायेंगी। पर मैने पकड लिया है। आप मुम्बई मे अमुक गाडी से अमुक लाज मे जाइये और अमुक कैंसर विशेषज्ञ से मिलिये। इतने रुपये का पैकेज है। मेरा नाम लेंगे तो कुछ कम हो जायेगा। उसके फरमान देखकर लगा मानो वह कमीशन पर काम करने वाला ट्रेवल एजेंट हो।

मित्र ने तांत्रिक का रंग देखकर फिर किसी नये चिकित्सक से मदद ली। चिकित्सक ने कहा कि यह किसी तरह का कैंसर नही है। पर उसने फिर से लैब टेस्ट करवाये। उसके बाद फिर ज्वर की दवा और एंटीबायटिक का पुराना कोर्स शुरु हो गया। इतने लम्बे समय के बाद मित्र को पारम्परिक चिकित्सको की याद आयी। मुझे घेर लिया गया। थकहार कर मैने एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक के पास जाने को कहा। मित्र ने पूछा

कि रपटो की एक प्रति रख लूँ। मैने उस पुस्तकनुमा फाइल देखकर विनम्रतापूर्वक कहा कि पारम्परिक चिकित्सक के लिये ये किसी काम की नही। उनका रोग के निदान और समाधान का अपना तरीका है। उन पर विश्वास हो तो ही जाओ। वह तैयार हो गया।

हमारे साथ जाने की बजाय उसने पारम्परिक चिकित्सक के गाँव मे ही मिलने की बात कही। जैसा कि आपने पहले पढा है कि परलोक वाहन ने कैसे मेरी गाडी को ठोकर मारी थी जिसके कारण मुझे पारम्परिक चिकित्सक तक पहुँचने मे देरी हो गयी थी। मेरे पहुँचने से पहले ही पारम्परिक चिकित्सक से उनकी मुलाकात हो चुकी थी।

इस बीच रोगी के मूत्र विसर्जन के दौर के बीच मैने यह निर्णय लिया कि मै जंगल जाऊँगा और फिर वापस लौटते हुये मित्र की गाडी के साथ हो लूंगा। मित्र ने मेरी बात मान ली और हम आगे बढ गये। हल्की बारिश के बाद जंगल मे सुनहरी धूप फैल चुकी थी। सूखी वनस्पतियो मे हल्की फुहार से कुछ ताजगी आ रही थी। कुररु (कुल्लु नही) की गोन्द डंठलो के सिरो से बाहर निकल रही थी। जब उस पर सूरज की किरणे पडती तो वह सोने के समान दिखायी देती थी। बारिश के बाद तितलियाँ तेजी से इधर-उधर उड रही थी। गर्मी के दिनो मे जमीन मे जहाँ भी लवण मिलता है नर तितलियाँ उन्हे एकत्र करने बैठ जाती है। इसे वैज्ञानिक भाषा मे "मड-पडलिंग" कहा जाता है। जब बारिश होती है तो लवण बह जाते है और सारा ताना-बाना अस्त-व्यस्त हो जाता है। नर तितलियो को नये लवण स्त्रोत के लिये फिर से मशक्कत करनी पडती है। नर तितलियाँ इन लवणो को प्रणय उपहार के रुप मे मादा तितलियो को देती है। तब ही उनका प्रणय निवेदन स्वीकार किया जाता है। ये लवण मादा तितलियाँ अंडो के विकास मे प्रयोग करती है। कुछ तितलियाँ गाडी के शीशे से आकर टकराने लगी। मैने कुछ देर रुकने का मन बनाया।

हमारा रुकना बेकार नही गया। हमे एक मोर के दर्शन हो गये। ड्रायवर ने उसके जख्मी बदन की ओर इशारा करते हुये अनुमान लगाया कि किसी शिकारी जीव से इसकी हाल ही मे मुठभेड हुयी है। मोर के जाने के बाद उस मार्ग से एक साही गुजरा। साही के काँटे पूरी तरह सलामत थे। उस पर किसी शिकारी की नजर नही पडी थी वरना जिस वन क्षेत्र मे हम उस समय थे वहाँ हर साप्ताहिक बाजार मे तांत्रिको की एक दुकान लगती है जहाँ साही के काँटे खुलेआम बिकते है। इतने सारे काँटे कि जंगलो मे साही पर हो रहे जुल्म को बताने के लिये पर्याप्त होते है।

मित्र की पत्नी जंगल मे पारम्परिक चिकित्सक के परीक्षणो के बीच तरोताजा महसूस कर रही थी। जंगल की हवा होती ही ऐसी है। शाम को पारम्परिक चिकित्सक ने किसी भी तरह की औषधि देने से इंकार कर दिया। उन्होने कहा कि यदि मेरे ज्ञान पर विश्वास है तो सारी दवाए बन्द करके लाल पानी वाले ग्लास का पानी रोज सुबह-शाम पीओ। लाभ होगा। मित्र को यह हजम नही हुआ। वह तो ढेरो दवाओ की उम्मीद कर रहा था। फिर जब उसने फीस देनी चाही तो पारम्परिक चिकित्सक ने हाथ जोड लिये। उन्होने गाँव के एक युवक को बुलाया और पूछा कि ग्लास के कितने पैसे हुये? युवक ही ग्लास बनाकर पारम्परिक चिकित्सक को दिया करता था।"चौबीस रुपये" युवक ने कहा। मित्र को एकाएक विश्वास नही हुआ। उसने चिल्हर न होने के कारण तीस रुपये देने चाहे तो उन्होने मना कर दिया। मित्र ने कोने मे ले जाकर मुझसे कहा कि यह आदमी ठीक नही जान पडता है। पैसे ही नही लेता मतलब इसकी दवा मे दम नही है। मित्र की बात भी सही थी। वह ऐसे शहर मे जीता था जहाँ बिना महंगी फीस के कुछ काम नही होता। जो व्यक्ति तीन महिनो मे लाखो गँवा चुका हो उससे यदि कोई कहे कि दिन भर के चौबीस रुपये हुये तो भला उसे अविश्वास तो होगा ही। पर कुछ समय बाद उसे बात समझ मे आ गयी। पारम्परिक चिकित्सको को चिकित्सा के लिये पैसे लेने की मनाही है। यह उनके पूर्वजो की शपथ है।

मित्र ने वापस आकर अपनी पत्नी को उसी ग्लास से पानी पिलाना आरम्भ किया। रात मे पानी भरकर ग्लास रख दिया जाता था और सुबह लाल पानी को पी लिया जाता था। ऐसी ही शाम को भी किया जाता था। दूसरे दिन से ही रोगी मे सुधार हुआ और तीन-चार दिनो मे सब कुछ सामान्य हो गया। पारम्परिक चिकित्सक ने पन्द्रह दिन के बाद आने को कहा था। रोगी ने ठीक होते ही ग्लास का उपयोग बन्द कर दिया। कल ही मित्र का फिर फोन आया कि फिर से ज्वर आने लगा है। ग्लास कही गुम हो गया है। किसी शहरी चिकित्सक के पास फिर से गये तो उसने कहा कि ग्लास के पानी के कारण ही ज्वर आ रहा है। चिकित्सक ने फिर टेस्ट कराये और एंटीबायटिक का दौर शुरु हो गया। ज्वर कम होने का नाम नही ले रहा है। क्षमा माँगते हुये उसने फिर से पारम्परिक चिकित्सक के पास ले चलने की बात कही।

मै असमंजस मे हूँ। मेरा मानना है कि जिस भी चिकित्सा प्रणाली मे पूरा विश्वास हो उसी मे आगे बढना चाहिये। डाँवाडोल की स्थिति गडबड होती है। क्या भरोसा कि एक बार ठीक होने के बाद फिर वह ग्लास से तौबा कर ले।

पारम्परिक चिकित्सक ने रोग का पता लगाने के लिये भुईनीम का प्रयोग किया था। उन्हे रोगी के जोडो की सूजन देखकर वात की समस्या का अहसास हुआ था। अलग-अलग औषधियो को खिलाने के बाद उन्होने पौधो पर मूत्र विसर्जन करने इसलिये कहा था ताकि पौधो पर इनके प्रभाव को देखकर रोग की पुष्टि की जा सके। आमतौर पर बीजा नामक वृक्ष की लकडी से ग्लास बनाये जाते है। उसमे रखा पानी मधुमेह के रोगियो के लिये वरदान माना जाता है। ऐसे ग्लास शहरो मे भी बिकते है। पर लकडी के लिये सही वृक्ष का चुनाव और ग्लास बनाने की पारम्परिक विधि अहम भूमिका निभाती है। शहरी ग्लास बनाने वाले इस बात को नही समझते है। वात रोगो के लिये बीजा की लकडी से बने ग्लास को जडी-बूटियो से बने घोल से लम्बे समय तक उपचारित किया जाता है। फिर इसे रोगियो को दिया जाता है। ऐसा नही है कि आधुनिक विज्ञान ने बीजा के लकडी को नही आजमाया है पर ज्यादातर शोधो मे वैसे प्रभाव नही देखने को मिलते है जैसे कि पारम्परिक चिकित्सको के पास उपलब्ध ग्लास से मिलते है। शोधकर्ता शहरी ग्लासो पर प्रयोग करते है। बहुत से विदेशी शोधकर्ताओ ने इस अंतर का स्पष्ट उल्लेख किया है। पारम्परिक चिकित्सक खुद पैसे नही कमाते। वे जानते है कि उनकी नकल से शहरी लोगो को ठग सकते है। यही कारण है कि मरते दम तक पूरी विधि वे किसी को नही बताते है। केवल अपने चेलो को ही सब बताते है, पूरी तरह से आश्वस्त होने पर।

बारह जून की जंगल यात्रा मे एक दिन मे जाने कितने अनुभव मिल गये और ज्ञान अर्जन हो गया। अभी भी इस यात्रा के बारे मे बहुत कुछ लिखना शेष है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-17

- पंकज अवधिया

स्त्री रोग, रोहिना और "ट्री शेड थेरेपी"

घने जंगल मे एक वृक्ष की ओर इशारा करते हुये साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने कहा कि आम महिलाओ को अपने कष्टो से मुक्ति के लिये इस वृक्ष की देखरेख शुरु कर देनी चाहिये। देख-रेख यानि सुबह से शाम तक इसकी सेवा। जितना हो सके उतना समय

इसके साये मे गुजारना चाहिये। पारम्परिक चिकित्सक की बात सुनकर मैने कैमरा निकाल लिया और विभिन्न कोणो से उस वृक्ष की तस्वीर लेने लगा। यह मेरा जाना-पहचाना वृक्ष था। मैने इसके पारम्परिक उपयोगो का दस्तावेजीकरण किया है पर जैसा कि आप जानते है, हर वानस्पतिक सर्वेक्षण से नयी जानकारियाँ मिलती है। मै तस्वीरे लेता रहा और पारम्परिक चिकित्सक अपनी बात कहते रहे। साधारण महिलाओ को तो इस वृक्ष के साये मे रहना चाहिये। पहले जंगलो मे बहुत से ऐसे स्थान होते थे जहाँ ये वृक्ष समूह मे उगा करते थे। तब पारम्परिक चिकित्सक महिलाओ के परिवारजनो से कहते थे कि यदि सम्भव हो तो उस वृक्ष समूह के साये मे मिट्टी की अस्थायी झोपडी बना ले और वही रहकर औषधीयो का सेवन करे। उनका कहना था कि साधारण रोग तो केवल वहाँ रहने ही से दूर हो जाते है। दूसरी औषधीयो की आवश्यकत्ता नही होती है।

मुझे याद आता है कि कुछ वर्षो पहले मेरी मुलाकात एक महिला पारम्परिक चिकित्सक से हुयी थी। आमतौर पर पुरुष पारम्परिक चिकित्सक ही मिलते है। महिला पारम्परिक चिकित्सक चाह कर भी अपनी सेवाए नही दे पाती है। जिस महिला पारम्परिक चिकित्सक की मै यहाँ बात कर रहा हूँ वे श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया) की चिकित्सा मे माहिर है। सुबह ही से दूर-दूर से रोगी उनके घर के सामने एकत्र हो जाते है और फिर चिकित्सा का सिलसिला शुरु होता है। सप्ताह मे पाँच दिन वे रोगियो को देखती है। बचे हुये दो दिनो मे एक दिन आराम करती है जबकि दूसरे दिन अपने बडे बेटे के साथ जंगल जाती है ताकि जडी-बूटियाँ एकत्र की जा सके। मेरी उनसे बहुत बार जंगल मे मुलाकात हुयी है। उनके गाँव के पास ही जंगल है। पहले उनका गाँव जंगल के अन्दर था पर अब मनुष्यो ने जंगल से जैसे नाता तोड लिया है। तभी तो जंगल गाँव से दूर जाता जा रहा है। इन महिला पारम्परिक चिकित्सक से मैने घंटो बात की है। उनका कहना था कि मै सरकार से कहकर एक विशेष प्रकार के वृक्ष का रोपण बडे पैमाने मे करवा दूँ ताकि आम महिलाए लम्बे समय तक रोगमुक्त रह सके। यह विशेष वृक्ष स्थानीय भाषा मे रोहिना कहलाता है। यदि आप किसी वन अधिकारी से इसके बारे मे पूछेंगे तो वे आपको केवल इसकी लकडी की उपयोगिता के बारे मे बता पायेंगे। उससे आगे एक शब्द भी नही। आम लोग भी इसके बारे मे कम जानते है पर जानकार पारम्परिक चिकित्सको के लिये यह ईश्वर के वरदान से कम नही है।

डेढ दशक से भी अधिक समय से मेरी नजर रोहिना की घटती आबादी पर है। इसकी लकडी बहुत मजबूत होती है। यही गुण इसके लिये अभिशाप बना हुआ है। सालो से इसकी अवैध और वैध कटाई हो रही है। पहले आसानी से दिख जाने वाला यह वृक्ष आज

खोजने पर मुश्किल से मिल पाता है। सरकारी दस्तावेजो मे इसकी संख्या उतनी ही है जितनी दशको पहले थी। पर जमीनी सच्चाई दिल दहला देने वाली है। रोहिना की छाल कुछ मात्रा मे व्यापार मे है। पर इसकी अधिक माँग नही होने के कारण व्यापारियो से इसे उतना खतरा नही है। फिर भ्रष्टाचार भी इसकी जान बचाये हुये है। रोहिना की छाल मे बडे पैमाने पर स्थानीय तौर पर मिलावट होती है। अर्थात रोहिना की छाल कम मात्रा मे एकत्र की जाती है और दूसरी प्रजातियो की अधिक। इस तरह की मिलावट से न केवल दिल्ली जैसे महानगरो के व्यापारी अनजान है बल्कि देश-विदेश की जानी-मानी दवा कम्पनियाँ भी। एक बार उत्तर भारत से आये एक दवा विशेषज्ञ को रोहिना की छाल दी गयी तो वे उसे पहचान नही पाये। जब उन्होने इसका रासायनिक विश्लेषण किया तो और भ्रमित हो गये। उन्होने जीवन भर मिलावटयुक्त रोहिना की छाल का प्रयोग किया था। ऐसे मे पहली बार शुद्ध छाल का अनुभव पाकर वे भ्रमित हो गये।

प्राचीन भारतीय ग्रंथ इस वृक्ष का उल्लेख तो करते है पर यह आश्चर्य का विषय है कि जितनी जानकारी आज पारम्परिक चिकित्सको के पास है उसका एक प्रतिशत हिस्सा भी इन ग्रंथो मे नही है। इस वृक्ष के गुणो का बखान करती दसो जीबी के फाइल मैने तैयार की है पर फिर भी इस ज्ञान का कोई अंत नही दिखता है।

मुझे याद आता है कि कुछ वर्षो पहले एक महिला महाविद्यालय मे मै गाजर घास पर व्याख्यान दे रहा था। व्याख्यान के बाद मैने पारम्परिक ज्ञान दस्तावेजीकरण के अपने काम पर भी कुछ कहा। इस पर वहाँ के प्राचार्य ने मुझे कैम्पस के लिये उपयुक्त वृक्ष प्रजाति सुझाने को कहा। उस समय उनकी योजना गुलमोहर जैसे सजावटी वृक्ष लगाने की थी। मैने बिना विलम्ब रोहिना का सुझाव दिया। इसके गुणो के बारे मे जानकर उन्होने सहमति दे दी पर काफी मशक्कत के बाद भी वे इसके पौधे नही लगा पाये। उन्होने देश भर की नर्सरियाँ खोज डाली पर रोहिना नही मिला। मैने कुछ पौधे अपने सम्पर्को से उन्हे उपलब्ध करवाये। इस घटना से यह सबक मिला कि रोहिना के प्रवर्धन पर शोध जरुरी है। अपनी हर जंगल यात्रा के दौरान इसके प्रवर्धन के विषय मे अधिक से अधिक जानकारी जुटाने का प्रयास करता हूँ।

रोहिना के साथ यदि चार का वृक्ष अपने आप उग रहा हो तो ऐसा स्थान वात रोगियो के लिये उपयुक्त है। यदि रोहिना के साथ धोबन के वृक्ष उग रहे हो तो ऐसा स्थान श्वेतकुष्ठ से प्रभावित रोगियो के लिये वरदान है। यदि रोहिना के साथ धौरा, सलिहा, धोबन, कुर्रु और चार उग रहे हो तो ऐसे स्थान मे कम जीवनी शक्ति वाले व्यक्तियो को समय बिताना चाहिये। यदि रोहिना के साथ बाँस उग रहा हो और पास मे दीमक की बडी बाम्बी हो तो

पेट के रोगियो को वहाँ रहना चाहिये। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऐसे हजारो वृक्ष मिश्रण है पारम्परिक चिकित्सको के पास और हर वृक्ष मिश्रण की अपनी अलग उपयोगिता है। इस छोटे से उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि क्यो माँ प्रकृति ने विविधता को अपनाया है। ये तो मनुष्य़ है जो विविधता को समाप्त कर एकरसता ला रहा है और हजारो एकड जमीन मे एक ही तरह की वनस्पति रोप रहा है। वृक्ष की छाँव से चिकित्सा को "ट्री शेड थेरेपी" का नाम दिया गया है। यदि आप इसे गूगल मे खोजेंगे तो सारे सन्दर्भ छत्तीसगढ ही से मिलेंगे। यह छत्तीसगढ का विश्व समुदाय को एक अनुपम उपहार है।

जब रोहिना को देखने के बाद हम दूसरे वृक्ष की ओर बढे तो पारम्परिक चिकित्सको ने इसका एक फल मुझे दे दिया। मुझे इसे अपने ड्राइंग रुम मे सजाकर नही रखना था बल्कि लौटते समय ऐसी जगह पर रोप देना था जहाँ इसके वृक्ष न हो। ऐसे ही उपहारो का सिलसिला चलता रहा तो उन्हे उम्मीद है कि स्त्री रोगो को हरने वाले ये देव-तुल्य वृक्ष बडी संख्या मे माँ प्रकृति के पास फिर से होंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-18

- पंकज अवधिया

ह्रदय रोगी, औषधीय धान और दुर्लभ ज्ञान

जंगल मे कुछ दूर चलने पर साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने मजाक मे कहा कि क्या आपको अस्सी साल के जवान से मिलना है? मैने हामी भरी तो उन्होने एक गाँव का रुख किया। दोपहर का समय था। गाँव सुनसान था। हम आधा गाँव घूम आये पर कोई नही दिखा। उन बुजुर्ग के घर मे पूछताछ की गयी तो पता चला कि जंगल गये है। हम उसी दिशा मे निकल पडे। जल्दी ही हमे वो मिल गये। परिचय हुआ। बातचीत का दौर चल पडा। उम्र के इस पडाव मे भी उनके बाल काले थे। दाँत सलामत थे। लकडी का बोझा उठाकर चल लेते थे। उस बोझे को मैने उठाने की कोशिश की तो वह टस से मस नही हुआ। बडी मुश्किल से दो लोग उठा पाये। यह जडी-बूटी का असर दिखता था। पर उन्होने दो टूक कह दिया कि मै भात और साग खाता है। जडी-बूटी के बारे मे जानता हूँ

पर स्वयम कम ही सेवन करता हूँ। उन्हे तेलिया कंद की तलाश थी इसलिये हमसे विदा लेकर वे कुछ देर के लिये पास की पहाडी पर चले गये।

उनके जाने के बाद पारम्परिक चिकित्सक खुसुर-फुसुर करने लगे। फिर मेरे पास आकर एक स्वर मे बोले कि इनके पास एक विशेष धान है जिसमे औषधीय गुण है। वे इसे किसी को न देते है और न ही ज्यादा कुछ बताते है। यही धान उनकी अच्छी सेहत के लिये भी जिम्मेदार है। आप बात करे हो सकता है कि आपको कुछ जानकारी मिल जाये।

जब वे बुजुर्ग पहाड से लौटे तो उन्होने अपने घर चलकर लाल चाय पीने का निमंत्रण दिया। मैने ड्रायवर को भेजकर गाडी मे रखा तेन्दुफूल नामक औषधीय धान मंगवा लिया। अब खाली हाथ किसी के घर चाय पर जाना ठीक नही है। मैने यह धान उन्हे दिया तो उनकी आँखो मे चमक आ गयी। उन्होने इसके बारे मे सुना तो बहुत था और साथ ही इसे पाने की कोशिश भी की थी पर सफलता नही मिली थी। अब तेन्दुफल खुद गाडी मे सवार होकर उनके घर तक पहुँचा था। इन बीजो को बढाकर वे आगे कुछ सालो ने इतना धान पैदा कर लेंगे कि वे खुद खा सके और दूसरो को भी उपहार स्वरुप दे सके। मैने उन्हे बताया कि मै औषधीय धान से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण कर रहा हूँ। फिर उन्हे विस्तार से मधुमेह की चिकित्सा मे प्रयोग होने वाले औषधीय धानो के विषय मे बताया। ये जानकारियाँ साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको के लिये भी नयी थी। वे ध्यान से सुन रहे थे। बुजुर्ग ने पूरी बात सुनी तो उन्हे अपने गोपनीय धान के विषय मे बताने का मन हुआ। वे अन्दर गये और कोठार से धान लेकर लौटे। उन्होने कहना शुरु किया," ये मेरे सियानो की अमानत है। मै अभी तक इन बीजो को सम्भाल कर रखा हूँ। जिस खेत मे इसकी खेती करता हूँ वहाँ दूसरी फसल नही लगाता। परम्परागत खुर्रा बोनी करता हूँ। भगवान भरोसे खेती करता हूँ। चाहे कीडे आये या रोग, सरकारी दवा नही डालता हूँ। जितना उत्पादन होता है उसे साल भर पूरे परिवार के लिये उपयोग लाता हूँ। मेरे सियान इसके बारे मे बहुत से प्रयोग बता कर गये है पर ज्यादातर प्रयोग अब प्रचलन मे नही है। बडे लडके को कुछ बताया है पर उसकी रुचि इसमे नही है। यह जल्दी पकने वाला धान है। इसका स्वाद और रंग-रुप अच्छा नही है पर फिर भी चूँकि ये औषधि है इसलिये मै इसकी खेती मन लगाकर कर रहा हूँ। मै इसके साथ खेतो मे खरपतवार की तरह उग रही भाजियो को खाता हूँ और साल भर मजे से रहता हूँ।" मैने पूछा कि इस औषधीय धान का नाम क्या है? उन्होने कहा कि नाम तो मुझे भी पता नही है। इस पर मैने उनका नाम पूछा।"अनंतराम" उनका जवाब

आया। मैने उन्हे बताया कि मै जब इस औषधीय धान के विषय मे अपने डेटाबेस मे लिखूंगा तो इसका नाम "अनंतराम औषधीय धान" रखूंगा।

उनसे मुझे इस धान के दुर्लभ उपयोग के विषय मे जानकारी मिली। ह्रदय रोगियो के लिये उन्होने इस धान को उपयोगी बताया। उन्होने ऐसे रोगियो के लिये तीन सौ दिनो तक इस धान को खाने की विधि बतायी। पहले दिन रोगी गरम भात के रुप मे इसे अकेले खाये। दूसरे दिन इसे बनाते समय इसमे चार की छाल का सत्व डाले फिर सत्व युक्त गर्म भात रोगी को दिया जाये। तीसरे दिन कौहुआ की छाल का सत्व, फिर चौथे दिन महुआ की छाल, पाँचवे दिन रोहिना की छाल, छठवे दिन हर्रा की छाल, सातवे दिन गिन्धोल की छाल, ऐसे तीन सौ से अधिक वनस्पतियो के बारे मे विस्तार से जानकारी दी। जैसा कि आप जानते है मै कापी-पेन लेकर जंगल नही जाता। जो कुछ सुनता और देखता हूँ वह दिमाग मे रह जाता है। उस दिन जंगल से लौटने के बाद मै रात भर उनकी बतायी बातो को डेटाबेस मे डालता रहा। कुल सत्रह घंटो मे यह कार्य पूरा हुआ। अब मुझे उनसे एक बार फिर मिलकर यह सुनिश्चित करना है कि कही कोई गल्ती तो नही है। उन्होने बताया कि तीन सौ दिनो तक इस धान का प्रयोग सामान्य स्वास्थ्य के लिये भी वरदान है। इससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। उन्होने दूसरे रोगो मे भी इसके प्रयोग के विषय मे बताया। उनके ज्ञान से अभिभूत होकर मैने उन्हे औषधीय धान पर तैयार की जा रही 250 जीबी से अधिक आकार की एक रपट को सरल भाषा मे समझाने का मन बना लिया। जब मैने यह प्रस्ताव उनके सामने रखा तो वे मुस्कुराकर बोले कि इतना सब जानकर मै क्या करुंगा? मै पारम्परिक चिकित्सक तो हूँ नही। आप ही इसे अगली पीढी के लिये सम्भाल कर रखे।

उन्होने मुझे उस औषधीय धान के कुछ बीज देने चाहे। मैने इंकार कर दिया। मैने अपने परिचित किसानो और पारम्परिक चिकित्सको के पास औषधीय धानो के बीज रख छोडे है पर सभी पूरी सावधानी से उसे नही बढा रहे है। ऐसे मे मै एक और नया बीज लेकर क्या करुंगा? अनंतराम जिस ढंग से बरसो से इसे सम्भाल कर रखे हुये है, उसे देखकर तो लगता है कि बीज सही हाथो मे है। यह बीज बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से बचा रहना चाहिये। क्लाइमेट चेंज का नारा बुलन्द करने वाले आजकल ऐसे परम्परागत बीजो की तलाश मे है जो विपरीत वातावरणीय परिस्थितियो मे भी उग सके (Climate resistant crops)। वे सीधे अनंतराम जैसे किसानो के कोठार पर धावा नही बोलेंगे। पहले वे पास के सरकारी शोध संस्थान के किसी वैज्ञानिक को एक प्रोजेक्ट देंगे। यह प्रोजेक्ट उस क्षेत्र के पारम्परिक किस्मो और उनसे जुडी जानकारियो के एकत्रण से सम्बन्धित होगा। अनंतराम

से बलात ही बीज ले लिया जायेगा। फिर वह बीज रायपुर के शोध संस्थान मे पहुँचेगा। वहाँ से कटक के रास्ते फिलीपींस और फिर सीधे कलामेट चेंज वालो के पास। तब उस्का नाम "अनंतराम औषधीय धान" नही रह जायेगा। छत्तीसगढ से हजारो किस्मे इसी रास्ते से बाहर गयी है। आज भी ये जारी है।

मैने उन्हे धन्यवाद दिया और जल्दी ही वापस आने का वायदा कर आगे की राह पकडी। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक प्रसन्न थे। वे अनंतराम को दशको से जानते थे पर उन्होने कभी इस बारे मे किसी पारम्परिक चिकित्सक को नही बताया। आज जब वे खुले तो पूरे ज्ञान सागर को उडेल दिया और हम सब धन्य हो गये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-19

- पंकज अवधिया

लौकी, कोल्ही-केकडी और दूसरी वनस्पतियो से बने औषधीय तेल

जंगल मे साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको के साथ जब नाना प्रकार के औषधीय तेलो की चर्चा हुयी तो उनमे से कुछ ने रोजमर्रा उपयोग होने वाली सब्जियो से तैयार औषधीय तेल के विषय मे रोचक जानकरियाँ दी। सब्जियो से औषधीय तेल बनाने की बात मेरे लिये नयी नही थी। अपने शोध आलेखो मे मैने लौकी से औषधीय तेल निर्माण पर काफी कुछ लिखा है। यह तेल देश के दूसरे भागो मे भी प्रचलित है पर अलग-अलग रुपो मे। छत्तीसगढ मे इस तेल का प्रयोग बच्चो के लिये किया जाता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि लौकी से राज्य मे 1500 से अधिक प्रकार के तेल बनाये जाते है। ये तेल हाथ-पैर मे होने वाली जलन से लेकर जोडो की मालिश के लिये प्रयोग किये जाते है। लौकी का प्रयोग अकेले भी होता है और अस्सी से अधिक औषधीय वनस्पतियो के साथ भी।

देश के दूसरे हिस्सो मे इस तेल के निर्माण मे आधार तेल के रुप मे नारियल के तेल का उपयोग होता है जबकि हमारे यहाँ सरसो और काली तिल के तेलो का प्रयोग होता है।

इस जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सको ने स्थानीय वनस्पतियो के प्रयोग से लौकी के मूल तेल को समृद्ध बनाने की विधियाँ बतायी।

मुझे उन पारम्परिक चिकित्सको के साथ उनके गाँव जाने का मौका मिला। मैने वहाँ घर मे फली हुयी लौकी देखी। चूँकि इसका प्रयोग दवा के रुप मे होना था इसलिये बिना सरकारी खाद-पानी से इसे उगाया गया था। जंगल मे कर्रा और भिर्रा के बहुत से पेड है। जब लौकी मे कीडो का प्रकोप होता है तो पारम्परिक चिकित्सक इन दोनो जंगली वृक्षो से सत्व तैयार करके उनका छिडकाव कर देते है। जंगल मे हल्दी की बहुत सी प्रजातियाँ भी है। इनमे से एक डोकरी हल्दी है। पारम्परिक चिकित्सक इसके सत्व से लौकी की सिंचाई करते है। गोबर की खाद का प्रयोग करते है। उन्हे पता है कि नीम और गेन्दे के सत्वो का भी प्रयोग किया जा सकता है। पर वे कहते है कि इनका प्रयोग लौकी के औषधीय गुणो को कम कर देता है। नीम और गेन्दा के सत्वो का प्रयोग वे दूसरे पौधे के लिये करते है। लौकी तोडने के बाद से तेल निर्माण मे दो महिनो का लम्बा समय लगता है। यदि सूरज देवता अधिक मेहरबान नही रहे तो और अधिक समय लग सकता है। पारम्परिक चिकित्सको ने खुलासा किया कि वे अपने रोगियो को इस तेल के घटको के बारे मे नही बताते है। लौकी का नाम सुनकर हो सकता है कि रोगी समझ बैठे कि ये प्रभावकारी तेल नही है। साल मे एक बार बडी मात्रा मे तेल निर्माण के बाद वे दोबारा इसे कम ही बनाते है। वे इस तेल को बाजार मे बेचते नही है पर फिर भी यह देश भर मे पहुँचता रहता है।

देश के विभिन्न कोनो से जडी-बूटी बेचने वाले पारम्परिक चिकित्सको के पास आते रहते है। जैसे उत्तराखंड की बहुत सी वनस्पतियाँ छत्तीसगढ मे नही मिलती है। पारम्परिक चिकित्सक उन जडी-बूटियो के लिये इन पर निर्भर रहते है। आमतौर पर जडी-बूटी बेचने वाले पारम्परिक चिकित्सको से वनस्पतियो के एवज मे पैसे नही लेते है। वे या तो यहाँ की वनस्पतियाँ ले जाते है या कुछ नुस्खो की जानकारी। ये जानकारियाँ जडी-बूटी बेचने वाले वापस लौटकर अपने क्षेत्र के पारम्परिक चिकित्सको को देते है। फिर अगली बार जब लौटते है तो उनके पास बताने को बहुत कुछ होता है। इस तरह शहद एकत्र करने वाली मधुमक्खियो की तरह जडी-बूटी बेचने वाले पारम्परिक ज्ञान को समृद्ध करते रहते है। इन जडी-बूटी बेचने वालो पर किसी का ध्यान नही जाता है। सैकडो पारम्परिक चिकित्सको से मिलने के कारण इनके पास ज्ञान का अकूत भंडार होता है। मैने इनके साथ महिनो बिताये है और इनके ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है। एक और अनोखी बात। बहुत बार यह देखने मे आता है कि एक राज्य से लायी गयी जडी-बूटियो के विषय

मे दूसरे राज्य के पारम्परिक चिकित्सक अधिक जानने लगते है। केरल के औषधीय धान निवारा का ही उदाहरण ले। वैज्ञानिक यह कह रहे है कि इस धान के विषय मे जानकारी केरल के कुछ भागो तक ही सीमित है। पर जमीनी हकीकत कुछ और है। जडी-बूटी बेचने वालो या किसी अन्य स्त्रोतो से यह धान छत्तीसगढ पहुँचा और पारम्परिक चिकित्सको ने इसे बढाया। उन्होने नये प्रयोग किये। उन्होने स्थानीय औषधीय धान के साथ इसे आजमा कर देखा। जब मैने इस ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया तो वैज्ञानिक चौक पडे। उन्हे विश्वास ही नही हुआ कि छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सक इस बारे मे इतना जानते होंगे।

चलिये अब लौकी के तेल पर लौटे। मुझे याद आता है कि दुर्ग जिले के पारम्परिक चिकित्सको के साथ एक बार मै धान के खेतो का भ्रमण कर रहा था। हम खेतो और मेडो मे उग रहे पौधो से पेट भर रहे थे। किसी की पत्तियाँ खा रहे थे तो किसी की फली। तभी हमारी नजर कोल्ही-केकडी पर पडी। यह वनस्पति का स्थानीय नाम है। यदि इसका हिन्दी रुपांतरण करे तो इसका अर्थ हुआ सियार की ककडी। इसका फल बहुत छोटा होता है पर उसे खाते ही एक भरी-पूरी ककडी की याद ताजा हो जाती है। पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि जब लू लग जाये या तेज ज्वर हो तो हम लौकी और इस वनस्पति से तैयार किये गये तेल की सहायता से रोगी की चिकित्सा करते है। तेल से पूरे शरीर की मालिश की जाती है फिर नीम की छाँव मे रोगी को लिटा दिया जाता है। इससे बहुत लाभ होता है।

बहुत से पाठक इस बात की शिकायत करते रहते है कि इस लेखमाला के साथ वनस्पतियो के वैज्ञानिक नाम, चित्र और दूसरी जानकारियाँ नही है। उनकी शिकायत सही है। पर मेरी भी विवशता है। मेरे पास दो विकल्प है। या तो मै हर लेख मे उल्लेखित वनस्पतियो के बारे मे विस्तार से लिखूँ या जिसके बारे मे एक बार लिख दिया है उसके बारे मे न लिख कर नया लिखूँ। मै दूसरे विकल्प को प्राथमिकता देता हूँ। मेरे पास अभी तक किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षणो से इतना ज्ञान एकत्र हो गया है कि अगले पचास सालो तक मै बिना रुके लिख सकता हूँ। फिर नित नयी जानकारियाँ आ रही है। आप तो जानते ही है कि मेरे द्वारा ली गयी चालीस हजार से अधिक तस्वीरे इंटरनेट पर है। बीस हजार से अधिक शोध आलेख आन-लाइन है। करोडो पन्नो की मधुमेह की रपट अपलोड होने वाली है। इस रपट के साढे छै लाख पन्ने आन-लाइन है। हिन्दी के हजारो लेख भी उपलब्ध है। इनके कही भी एक ही जानकारी का दोहराव बहुत कम है। कोल्ही-केकडी का ही उदाहरण ले। इसके विषय मे हजारो पन्ने इंटरनेट पर है। तस्वीरे भी है। ऐसे मे हर

लेख मे इस जानकारी को दोहराना व्यर्थ लगता है। आप पाठको से अनुरोध है कि विस्तार के लिये गूगल का सहारा ले और मनचाही जानकारी प्राप्त कर ले। इकोपोर्ट पर भी चले जाये जहाँ मैने मधुमेह की रपट के कुछ अंश डाले है।

अब विषय पर फिर लौटते है। लौकी के तेल के विषय मे समृद्ध ज्ञान होते हुये भी एक भी व्यवसायिक उत्पाद बाजार मे नही है। आम भारतीयो के पास इसकी जानकारी नही है। देश के बहुत से राज्यो मे पारम्परिक चिकित्सको की सुध लेना सरकारो ने शुरु किया है। योजनाकार यदि चाहे तो लौकी के सैकडो प्रकार के तेलो के निर्माण के लिये कुटिर उद्योग लगाने की पहल की जाये ताकि पारम्परिक चिकित्सको के साथ किसानो का भी हित हो सके। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-20

- पंकज अवधिया

मोंगरी मछली, टाइफा, जलकुम्भी और डूमर

इन दिनो राजधानी मे जलीय खरपतवारो से अटे तालाबो की सफाई की मुहिम चल रही है। मेरे एक मित्र को ऐसे ही एक तालाब की सफाई का ठेका मिला है। उस तालाब मे केवल जलकुम्भी की ही समस्या नही है। नाना प्रकार के जलीय खरपतवारो ने ऐसा तांडव मचाया है कि पूरा तालाब एक समतल हरे-भरे मैदान की तरह दिखता है। तालाब के एक हिस्से मे ही पानी दिखता है। इसी स्थान पर आस-पास के लोग नहाते है। यहाँ बडी मात्रा मे कपडे भी धोये जाते है धोबियो के द्वारा। शहर के योजनाकारो ने ढाई लाख रुपये दिये है इस तालाब को बीस दिनो के अन्दर साफ करने के लिये। इस तालाब के किनारे पीपल के कुछ पुराने पेड है। मैने मित्र को सलाह दी है कि यहाँ ऐसे वृक्ष लगाये जो कि जल को शुद्ध रख सके। शहरी योजनाकारो का दबाव है कि गुलमोहर लगाया जाये। निश्चित ही गुलमोहर गर्मियो मे फूलो से लदकर बढिया दिखायी देता है पर यह उथली जडो वाला होता है। जरा-सा भी तूफान सहन नही कर पाता है। आजकल बरसात मे जो अन्धड चलती है उससे हर बार गुलमोहर के वृक्ष गिर जाते है और विद्युत व्यवस्था ठप्प हो जाती है। मैने तालाब के लिये डूमर के वृक्ष लगाने की सलाह दी है।

डूमर सबके लिये जाना पहचाना नाम है पर उसके पौधो का जुगाड करना आसान नही है। वन विभाग से तो उम्मीद नही है। इसलिये अपनी इस जंगल यात्रा के दौरान मै डूमर के पौधे एकत्र करने की सोच रहा था। जब मैने साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको को यह बताया तो उन्होने पहली बारिश के बाद आने को कहा। उस समय बहुत से पौधे मिल सकते है। डूमर की चर्चा छिडी तो बात बहुत दूर तक गयी। बात करते –करते हम डूमर के एक पुराने वृक्ष तक जा पहुँचे।

डूमर यानि देशी अंजीर। इसके फल बडे ही स्वादिष्ट होते है। बच्चे इसे बडे चाव से खाते है। तांत्रिक डूमर को तंत्र साधना के लिये उपयोग करते है। डूमर को विनाशक शक्तियो का प्रतीक भी माना जाता है। कई बार जब मै इसकी तस्वीर लेने काफी पास चला जाता हूँ तो बहुत से बुजुर्ग इस वृक्ष से दूर रहने की चेतावनी देते है। अन्ध-विश्वास के पाश मे जकडा समाज अपने स्वार्थ के लिये अशक्त महिलाओ को टोनही कहकर प्रताडित करता है। इस टोनही नामक पात्र को विशेष वनस्पतियो से जोडकर देखा जाता है। डूमर भी इन वनस्पतियो मे से एक है। टोनही से सम्बन्धित अन्ध-विश्वास की जडे बहुत गहरी है। पारम्परिक चिकित्सक भी इससे अछूते नही है। डूमर की वानस्पतिक संरचना ऐसी होती है कि इसके स्पष्ट फूल नही होते है। आम लोगो को इसके फल लगे ही दिखते है। इसके फूल किसी ने नही देखे है। मैने लोगो को अक्सर यह कहते सुना है कि टोनही ही उस फूल को देख पाती है। उनकी बाते सुनकर मै मजाकिये लहजे मे यह कहने से नही चूकता हूँ कि मुझे टोनही से मिलवा दे ताकि मै फूल की दुर्लभ तस्वीर दुनिया को दिखा सकूँ।

इस जंगल यात्रा के दौरान डूमर के तथाकथित फूल के बारे एक नयी कहानी सुनने को मिली। पारम्परिक चिकित्सको ने मुझे पास के तालाब से पकडी गयी मोंगरी मछली दिखायी और उसे काटा। मछली के अन्दर से गोल लाल संरचना निकली। पारम्परिक चिकित्सक बोले, “यही डूमर का फूल है। यह मछली इस फूल को निगल लेती है।“ उस लाल संरचना को देखने से वह साफ माँसल संरचना दिख रही थी। उसमे कोई वानस्पतिक भाग नही था। फिर भला ये कैसे डूमर का फूल हुआ? जंगल मे जब आप पारम्परिक चिकित्सको या स्थानीय लोगो के साथ चलते है तो चाहकर भी तर्को को मुँह के अन्दर रखना पडता है। भूत-प्रेत और तंत्रो की ढेरो ऐसी बाते होती है जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नही होता है पर फिर भी इन्हे उनका विश्वास मानकर अनदेखा करना होता है। मैने इस बार भी ऐसा ही किया।

मित्र को जिस तालाब की सफाई का काम मिला है वहाँ टाइफा नामक जलीय खरसवार आधे से अधिक तालाब मे अपना कब्जा जमाये हुये है। इसे उखाडना टेढी खीर है। इसे मैने रावण की संज्ञा दी है। इसे जितना काटो उतना ही यह बढता जाता है। हाल के कुछ वर्षो मे इसका फैलाव प्रदेश भर के जल स्त्रोतो मे बढा है। बरसाती नालो और नहरो से यह किसानो के खेत तक पहुँच रहा है। धान के खेतो मे पानी होने के कारण यह मजे से उगता है। एक बार जमने के बाद सालो-साल तक यह फैलता ही जाता है। इसे स्थानीय भाषा मे चितावर कहा जाता है।

इस जंगल यात्रा के दौरान मैने जंगल के अन्दर के तालाबो मे इसका प्रकोप देखा। लम्बी घास की तरह दिखने वाले इस खरसवार मे बहुत सी चिडियो का बसेरा होता है। इनमे से ब्लैकबर्ड भी होती है। प्रकृतिप्रेमी इस विशेष चिडिया को बहुत पसन्द करते है। पर किसानो विशेषकर धान के किसानो के लिये यह अभिशाप है। टाइफा मे घर बनाने के बाद यह आस-पास के बडे क्षेत्र मे उग रही धान की फसल को बाली की अवस्था मे बहुत नुकसान पहुँचाती है। किसान जानते है कि यह कहाँ रहती है? इसलिये भी वे टाइफा को जड से उखाडने की कोशिश करते है पर कम ही सफल हो पाते है।

मित्र वाले तालाब मे जब टाइफा को नष्ट किया गया तो ब्लैक बर्डस का आशियाना उजड गया। जब ये बडी संख्या मे शहर मे उडने लगी तो बहुत से पक्षी प्रेमी चिंतित हो उठे। उन्हे लगा कि चिडियो का आशियाना उजाडना ठीक नही है। कुछ ने मुझसे समर्थन माँगा। मैने उन्हे इस चिडिया से होने वाले नुकसान के विषय मे बताया। यह भी बताया कि टाइफा के रहते तालाब आम लोगो के उपयोग के लिये नही खुल पायेगा। अब आपको फैसला करना है कि चिडिया जरुरी है या मनुष्यो का यह तालाब? फिर टाइफा के नष्ट होने से ये चिडिया मरेंगी नही। हजारो एकड मे टाइफा का राज है। ये वहाँ जाकर बस जायेंगी। ब्लैक बर्डस दूसरी वनस्पतियो मे भी घोसला बनाती है। टाइफा विदेशी खरसवार है और इन चिडियो ने इसे हाल ही मे घोसला बनाने के लिये चुना है। काफी देर के बाद वे माने। ऐसी समस्या होती ही रहती है। बडी संख्या मे तोते फसल को नुकसान पहुँचाते है। किसान इन्हे मारना चाहते है पर पक्षी प्रेमी विरोध का स्वर बुलन्द कर देते है। ऐसे मे किसी एक के पक्ष मे निर्णय देना कठिन हो जाता है।

आम लोगो विशेषकर किसानो के लिये टाइफा और जलकुम्भी जैसी विदेशी वनस्पतियाँ अभिशाप बनी हुयी है। इन विदेशी वनस्पतियो के प्रबन्धन मे पारम्परिक चिकित्सक कई बार अहम भूमिका निभाते है। वे इन विदेशी वनस्पतियो के साथ प्रयोग करते है और इनके औषधीय उपयोग विकसित करने की कोशिश करते है। देश के बहुत से हिस्सो मे

जलकुम्भी के साथ सालो से रहते हुये पारम्परिक चिकित्सको इसके उपयोग ढूँढ निकाले है। वे इसके पौध भागो का प्रयोग बहुत से औषधीय मिश्रणो मे कर रहे है। इस तरह नये उपयोगो के सामने आने से आम लोग इनका प्रयोग करने लगते है और इस तरह इनकी बढती आबादी मे अंकुश लग जाता है। मैने इस जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सको से टाइफा के नये उपयोग विकसित करने का अनुरोध किया है। यह प्रसन्नता की बात है कि उन्होने इसे चुनौती के रुप मे स्वीकार कर लिया है।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-21

- पंकज अवधिया

रुको, मत मारो, मुझे तेन्दुए से बात तो कर लेने दो

"सिट, टेक फुड, सिट-सिट, गुड ब्वाय, ओह नो, यू ब्लडी बास्ट*-----।" जंगल के एक अधिकारी शहर के बाहरी हिस्से से पकडे गये एक तेन्दुए को यह सब कह रहे थे। तेन्दुआ एक छोटे से पिंजरे मे बन्द था। पिंजरा इतना छोटा था कि वह ठीक से घूम भी नही सकता था। खडा होता तो सिर लोहे की जाली से टकरा जाता। उसे खाना दिया जा रहा था पर वह कैसे भी बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था। उसके चारो ओर लोगो का हुजूम लगा हुआ था। वे चिल्ला रहे थे। ऐसी आवाजे निकाल रहे थे जिससे तेन्दुआ आवेश मे आकर जोर से आवाज निकाले। इससे भीड का मनोरंजन होता। अधिकारी थोडा हटते तो लोग कंकड भी पिंजरे के अन्दर फेकते। अधिकारी की अंग्रेजी मे बडबड सुनकर बाजू मे खडे एक अदने से कर्मचारी ने कहा कि साहब, इससे छत्तीसगढी मे बोलिये। यह अंग्रेजी नही समझेगा। इस पर अधिकारी ने घूर कर उस कर्मचारी को देखा और फिर कहा कि साहब, तुम हो कि मै? तेन्दुआ क्या आदमियो का भाषा समझता है?

बात आयी-गयी हो गयी। साहब शान से क्लब मे यह किस्सा सुनाते और उनके साथी घंटो तक अदने से कर्मचारी की बात पर हँसते रहते। मैने यह किस्सा कर्मचारी नही

बल्कि उस अधिकारी से सुना था। पर मुझे हँसी नही आयी। आज समाचार पत्रो मे छपी एक खबर की ओर मैने उनका ध्यान दिलाया तो उनकी भी हँसी रुक गयी।

खबर थी कि मुम्बई के चिडियाघर के किसी उच्च अधिकारी को कन्नड सीखनी पड रही है जिससे वे बाघ से बात कर सके। दरअसल यह बाघ बंगलुरु से लाया गया है और यह केवल कन्नड मे दिये गये निर्देशो को समझ पाता है। इस खबर से कर्मचारी की खिल्ली उडा रहे अधिकारी के होश उड गये। उन्होने उस कर्मचारी को बुलवाकर उससे माफी माँग ली। चलिये उन्होने देर से ही सही पर अपना साहबपना तो छोडा। मुझे मालूम है कि आपमे से बहुतो के लिये यह आश्चर्य का विषय होगा कि जंगली जानवर स्थानीय भाषा को कुछ-कुछ समझते है। भले ही वे सटीक अर्थ न जाने पर बोलने के ढंग से काफी कुछ समझ जाते है।

जंगल यात्रा के दौरान चाहे-अनचाहे जंगली जानवरो से मुलाकात हो जाती है। साथ चल रहे लोग बहुत बार अंग्रेजी या हिन्दी का प्रयोग करते है, ऐसे मे स्थानीय लोग छत्तीसगढी या दूसरी स्थानीय भाषाओ के कडे प्रयोग की बात करते है। मैने अपने लेखो मे यह बार-बार लिखा है कि कैसे पारम्परिक चिकित्सक सरल स्थानीय भाषा के प्रयोग से जंगली जानवरो से होने वाली सम्भावित मुठभेड को टाल देते है।

कुछ दिनो से रायपुर के बाहरी क्षेत्र मे एक तेन्दुए के दिखने की खबर है। आज सुबह ही अखबार मे छपा है कि वैगन रिपेयर वर्कशाप परिसर मे किसी रेल्वे अधिकारी के ऊपर उसने उस समय हमला कर दिया जब वे सुबह टहल रहे थे। उन्होने शोर मचाया तो दूसरे कर्मचारी आ गये। इस बीच तेन्दुआ भाग गया। अब जोर-शोर से तेन्दुए को घेरने की तैयारियाँ चल रही है। कुछ दिनो पहले ऐसी ही शिकायत आयी थी तब वन विभाग की गश्त बढा दी गयी थी। उस समय एक लकडबग्घा दिखा था। विभाग ने यह मान लिया कि इसी ने आक्रमण किया होगा। रात को मशाल जलाकर तेन्दुए की खोज की जा रही है। मैने पहले लिखा है कि रायपुर के आस-पास किसी जंगल तक पहुँचने मे डेढ-दो घंटो से कम का समय नही लगता है। रायपुर जंगल से सटा हुआ नही है। पर जिस भाग मे जंगली जानवर आजकल मिल रहे है वह दो सौ एकड की खाली जमीन है जहाँ झाडियाँ उग आयी है। पहले वहाँ भारतीय सेना की छावनी थी। जंगली जानवर वहाँ कैसे पहुँच रहे है, यह पहेली ही है। वन विभाग वाले जैसे सब जानते है। वे कहते है कि जंगलो से गुजरने वाली मालगाडी पर वे सवार हो जाते है और फिर यहाँ उतर जाते है। ऐसे यात्री जंगली जानवरो के बारे मे पहले कभी नही सुना गया है। वन विभाग इसी थ्योरी पर अटका हुआ है।

तेन्दुए ने रेल्वे के अधिकारी पर हमला किया, ये बात कुछ हजम नही हो रही है। ज्यादातर मामलो मे परेशान नही किये जाने पर तेन्दुए आदमियो से उलझते नही है। यदि जंगली जानवरो के साथ बच्चे हो या आप उनके क्षेत्र मे दखल करे तो ही वे आक्रमण करते है। जंगल मे माँद मे बैठे तेन्दुए की ओर पीठ करके हमने घंटो की कडी मेहनत से पातालकुम्हडा के कन्द एकत्र किये है। न हमने तेन्दुए मे रुचि, ली न ही उसने हममे। फिर इस शहर मे आकर उसे क्या हो गया?

शहरी हो या ग्रामीण सभी जानते है कि जंगल कम हो रहे है इसलिये जानवर मानव बस्ती की ओर आ रहे है। इस बार तो मानसून मे हो रही देरी ने वन्य प्राणियो को बेहाल कर दिया है। वे बडी संख्या मे जंगल से बाहर निकलकर पानी की तलाश कर रहे है। हो सकता है ऐसे ही पानी की तलाश मे यह तेन्दुआ रायपुर के पास आ गया हो। किसी क्षेत्र मे तेन्दुआ है कि नही, यह जानना मुश्किल काम नही है। वन विभाग के लिये और भी मुश्किल नही। फिर तेन्दुए वाले क्षेत्र मे बडी संख्या मे जाकर शोर मचाना, मशाले जलाकर चकाचौन्ध करने की जरुरत क्या है? इससे तो तेन्दुआ अपने आप को प्रभावित महसूस करेगा और इंसानो को दुश्मन मान बैठेगा। उस क्षेत्र मे उसकी उपस्थित जानने के लिये इंसानो को जंगली व्यवहार करना जरुरी नही है। खबरे कहती है कि तेन्दुए को पकडने के लिये बकरा बाँधा जा रहा है। पर अनुभव बताता है कि यह विधि बहुत समय और धैर्य दोनो माँगती है। इस बीच हो सकता है कि फिर तेन्दुए और इंसानो की झडप हो जाये। ऐसे मे तेन्दुए से कैसे निपटा जाये? इसका जवाब उन्ही जंगलो के लोग देते है जहाँ तेन्दुए रहते है। अभी तो कही भी पानी की व्यवस्था कर दी जाये तो झट से उस क्षेत्र के जंगली जानवर वहाँ आ जायेंगे। किसी सूखी पडी डबरी मे टैकर से पानी डालकर भी यह काम किया जा सकता है। पास मे वाच टावर या गाडी खडी करके निगरानी रखिये, आपको कितने जानवर है, यह पता लग जायेगा। एक बार उसका अता-पता जानने के बाद फिर उससे निपटा जा सकता है।

तेन्दुए को कैद करके उसे तंग पिंजरे मे रखना और कुछ समय बाद उसे फिर जंगल मे छोड देना, यह प्रक्रिया जंगल और इंसानो दोनो के लिये सही नही जान पडती है। पर वन विभाग तो जैसे लकीर का फकीर है। वह इसी राह पर चलता है। अपनी जंगल यात्रा के दौरान बहुत बार मैने साथ चल रहे लोगो को तेन्दुए को देखकर ये कहते हुये सुना है कि ये पिंजरे से छूटा हुआ तेन्दुआ है। ऐसे तेन्दुए अपने आपको इंसानो से बचाते फिरते है और यदि कोई इंसान गल्ती से सामने आ जाये तो अपने पूर्व अनुभव के चलते आक्रमण करने मे देरी नही करते है। यह गौर करने वाली बात है कि उनके आक्रमण का उद्देश्य

जान लेना नही होता है। वे घायल करके इंसानो को अक्षम कर देते है। फिर उन्हे वैसा ही छोड कर चले जाते है।

बहुत से मामलो मे एक बार पकडे जाने के बाद वन विभाग उन्हे चिडियाघर भेज देता है। वहाँ पिंजरे मे वे गोल चक्कर लगाते रहते है दिन-रात। आपको वे सामान्य लगे पर वे वास्तव मे अपना मानसिक संतुलन खो चुके होते है। यदि उन्हे फिर से बाहर छोड दिया जाये तो भी वे वैसे ही गोल चक्कर लगाते रहेंगे।

आज मैने बहुत कोशिश की कि उस क्षेत्र मे जा सकूँ जहाँ तेन्दुआ दिखा है। वन विभाग के साथ रात की गश्त कर सकूँ। मै एक बार तेन्दुए से रुबरु होना चाहता हूँ ताकि मै अपने अनुभव से यह जान सकूँ कि आखिर उसे परेशानी क्या है? उसे अभिव्यक्ति का अवसर दिये बिना ही बर्बरता से कब्जे मे ले लेना मुझे सही नही जान पडता है। तेन्दुए और दूसरे जंगली जानवर इस क्षेत्र मे लगातार आ रहे है। समस्या की जड जानना जरुरी है। यदि जड पता लग गयी तो हम बिना इन्सानो और जानवरो को नुकसान पहुँचाये बीच का रास्ता निकाल सकते है। अभी रात के एक बज रहे है। बारह बजे मुझे उस इलाके मे जाना था। मै फोन का इंतजार कर रहा हूँ। सुबह चार तक भी फोन आ जाये तो मै अपनी गाडी मे निकल जाऊँगा। यदि ऐसा नही हुआ तो मै कल सुबह दस बजे वहाँ जाने की कोशिश करुंगा। इतना बडा राज्य है पर कोई भी प्राणी विशेषज्ञ तेन्दुए की सुध लेने इच्छुक नही दिखता। आखिर किसी को तो जाना ही होगा तेन्दुए से बात करने-
---- **(क्रमशः)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-22

- **पंकज अवधिया**

तेन्दुआ, सनसनीखेज खबरो के चक्कर मे अखबार और गहराता संकट

श्री विश्वास रात की पाली समाप्त कर वैगन रिपेयर शाप से लौट रहे थे। रेल्वे क्रासिंग के आस उन्हे कोई बडा सा जंगली जानवर उछलकर झाडियो के अन्दर जाते दिखा। उन्हे लगा कि ये तेन्दुआ है। बस यह बात जंगल मे आग की तरह फैल गयी। दूसरे दिन

राजधानी के अखबारो मे यह खबर छप गयी। मनुष्यो और जंगली जानवरो की समस्याओ के लिये लम्बी दूरी तक सफर जब-तब मै करता रहता हूँ। इस बार जिस स्थान पर तेन्दुए के दिखने की बात हो रही थी वह घर से महज आठ-दस किलोमीटर की दूरी पर है। फिर मै वहाँ कैसे न जाता? कल सुबह ही मै उस स्थान की ओर रवाना हो गया। उस स्थान पर पहुँचने पर मैने पाया कि वहाँ इस घटना के बारे मे कम लोग जानते है। अखबारो मे कहा गया था कि लोग दहशत मे है। पर वहाँ तो मजे से बच्चे क्रिकेट खेल रहे थे। जिन झाडीनुमा जंगलो मे तेन्दुए को देखने की बात की जा रही थी वहाँ पर भैसे मजे से चर रही थी। मैने रुककर इस बारे मे पूछना चाहा तो चरवाहो ने कहा कि पिछले साल ऐसी घटनाए हुयी थी पर हाल की घटना के बारे मे ऐसी कोई खबर नही है। मुझे बडा ही आश्चर्य हुआ। हम आगे बढते गये।

वैगन रिपेयर वर्कशाप के मुख्य द्वार के सामने गेट पास के लिये हमे रोक दिया गया। झाडीनुमा जंगल तक जाने के लिये यही से अन्दर जाना पडता है। पास मे रेल्वे पुलिस का थाना था। मैने वहाँ जाकर तेन्दुए के हमले की घटना के बारे मे जानना चाहा। साथ ही आस-पास के लोगो से भी बात की। उन्होने चौकाने वाला खुलासा किया कि तेन्दुए के हमले की खबर सही नही है। अखबारो मे खबर को सनसनीखेज बनाने के लिये ऐसा किया होगा। किसी जंगली जीव को श्री विश्वास ने झाडियो मे घुसते देखा। न उसने श्री विश्वास पर आक्रमण किया और न ही उन्होने मदद के लिये कर्मचारियो को बुलाया। अखबारो मे छपी यह बात भी गलत निकली कि यह घटना मार्निग वाक के दौरान हुयी। मुझे बडी ही कोफ्त हुयी कि राजधानी क्षेत्र मे शहर के इतने पास से अखबारो मे गलत रिपोर्टिग क्यो की जा रही है? साथ ही इस बात का संतोष भी हुआ कि तेन्दुए ने आक्रमण नही किया। मेरा अनुमान सही था। जंगली जीव बिना परेशान किये इस तरह की हरकत आमतौर पर नही करते है।

कुछ महिनो पहले जब एक तेन्दुआ शहर के टिम्बर मार्केट मे घुस आया था तब वह दो दिनो तक इलाके मे रहा। उसने किसी को भी नुकसान नही पहुँचाया। वह बचता रहा। कुछ मकानो की दूसरी मंजिल पर सीढीयो से गया पर कुत्ता समझकर बिना दरवाजा खोले ही अन्दर से लोगो ने उसे झिडक दिया। वह वापस चला गया। पूजा करते वक्त एक व्यवसायी ने उसे देखा तो शोर मचाया गया। उस समय भी उसने आक्रमण नही किया।

वन विभाग की एक थ्योरी के बारे मे मैने पिछले लेख मे आपको बताया था कि जंगल से जंगली जीव मालगाडी की रेक मे सवार होकर आते है। फिर मालगाडी के वैगन रिपेयर वर्कशाप से गुजरने पर वे वही उतर जाते है। प्रभावित क्षेत्र मे आम लोगो से बातचीत

करने पर पता लगा कि अन्दर पानी की एक बडी झील है। साथ ही और भी दूसरे जल स्त्रोत है जहाँ इस भीषण गर्मी मे भी पर्याप्त जल है। सालो से इसी कारण यहाँ बहुत से जंगली जीव पनप रहे है। इस वीरान क्षेत्र मे मानव की गतिविधियाँ सीमित है इसलिये वहाँ ये बिना किसी डर के रह रहे है। आस-पास के तेजी से कट रहे जंगलो से दूसरे जीवो के आने का क्रम जारी है। वे रेलगाडी से नही आ रहे है। वे रात को उन रास्तो से आ रहे है जहाँ से आम आदमी गुजरता है और जहाँ भी पानी मिल रहा है, वही डेरा जमा रहे है। रात को आम रास्तो से गुजरने वाले ट्रक वालो के बीच गर्मियो मे बडी संख्या मे जंगली जीवो के दिखने की चर्चा आम है। बहुत से जीव जाने-अनजाने ही तेज रफ्तार गाडियो की चपेट मे भी आ जाते है। वैगन रिपेयर शाप मे स्थानीय लोगो ने कहा कि आने वाले सालो मे यह समस्या बहुत बढेगी और इससे कई जाने जा सकती है।

मुझे बताया गया कि वन विभाग का अमला लगातार तेन्दुए की तलाश मे है। मै उनसे नही मिल पाया। शाम चार बजे एक बार फिर से इस स्थान पर आने का मन बनाकर मै वापस लौटने लगा। तभी प्रदेश के प्रसिद्ध घटारानी क्षेत्र से फोन आ गया कि एक माह पहले किसी लकडबघ्घे के आक्रमण से घायल हुये आठ ग्रामीणो मे से एक की हालत बहुत खराब है। उसके एक हाथ ने काम करना बन्द कर दिया है। मैने बिना विलम्ब उस ओर का रुख किया। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-23

- पंकज अवधिया

हुर्रा का तांडव, घायल ग्रामीण और सिमटते जंगल

सुबह के नौ बजे थे। विश्म्भर ध्रुव अपने घर के आँगन मे बैठे हुये थे। घर का दरवाजा खुला हुआ था। बच्चे बाहर खेलने गये हुये थे। उनका काला कुत्ता उनके पास बैठा हुआ था। तभी अचानक तूफान की गति से कोई जीव दरवाजे से अन्दर घुसा और फिर विश्म्भर पर झपट पडा। शरीर का जो भी हिस्सा सामने दिखायी पडा उसमे उसने दाँत गडा दिये। विश्म्भर दर्द से व्याकुल हो उठा। उन्होने उस पर काबू करने का असफल प्रयास किया और आँगन के एक कोने पर दबोचना चाहा। उस जीव ने अपनी पकड ढीली

की और फिर जैसे आया था वैसे ही दरवाजे से ओझल हो गया। खून से लथपथ विश्म्भर को कुछ पलो के लिये कुछ समझ नही आया। उनके पास खडा उनका काला कुत्ता मारे डर वैसे ही खडा रहा। विश्म्भर की चीख सुनकर घर वाले बाहर आये। घायल भागो को देखने के बाद उनके घर वालो को लगा कि यह किसी पागल कुत्ते की हरकत है। विश्म्भर ने चिल्लाकर कहा कि हुंर्रा ने आक्रमण किया है। हुंर्रा यानि लकडबघ्घा।

विश्म्भर के घर मे आने से पहले उसने पास के एक गाँव मे कई लोगो को ऐसी चोटे पहुँचायी थी। विश्म्भर के घर से निकलने के बाद वह पास के लोगो को घायल करते हुये पास के जमाही गाँव पहुँचा। वहाँ उसकी नजर अवधराम यादव पर पडी। वे नाले मे रहे थे। बिना किसी देरी के वह उन पर टूट पडा। दर्द से व्याकुल अवधराम ने अपने दर्द को भुलाकर उसे दबोच लिया और नाले मे पटककर उस जीव को मौत के घाट उतार दिया। इस तरह लकडबघ्घा का तांडव समाप्त हुआ। यह घटना लगभग एक माह पूर्व की है। स्थानीय अखबारो ने इस खबर को प्रकाशित किया। घायलो को पाँच सौ रुपयो की मदद दी। खबरो के अनुसार जिस व्यक्ति पर पहले आक्रमण हुआ था उसे बहुत चोट लगी थी। उसे रायपुर के मुख्य अस्पताल मे भेजा गया।

अपनी इस जंगल यात्रा के दौरान मैने घायलो से मिलने का मन बनाया। पिछले कई सालो से मैने जाने-अंजाने, चाहे-अनचाहे मनुष्य़-वन्यपशुओ के टकराव के बारे मे काफी जानकर्रियाँ एकत्र की है। चाहे-अनचाहे इसलिये क्योकि मेरी जंगल यात्रा वनस्पतियो के लिये होती है। जानवरो से मुलाकात का मन नही रहता है। पर फिर भी जब आप जंगल जायेंगे तो उसके सभी पहलुओ की जानकारियाँ आपके सामने आयेंगी। ऐसे मे आप किसी भी पहलू को नजरन्दाज नही कर सकते है। Human-wildlife conflict (HWC) का मामला भी ऐसा ही है। इस पर दुनिया भर के संगठन काम कर रहे है। शोध के लिये अरबो बहाये जा रहे है। इस पर महंगी ट्रेनिंग हो रही है, सात सितारा होटलो मे बैठके हो रही है, ग्रंथ प्रकाशित हो रहे है, एक बडा गुट सक्रिय है जो इस मामले मे किसी नये को घुसने नही देना चाहता है पर जमीनी स्तर पर हालात बद से बदतर हो रहे है। जमाही गाँव के इस मामले मे मै घायल हुये ग्रामीणो और बेमौत मारे गये लकडबघ्घे दोनो की ओर से शोक मना रहा हूँ। बस मन मे यही प्रश्न आता है कि क्या आगे इस तरह की मुठभेड को रोका जा सकता है? यदि हाँ, तो कैसे?

जमाही, जोगीडिपरा और चरोदा गाँवो के पास घटारानी जंगल है। पहले यह घना जंगल हुआ करता था। अन्दर मे धँसकुड नामक स्थान है जहाँ देवी का मन्दिर है। पहले वहाँ जाना बहुत कठिन था। पर हाल के वर्षो मे इस मन्दिर की महिमा बढने से हजारो की

संख्या मे पर्यटक आते है। देखते ही देखते जंगल साफ हो रहे है और सडके बन रही है। जिज्ञासु शहरी पर्यटक मन्दिर के आस-पास के जंगलो मे दूर-दूर तक जा रहे है। आस-पास के जंगलो मे गुटखे के पाउच, बीयर की बोतले और यहाँ तक की प्रयोग कर फेके गये कंडोम दिखायी दे जाते है। इसी कारण मैने श्रद्धालु की जगह पर्यटक शब्द का प्रयोग किया है। मन्दिर से लगा हुआ एक झरना है जो केवल बरसात मे ही झरता है। यह झरना पर्यटको के आकर्षण का केन्द्र ही नही है बल्कि जंगली जावो के लिये पानी का स्त्रोत भी है। मन्दिर के पुजारी बताते है कि रात को आज भी जंगली जानवरो के कारण वापस गाँव लौट जाना पडता है। लकडी के लिये जंगलो की कटाई से मेरे देखते ही देखते यह क्षेत्र विरल होता जा रहा है। आने वाले कुछ वर्षो मे यह मैदान बन जायेगा। इस जंगल के अन्दर शरण लिये प्राणी बढती मानवीय गतिविधियो से त्रस्त है। इस बार मानसून मे देरी होने से प्यास से जंगल मे हाहाकार मचा हुआ है। यह लकडबघ्घा भी इसी प्यास से व्याकुल होकर बाहर आया होगा। इस जंगल यात्रा के दौरान बुजुर्ग ग्रामीणो ने बताया कि मोबाइल और मोटरसाइकिल के शोर से ये जानवर कुद्ध हो जाते है। मोबाइल पर गाना बजाकर पर्यटक मजे से जंगल मे घूमते है। आमतौर पर लकडबघ्घा मनुष्यो पर आक्रमण नही करता है। इस लकडबघ्घा को किसी ने चोट पहुँचायी होगी जिससे वह हिंसक हो गया होगा।

अवधराम जिन्होने लकडबघ्घा को मारा था, से मिलने जब मै उनके गाँव जमाही पहुँचा तो रात हो चुकी थी। वे खाना खा रहे थे। हमे बताया गया कि उनकी श्रवण शक्ति बहुत कम है। वे बाहर आये। मैने उनके जख्मो की तस्वीरे ली। फिर घटना की विडियो रिकार्डिंग का निश्चय किया। अन्धेरे मे यह काम दुषकर साबित हुआ। लट्टू की रोशनी मे उनसे बात की। गाँववालो का कहना था कि यदि अवधराम ने हिम्मत नही दिखायी होती तो वह लकडबघ्घा जाने कितने लोगो को इस तरह घायल करता। इस नजर से देखा जाये तो उन्हे लकडबघ्घा को मौत के घाट उतारने के लिये इनाम मिलना चाहिये था वन विभाग से। वे गाँव के हीरो है। मैने यह सुनिश्चित करना चाहा कि क्या लकडबघ्घा खुद घायल था? इस पर मुझे चौकाने वाली घटना का पता चला। नियमानुसार ऐसे हादसो मे मारे गये जंगली जीवो को मुख्यालय ले जाया जाता है फिर वहाँ तस्वीरे वगैरह लेकर लाश को जला दिया जाता है। पर गाँव मे मुझे एक युवा मिला जिसे लकडबघ्घा की लाश ठिकाने लगाने का जिम्मा मिला था। उसने बोरे मे उसे बन्द किया और उसी नाले मे बहा दिया। मुझे इस बात पर शक ही है कि इस जंगली जीव की मौत सरकारी दस्तावेजो मे दर्ज हुयी होगी अधिकारिक तौर पर।

चरोदा गाँव के विश्म्भर से कहा गया कि चोट से बहने वाले खून को रोका न जाये। जितना खून निकलेगा उतना ही जहर बाहर निकलेगा। चौबीस घंटो से अधिक रुक-रुक कर जख्मो से खून रिसता रहा। आज घटना के एक महिने बाद भी उसके जख्मो मे वैसा ही दर्द की जैसा उस समय था। उसका दाहिना हाथ काम नही कर रहा था। हाथ मे जगह-जगह पर गठान बन गयी है। उसकी पीडा चेहरे पर साफ दिखती है। मुआवजा के पाँच सौ कब के खर्च हो गये। अब चिकित्सक ने हाथ खडे कर लिये है। उनसे कहा गया है कि राजनेता को चिकित्सा के लिये अर्जी दी जाये। वे जानते है कि अर्जियो से ज्यादा कुछ नही होने वाला। कमोबेश यही हालत दूसरे घायलो की है। एक बार खबर छपने के बाद अब यह बासी हो गयी है। अखबार इस विषय मे फिर से नही छापना चाहते है। इस हताशा भरे माहौल को देखकर मैने निश्चय किया कि इस लेखमाला के माध्यम से मै सारा घटनाक्रम सामने लाऊँगा।

मेरे एक वन अधिकारी मित्र ने इस घटना के बारे मे मेरे विश्लेषण को सुना तो झट से बोले कि ब्लाग मे इसे लिखने की बजाय एक शोध पत्र तैयार किया जाये। मेरा नाम उसमे जरुर रखना। लकडबघ्घा का हमला दूसरे जंगली जीवो की तुलना मे कम होता है। यकीन मानो हमे शोध पत्र पढने के लिये विदेश बुलाया जायेगा। मैने विनम्रतापूर्वक मित्र से कहा कि यह विशुद्ध स्थानीय घटना है। मै योजनाकारो तक अपनी आवाज पहुँचाना चाहता हूँ। साथ ही अपने देशवासियो को भी उनकी भाषा मे समस्या के विषय मे बताना चाहता हूँ इसलिये मै हिन्दी मे ब्लाग के माध्यम से अपने विचार व्यक्त कर रहा हूँ। विदेशो मे अंग्रेजी मे इसके बारे मे बताने से निश्चित ही वाह-वाही मिलेगी पर इससे जमीनी स्तर पर कुछ नही होगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-24

- **पंकज अवधिया**

चवन्नी दुकाल, कैंसर रोगियो के लिये औषधीय धान और देशी खेती

"पहले यहाँ बहुत घना जंगल हुआ करता था। सभी तरह के जानवर थे। मुझे याद है कि तब सामने वाली गली से बाघ ने हमारे "मोसी" (मवेशी) को मार दिया था। सामने वाले

घर के अन्दर घुसकर एक बच्चे को उठा लिया था। जब बच्चे का पिता पीछे दौडा तो बाघ ने बच्चे को चीर कर मार डाला। अब बाघ नही है पर तेन्दुए है। तेन्दुए हमे नुकसान नही पहुँचाते। कभी-कभार दिख जाते है। खेती मे बरहा (जंगली सूअर) का आक्रमण होता रहता है। हम रात भर जागकर खेत की रखवाली करते है। आदमी होने के अहसास से बरहा दूर रहते है। हम बजरबट्टू का भी सहारा लेते है। गाँव मे कुछ लोगो के पास भरमार बन्दूके है, लाइसेंसी। उसके प्रयोग से हम बरहा को भगाते है। इस बन्दूक के प्रयोग से उन्हे मारना मना है। जब फल पकते है तो गाँव मे भालू आ जाते है। पीपल के फल जिसे स्थानीय भाषा मे पिकरी कहा जाता है, भालूओ को बहुत पसन्द आते है। भालू शैतान प्राणी है। वह न केवल जिज्ञासु होता है बल्कि आपके पीछे-पीछे चला आता है। उसे मालूम है कि आदमी उसकी तुलना मे कम शक्तिशाली है।" सुदूर गाँव मे श्री बालकराम अपने गाँव का हाल बता रहे थे। अपनी जंगल यात्रा के बीच पहाडो की गोद मे बसे इस गाँव मे रुकना सुखद लग रहा था। शाम का वक्त था और घटाओ ने गाँव को घेरना शुरु कर दिया था। मानसून के विलम्ब से सभी चिंतित है। गाँव वालो को लग रहा था कि आज पानी जरुर गिरेगा। काफी देर तक काले-काले बादल जस के तस रहे तो एक बुजुर्ग ने कह ही दिया कि लम्बा बाँस लेकर थोडा सा छेद करना होगा तभी पानी गिरना शुरु होगा। सभी हँस पडे।

रास्ते भर खेत की पूरी तैयारी कर मानसून की प्रतीक्षा मे बैठे किसान दिखे। उन्होने स्थानीय भाषा मे "चवन्नी दुकाल" की आशंका व्यक्त की यानि मानसून मे देरी ऐसे ही जारी रही तो चवन्नी से ज्यादा नही मिलेगा। "चवन्नी दुकाल" सुनने मे साधारण शब्द लगे पर किसानो के लिये यह रोंगटे खडे कर देने वाला शब्द है। छत्तीसगढ मे धान की नयी किस्मे अधिक अवधि की है। जितनी लम्बी अवधि उतनी अधिक उपज पर यह भी कडवा सत्य है कि जितनी लम्बी अवधि उतनी ही अधिक वर्षा पर निर्भरता। राज्य मे ज्यादातर वर्षा आधारित खेती होती है। फसल की हर महत्वपूर्ण अवस्था मे पानी का संकट रहता है। जरा भी देरी यानि बडा नुकसान। सिंचित खेती कम भागो तक सीमित है। यात्रा के दौरान मैने देखा कि खेतो मे खाट बिछाये किसान लेटे हुये थे। आसमान की ओर टकटकी लगाये थे। वे बताते है कि इस उमस मे घर गरमता है। इसलिये बाहर खेतो मे रहना ही ठीक लगता है। वे रात को भी वही सो जाते है। ऐसे ही किसानो के एक समूह के पास मैने गाडी रुकवायी। वे बुजुर्ग किसान थे। उनसे चर्चा का दौर चल पडा।

उन्होने बताया कि पहले अल्प अवधि जिसे स्थानीय तौर पर हरुना कहा जाता है, की किस्मे लगायी जाती थी। ये जल्दी पकती थी और मानसून पर निर्भरता के आधार पर चुनी गयी थी। उत्पादन इतना हो जाता था कि साल भर अन्न की जरुरत नही होती थी। जब से लम्बी अवधि की सरकारी खाद और दवा माँगने वाली किस्मे आयी है किसानो का सिरदर्द बढ गया है। मानसून मे पिछले कुछ सालो से बडी देरी हो रही है। देरी से बुआई मतलब कीटो और रोगो का प्रकोप। किसान जैविक खेती करे तो पडोस के किसानो से कीटनाशको के कारण भागे कीडे बडी संख्या मे आ जाते है। ऐसे मे जैविक खेती कर रहे किसानो को मजबूरन एक-दो बार कीटनाशको का प्रयोग करना ही पडता है। वे बताते है कि जैविक खेती तभी सफल होगी जब बडे इलाके मे सब किसान मिलजुल कर यह खेती करे। चर्चा के दौरान एक युवा किसान ने कृषि अधिकारी का यह फरमान सुनाया कि किसानो को मानसून मे देरी के कारण अल्प अवधि के किस्मो को प्राथमिकता देनी चाहिये। ऐसी सलाहे देना आसान है पर लम्बी अवधि की किस्मो के बीजो का इंतजाम करके बैठे किसान अब अल्प अवधि के बीज लाये कहाँ से? क्या सम्बन्धित विभाग उनके लिये कोई व्यवस्था कर रहा है? नही ना, फिर जबानी सलाह से क्या लाभ?

रात को लौटते समय आखिर काले-काले बादलो ने बरसना शुरु कर दिया। राजधानी से आ रहे फोन बता रहे थे कि उडीसा मे कुछ हलचल हुयी है इसलिये पानी गिरने की सम्भावना है। तेज वर्षा के बीच आई.ए.एन.एस. के स्थानीय संवाददाता का फोन आ गया। वे मानसून मे हो रही देरी के कारण धान पर पडने वाले प्रभावो के विषय मे पूछ रहे थे। मैने उन्हे किसानो के हवाले से "चवन्नी दुकाल" की बात बतायी और यह भी बताया कि कैसे बुजुर्ग किसान अल्प अवधि की पारम्परिक किस्मो की खेती को छोडने पर पछता रहे है? बारिश की आवाज सुनकर संवाददाता ने इस बारे मे पूछा तो मैने कहा कि हम "बारिशकर" की तरह बारिश ले कर आ रहे है। बारिश होती रही। पर जैसे ही हम राजधानी के पास पहुँचे बारिश बन्द हो गयी। पूरा इलाका वैसा ही गर्म और सूखा लगने लगा। आद्रा नक्षत्र के लगने के समय मृग नक्षत्र वाले समय की तरह बादलो का व्यवहार समझ से परे है। मृग की तरह कुलाँचे भरकर बादल कही-कही पर बरस रहे है। मानसून का इंतजार सभी को है।

इस जंगल यात्रा की एक बडी उपलब्धि यह रही कि मुझे इस बार पारम्परिक और औषधीय धान के पाँच नये प्रकारो के विषय मे न केवल जानकारी मिली बल्कि बीज भी मिल गये। इन औषधीय धानो को किसान अभी तक बो रहे है। वे जानते है कि सरकारी दवाए और खाद से इनकी गुणवत्ता कम हो जायेगी इसलिये वे पारम्परिक खेती कर रहे

है। इस देशी खेती मे वे कीडो से लडने के लिये न केवल देशी बल्कि विदेशी वनस्पतियो का ही प्रयोग कर रहे है। किसानो ने बताया कि धान के प्रमुख कीडे फुडहर, कर्रा और बेशरम नामक वनस्पतियो के सरल पर प्रभावी प्रयोग से नियंत्रण मे आ जाते है। उन्होने माहो नामक कीट के लिये बेशरम और बंकी के लिये कर्रा को बडा ही उपयोगी पाया है। वे विस्तार से बताते है कि कीटनाशक के रुप मे प्रयोग के लिये देशी वनस्पतियो को एक निश्चित समय पर एकत्र किया जाता है। इस समय विधि-विधान का ध्यान रखा जाता है। एक बुजुर्ग किसान ने एक विशेष प्रकार के बीज देते हुये मुझे बताया कि कैंसर के रोगी को इस औषधीय धान को खिलाना चाहिये। मै उस प्रकार के बारे मे जानता था। उनको कैंसर मे इसके उपयोग के अलावा इस औषधीय धान के दूसरे उपयोगो के विषय मे जानकारी नही थी। मैने उन्हे विस्तार से कोदो, कुटकी, रागी, साँवा आदि पारम्परिक फसलो के बीजो के साथ इसके सरल प्रयोग को बताया। यह औषधीय धान दूसरी औषधीय वनस्पतियो के साथ वात रोगो और ह्रदय रोगो मे उपयोगी है। सिकल सेल एनीमिया से प्रभावित रोगियो को भी इसे दिया जाता है। मैने इन बीजो की तस्वीरे ली। किसानो से बातचीत कर एक फिल्म तैयार की। मुझे उम्मीद है कि जिस दिन इन किसानो के सराहनीय कार्यो की कीमत योजनाकार जान और मान लेंगे उस दिन धान के कटोरे इस छत्तीसगढ की कायापलट होने मे जरा भी देर नही लगेगी। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-25

- **पंकज अवधिया**

समस्त दुखो को हरने वाली माला और जख्मी वृक्षो की मरहम-पट्टी

“अब हाथ मे एक हजार एक की दक्षिणा रखे और इस सारे दुख को हरने वाली माला को प्राप्त करे।“ इस जंगल यात्रा के दौरान मैने सडक के किनारे हाल ही मे बने एक डेरे पर अपनी गाडी रुकवायी। बाहर से ही यह साफ झलक रखा था कि यह किसी तांत्रिक का डेरा है। रंग-बिरंगे झंडे लगे थे। आस-पास के गाँवो से बडी संख्या मे लोग जमा थे। मेरे साथ स्थानीय पारम्परिक चिकित्सक थे इसलिये मुझे सीधे ही तांत्रिक से मिलने का अवसर मिल गया। मेरे अन्दर प्रवेश करते ही वो जोर से चिल्लाया कि तू बहुत दुखी है

इसलिये मेरे दर पर आया। तेरे लिये यह माला और यह शिव पत्र उपयुक्त रहेगा। किसी वृक्ष के जडो से बनी ताजी माला मुझे दे दी गयी। मै जडो को पहचान नही पाया। फिर एक पत्ती मुझे दी गयी जिसमे महामृत्युंजय मंत्र लिखा हुआ था। इस ताजी पत्ती को घर के द्वार मे रखने की बात कही गयी और दावा किया गया कि इससे सारे दुख द्वार से ही उल्टे पैर वापस चले जायेंगे। पत्ती को देखकर मै झट से पहचान गया कि यह तो कुल्लु की ताजी पत्तियाँ है।

कुछ दिनो पहले ही मैने कुल्लु की नयी पत्तियो से युक्त वृक्ष देखे थे और जंगल मे उनकी तस्वीरे ली थी। धार्मिक प्रयोजनो के लिये कुल्लु का प्रयोग मेरे लिये नयी बात थी। पारम्परिक चिकित्सको ने कान मे फुसफुसाकर कहा कि यह जडो की माला भी कुल्लु से ही बनी है। मेरे आश्चर्य और क्रोध का ठिकाना नही रहा। आश्चर्य इसलिये क्योकि मैने ऐसी माला पहली बार देखी थी। और क्रोध इसलिये क्योकि जडो का एकत्रण यानि वृक्ष का सर्वनाश। इस पत्ती और जड के एकत्रण से इस क्षेत्र के कुल्लु के वृक्ष तेजी से खत्म हो रहे होंगे। मै झट से वहाँ से उठा और तेजी से डेरे के बाहर आ गया। पारम्परिक चिकित्सको ने तांत्रिक से बात की और बाहर आ गये। बिना विलम्ब हमने पास के जंगल की ओर कूच कर दिया।

जंगल की पथरीली जमीन पर हमे एक घायल कुल्लु का वृक्ष मिला। सम्भवत: तांत्रिक के चेले तो यह दुष्कृत्य किया होगा। इस समय सब सभी कुल्लु के वृक्ष नयी पत्तियो से लदे है ऐसे मे यह वृक्ष पत्ती विहीन था। यानि इससे पत्तियाँ एकत्र की गयी थी। काफी खोजबीन के बाद कुछ और वृक्ष दिखे। उनकी हालत भी बिगडी हुयी थी। जडो के लिये आस-पास की मिट्टी मे खुदायी के ताजे निशान थे। सारी तस्वीरे लेने के बाद हम उल्टे पैर डेरे पर पहुँचे और कडे शब्दो मे तांत्रिक को हडकाया। वह तांत्रिक बाहर से आया था। उसे तो बस ऐसी किसी वनस्पति का अनूठा प्रयोग बताना था जिसके बारे मे आम लोग कुछ नही जानते थे। उसके सामने कुल्लु का वृक्ष पडा तो वह उसी की जड और पत्तियो के पीछे लग गया। मैने उसे समझाने की कोशिश की तो पहले जंगल मे कुल्लु के असंख्य वृक्ष थे पर आज गिने-चुने ही बचे है। आज भी गोन्द की तलाश मे लोग टंगिया लेकर कुल्लु को घायल करने घूम रहे है। पारम्परिक चिकित्सको ने बडी मुश्किल से इन्हे बचाये रखा है। ऐसे मे इसकी जड की माला और पत्तियो का नया प्रयोग इसे हमेशा के लिये समाप्त कर देगा। "अभी से यह गोरखधन्धा बन्द होना चाहिये।" तांत्रिक को आखिरी चेतावनी दे दी गयी। हमारी बातो का गाँव वालो पर भी असर पडा था। उन्होने भी डेरा उठाने के लिये जोर डाला। हमे आगे बढ गये।

जंगल मे हमे सूखे झरनो के किनारे बहुत से कुल्लु के नये पौधे मिले। नये पौधो को देखकर उम्मीद की कुछ किरण जागी। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि बहता पानी कुल्लु के बीजो को दूर-दूर तक फैलाने मे मदद करता है। जबलपुर मे नर्मदा मैया को भी ऐसी ही भूमिका मे मैने देखा है। वहाँ भी तट पर नये पौधे और पुराने वृक्ष दिख जाते है। इंटरनेट पर स्टरकुलिया यूरेंस खोजने पर बहुत कम वेबसाइट मिलती है। इस पर ज्यादा शोध नही हुये है। मेरे मन मे योजना बन रही है कि मै देश भर के कुल्लु वृक्षो की तस्वीरे एक स्थान पर लाने के उद्देश्य से एक वेबसाइट बनाऊँ। इस वेबसाइट मे इस वृक्ष से सम्बन्धित सभी जानकारियो को प्रस्तुत करुँ ताकि नयी पीढी माँ प्रकृति के इस अनुपम उपहार को बचाने के लिये सामने आ सके।

कुल्लु की तरह ही सलिहा के वृक्ष भी संकट मे है। रास्ते मे हम उस स्थान पर रुके जहाँ एक समय सलिहा का जंगल हुआ करता था। इसकी गोन्द के औषधीय उपयोग है। बडी व्यवसायिक माँग भी है। यही कारण है कि सलिहा का यह जंगल देखते ही देखते खत्म हो गया। अब इसके गिने-चुने वृक्ष बचे है। जब भी इस रास्ते से गुजरता हूँ तो उनसे हाल-चाल पूछ लेता हूँ। इस बार जब हम वहाँ पहुँचे तो बहुत से वृक्ष लहूलुहान थे। उनके चोटिल भागो से पतली गोन्द बह रही थी। गोन्द का मुख्य हिस्सा एकत्र करके लोग जा चुके थे। इस बेहरमी से चोट की गयी थी कि बहुत से वृक्षो का बचना मुश्किल दिख रहा था। यह तो मेरा सौभाग्य था कि पारम्परिक चिकित्सक मेरे साथ थे। उन्होने पहले जख्मो पर हाथ रखा और फिर पास से सेन्हा नामक वृक्ष की पत्तियाँ ले आये। उन्होने इसमे पास की गीली मिट्टी मिलायी और एक लेप तैयार किया। फिर यह लेप वृक्ष के जख्मो मे लगा दिया। उन्होने लहा कि एक सप्ताह तक यदि यह लेप ऐसे ही लगा रहा तो वृक्ष बच जायेंगे। हम तो वहाँ रुककर पहरेदारी नही करने वाले थे। गोन्द एकत्र करने वालो का क्या भरोसा? दिल्ली से एक फोन आया नही कि स्थानीय व्यापारी उन्हे जंगल से गोन्द एकत्र करने दौडा देंगे और जख्म के ऊपर कई और जख्म हो जायेंगे। मुझे बहुत से धराशायी वृक्ष भी दिखे। मैने इसे लकडी माफिया की करतूत माना पर पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि मानसून मे देरी के कारण जो रोज गर्म हवाओ के तूफान चल रहे उससे ही ये वृक्ष गिरे है। इनके गिरने के बाद आस-पास के गाँव वाले इन्हे उठाने मे जरा भी देरी नही करते है। पारम्परिक चिकित्सको ने समझाया कि इन गिरे हुये वृक्षो पर बहुत से सूक्ष्मजीव अपना पोषण करते है। माँ प्रकृति ने इन्हे ऐसे ही नही गिराया है। पर जब गाँव वाले इन्हे ले जाते है तो सारे किये कराये पर पानी फिर जाता है। जंगल मे जो कुछ भी होता है अपने आप, उसके पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है।

पास के कस्बे मे हमे व्यापारियो के पास बडी मात्रा मे कुल्लु और सलिहा की गोन्द होने का अनुमान था। कस्बे मे पहुँचने के बाद हमने गाडी दुकान के काफी पहले रोक दी। फिर एक पारम्परिक चिकित्सक को गोन्द के बारे मे पता करने भेजा। व्यापारियो ने कह दिया कि यह गोन्द अभी स्टाक मे नही है। फिर ड्रायवर को भेजा। उसने प्रभावी ढंग से बात की और बडी मात्रा मे खरीदने का प्रलोभन दिया तब कुछ व्यापारियो ने बताया कि बाहर के व्यापारियो के लिये इन गोन्द को एकत्र करवाया गया है। उन्होने कहा कि अभी तो हम इसे नही बेच सकते है पर आप सौदा करो तो तीन दिन के भीतर हम इतना ही माल दे सकते है। निश्चित ही व्यापारियो के हौसले बुलन्द थे।

हम वापस उसी रास्ते से लौटे। तब तक तांत्रिक का डेरा उठ चुका था। अभी तो कुल्लु वृक्ष पर से संकट टल गया था पर हमे इस बात का अहसास है कि हमे आजीवन गश्त पर आते रहना होगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-26

- **पंकज अवधिया**

इंसानी काम-पिपासा बुझाता पथर्री टेटका और मनोकामनाए पूरी करता चीटीखोर

"अरे, बचाओ, कोई तो बचाओ, गुफा मे छिपकली है। ये हमारी ओर ही आ रही है।" एक सँकरी गुफा मे कुछ पल पहले ही पेट के बल घुसे कुछ लडको ने मदद के लिये पुकारा था। हम कुछ करते उससे पहले ही वे एक-एक करके गुफा के द्वार से वापस आ गये। ये पर्यटक थे। गुफा के पास मै पारम्परिक चिकित्सको के साथ वनस्पतियो की तस्वीरे ले रहा था। हम साल मे कई बार इस गुफा के पास आते है पर ठन्ड मे ही इसके अन्दर जाते है। स्थानीय लोगो की मान्यता है पेट के बल इस तंग गुफा मे सरकने से पेट की बहुत सी बीमारियो मे लाभ मिलता है। इसके लिये लोगो को खाली पेट आने को कहा जाता है। फिर गुफा से निकलने के बाद पास के झरने से भरपेट पानी पीने को कहा जाता है। गुफा तक पैदल आना और जाना होता। अब पर्यटक तो पूरे नियम-कायदो को मानते नही है। वे ऐसे ही गुफा मे घुस जाते है। कई बार लोग फँस भी जाते है। यह अच्छी बात है कि अब तक किसी की मौत गुफा मे फँसने से नही हुयी है।

गर्मियो और बरसात मे इस गुफा के अन्दर जाना सही नही होता है। गुफा ठंडी होती है इसलिये गर्मियो मे बहुत से छोटे जीव इसमे शरण लिये होते है। बरसात मे भी बिलो मे पानी भर जाने के कारण बहुत से साँप यहाँ डेरा जमाये रहते है। इस साल गर्मी का मौसम लम्बा खिच गया है। पानी बरस ही नही रहा। इस कारण हमने गुफा मे प्रवेश नही किया। हमने पर्यटको को समझाया भी पर वे कहाँ मानने वाले थे।

गुफा के द्वार से घबराये हुये पर्यटक निकले तो पारम्परिक चिकित्सक गुफा के उस छोर तक पहुँचे जहाँ सुरंगनुमा द्वार मे गुफा खत्म होती थी। वे जानते थे कि पर्यटको के प्रवेश से परेशान होकर छोटे जीव उसी द्वार से बाहर निकलेंगे। ऐसा हुआ भी। पर जिन्हे छिपकली कहा जा रहा था वे दुर्लभ राक केमेलियान यानि चट्टानी गिरगिट निकले। इन्हे स्थानीय भाषा मे "पथर्री टेटका" कहा जाता है। पहले ये बडी संख्या मे जंगल मे दिख जाते थे पर अब इनके दर्शन दुर्लभ हो गये। कामशक्ति बढाने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। अब कामशक्ति बढती है कि नही, ये तो इसे इस्तमाल करने वाले जाने पर इसके कारण ये तेजी से गायब हो रहे है। पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि साधारण वनस्पतियो मे कामशक्ति को बढाने की जबरदस्त शक्ति होती है फिर क्यो शहरी लोग इस निरीह जीव के पीछे भागते है?

गुफा से बाहर निकलते ही ये जीव खुले मे आ गये। अब इनके आसमान मे मँडराते शिकारी पक्षियो की नजर मे आने का खतरा बढ गया था। पारम्परिक चिकित्सको ने जल्दी से कलमी नामक वृक्ष की पत्तियो को एकत्र करने को कहा। हमने इन पत्तो को जोडकर एक आवरण बनाया और फिर इसे उस चट्टान पर रख दिया जिसके पीछे इन्होने शरण ली थी। ये मनुष्यो को नुकसान नही पहुँचाते है। यह जानकर पर्यटको की जान मे जान आयी।

कुछ दिनो पहले ही स्थानीय अखबारो मे रायगढ के पास की एक खबर प्रकाशित हुयी थी। खबर के अनुसार गर्मियो मे किसी गुफा को देखने गये देशी-विदेशी पर्यटको पर मधुमख्खियो ने हमला कर दिया। इसमे पहले कि उन्हे शहर के अस्पताल की ओर रवाना किया जाता उनकी जान चली गयी। गर्मियो मे छोटी पड गयी जलधाराओ और ठन्डी गुफाओ मे जाने से बचना चाहिये। शायद मारे गये पर्यटको ने इस चेतावनी पर ध्यान न दिया हो। मुझे याद आता है कि मैनपुर के पास एक डोंगर है जहाँ से पैरी नदी निकलती है। गर्मियो मे वहाँ विशेष प्रकार की वनस्पतियाँ उगती है। पर जब भी हम गर्मियो मे वहाँ जाते है तो पारम्परिक चिकित्सक हमे साफ मना कर देते है। नमी होने के कारण

यहाँ बडी संख्या मे मधुमख्खियो का डेरा है। वे अपने क्षेत्र मे किसी तरह के दखल को बर्दाश्त नही करती है। इस क्षेत्र के कमार आदिवासी बडी मात्रा मे शहद का एकत्रण इस तरह के डोंगरो से करते है। वे पीढीयो से इस कार्य को कर रहे है। जब शहद एकत्रण का काम खत्म हो जाता है तभी पारम्परिक चिकित्सक डोंगर पर जाने देते है पर तब भी पूरी सावधानी बरती जाती है। जंगल के भले ही "जंगल राज" चलता हो पर इस "जंगल राज" के भी कुछ कठोर नियम होते है। इन नियमो का सम्मान किये बिना जंगल मे जाना बडी आफत मोल लेने जैसा है।

इस जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि गर्मी मे चीटीखोर जिसे पेंगोलीन भी कहा जाता है, गुफाओ मे अक्सर शरण लेते है। उन्होने इस बात का खुलासा किया कि तेन्दुए इस जीव से बहुत डरते है। वे इसे खाते नही है क्योकि खतरा दिखने पर शल्को से ढका यह जीव गेन्द की तरह गोल घूमकर अपने नाजुक अंगो को उसमे बन्द कर लेता है। पारम्परिक चिकित्सको ने दावा किया कि इस जीव की उपस्थिति वाले भाग मे तेन्दुआ नही होता है। यह एक महत्वपूर्ण जानकारी है। पेंगोलीन दीमको को चट कर जाता है। उसकी थूथन की बनावट ही ऐसी होती है कि वह दीमक की बाम्बी मे आसानी से घुस सके। जिस जंगल मे पेंगोलीन होते है वहाँ दीमक की आबादी पर अंकुश लगा रहता है। पेंगोलीन और तेन्दुए दोनो ही शर्मीले जीव माने जाते है। बेशरमी का सारा जिम्मा तो मनुष्यो ने ले रखा है। मैने अपने लेखो मे पहले लिखा है कि कैसे अन्ध-विश्वासी मनुष्य़ पेंगोलीन के माँस को खाता है और उनके शल्को को व्यापारियो के पास बेच देता है। शल्को से समस्त मनोकामना पूर्ण करने वाली अंगूठी बनायी जाती है। मुझे नही लगता कि किसी निरीह जीव को मारकर उसके अंगो से बनायी गयी अंगूठी किसी का भला कर सकती होगी?

पेंगोलीन से तेन्दुए डरते है, इस बारे मे दुनिया भर के वैज्ञानिक साहित्य कुछ नही बताते। मैने भी इससे पहले इसके बारे मे नही सुना है। पर मुझे पारम्परिक चिकित्सको की बातो पर विश्वास हो रहा है। Human-wildlife conflicts (HWC) के मामलो मे यह जानकारी बहुत काम आ सकती है। इसी उद्देश्य से मै इस लेखमाला मे इस बारे मे लिख रहा हूँ।

रास्ते मे एक छोटे व्यापारी से मुलाकात हुयी। मुझे बताया गया था कि पेंगोलीन जैसे जीवो के अंगो के व्यापार से उसने खूब कमाया है। बातो ही बातो मे मैने पेंगोलीन के शल्को से बनी अंगूठी के बारे मे चर्चा छेडी तो व्यापारी की आँखो मे चमक आ गयी। सिर पर हाथ रखकर कहा कि इस अंगूठी के लिये लोग मुँहमाँगे दाम देने को तैयार है

पर मैने अब यह काम छोड दिया है। व्यापारी की बात सुनकर मुझे लगा कि उसे सदबुद्धि आ गयी होगी। पर वापस लौटते वक्त पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि जंगल मे अब इक्के-दुक्के पेंगोलीन ही बचे है, बडी संख्या मे इन्हे मारा गया है। अब पेंगोलीन बचे ही नही है तो भला व्यापारी क्यो न सिर पर हाथ रखेगा? मेरी समझ मे असल बात आ गयी। मै पेंगोलीन के भविष्य़ के लिये चिंतित हूँ पर भारत मे जंगल के राजा की ओर ध्यान देने वाला कोई नही है तो पेंगोलीन जैसे छोटे जीवो पर कौन ध्यान देगा?
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-27

- **पंकज अवधिया**

कोआ के गिरती, आमा के फरती और दुबले अमित के स्वस्थ्य होने का राज

"कोआ के गिरती, आमा के फरती।" जंगल से गुजरते वक्त हमारी गाडी मे पुराने छत्तीसगढी गीत बज रहे थे। उन्ही मे से एक मे ये पंक्तियाँ थी। मै तो गाने को गाने की तरह सुन रहा था। ध्यान बाहर की ओर था कि कुछ नयी वनस्पतियाँ मिल जाये। "ये गाना गडबड है। इसे फिर से सुनाओ।"पिछली सीट पर बैठे पारम्परिक चिकित्सक की आवाज से मेरा ध्यान टूटा। "कोआ के गिरती, आमा के फरती। ये बिल्कुल गलत है।" पारम्परिक चिकित्सक ने अपनी बात दोहरायी। कोआ महुआ के फल को कहा जाता है। आमा यानि देशी आम। गाने की इस पंक्ति का अर्थ था कि जब महुआ के फल यानि कोआ गिरते है तब आम के फल लगते है। पारम्परिक चिकित्सक के अनुरोध पर हमने रिवाइंड करके इसे सुना। गाने की पंक्ति यही थी। पर वास्तव मे ऐसा नही होता है। इसे होना चाहिये था "आमा के गिरती, कोआ के फरती" यानि जब आम के फल गिरते है तब कोआ मे फल आते है। पारम्परिक चिकित्सक ने सही पकडा था। इस गीत के गीतकार राज्य के ख्यातिनाम गीतकार है। अभी तक शायद ही उन्हे किसी ने टोका हो। अपनी बात सही निकलने पर पारम्परिक चिकित्सक शेष गाने ध्यान से सुनते रहे और उन्होने बहुत से गानो मे तकनीकी गल्तियाँ पकडी।

रास्ते मे जंगल के अन्दर दीमक की बाम्बी की मिट्टी खोदता एक व्यक्ति दिखायी पडा। अच्छी सेहत वाला यह व्यक्ति हमे देखकर पास आ गया। मैने उसे पहचान लिया। वह अमित था। वही अमित जो कुछ ही हफ्तो पहले दुबला-पतला हुआ करता था। उसे दोस्त तांतू कहकर चिढाते थे। वह रायपुर का ही रहने वाला था। उसने इंजिनियरिंग पढाई की थी और अब वह किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहा है। इंटरनेट पर उसने मेरे लेख पढे और मुझसे मिलने चला आया। उसे ऐसी वनस्पतियाँ चाहिये थी जिससे उसका दुबलापन दूर हो जाये। मैने कहा कि जो जैसा है, वैसा ही अच्छा है। यहाँ मै उसके जैसे दुबला होना चाहता हूँ और वह है कि मेरे जैसा मोटा होना चाहता है। उसने जिद नही छोडी। वह बहुत से शहरी जिम मे गया। दूध-केला खाया। डाक्टरो से मिला पर बात नही बनी। किसी ने कहा कि शादी कर लो तो मोटे हो जाओगे। वह अभी तो प्रतियोगी परीक्षाओ की तैयारी मे था। इसलिये शादी के बारे मे तो सोच भी नही सकता था। और फिर इस बात की कोई गारंटी भी नही थी। एक बार जंगल यात्रा के दौरान मैने उसे साथ रख लिया। रास्ते मे जितने पारम्परिक चिकित्सक मिले सबके वह पीछे पड गया। अंततः एक पारम्परिक चिकित्सक ने मदद के लिये हामी भर दी। पर जब चिकित्सा की विधि के बारे मे उसे बताया गया तो उसके होश उड गये।

पारम्परिक चिकित्सक ने दो टूक कह दिया कि मेहनत करनी होगी, वो भी जमकर मेहनत। इस पर अमित ने बेसब्र होकर कहा कि मुझे दुबला नही होना है बल्कि मोटा होना है। यदि मै मेहनत करुंगा तो और दुबला हो जाऊँगा। इस पर पारम्परिक चिकित्सक ने खुलासा किया कि मेहनत के बाद पौष्टिक़ खाने से शरीर बनेगा। शरीर मे जो माँस बनेगा वह स्थायी तौर पर रहेगा। यह तुम्हे बीमार नही करेगा। अमित को इसके लिये डेढ महिने तक पारम्परिक चिकित्सक के साथ रहना था। फीस के रुप मे वहाँ आ रहे रोगियो के लिये जंगल से जडी-बूटियाँ एकत्र करनी थी। मुझे शक था कि अमित यह चुनौती शायद ही स्वीकार कर पायेगा। दिन मे देर से उठने वाले अमित की शाम कैफे काफी डे मे गुजरती थी। एसी के बिना नीन्द नही आती थी। वो क्या गाँव मे टिकेगा? पर दूसरे दिन ही वह अपनी बाइक मे सवार होकर पारम्परिक चिकित्सक के घर पहुँच गया।

शुरुआत मे पारम्परिक चिकित्सक अपने ही साथ उसे जंगल ले जाने लगे। पैदल चलने का चस्का लगा तो उसने बाइक को छोड दिया। आस-पास जाने के लिये साइकिल रख ली। दिन भर की व्यस्तता से उसकी भूख बहुत बढ गयी। उसे दो समय चावल मिलता था और कभी-कभी दाल व साग। जब वह वनस्पतियाँ लेने जाता तो रास्ते मे जंगली

फल मिल जाते थे। सुबह और शाम का नाश्ता जोर का होता था। बरकन्द, बिलाईकन्द, राम कन्द, रावण कन्द, बेन्दरा कन्द, जगमंडल कन्द, पातालकुम्हडा, गोल कन्द जाने कौन-कौन से कन्द उसे खाने को मिलते थे। ये कन्द बहुत ही स्वादिष्ट होते थे। वह बिना देरी इन्हे खा जाता था। मेरी जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सक अमित के बारे मे बताते रहे पर मुलाकात इस बार ही हुयी। उसकी सेहत अच्छी हो गयी थी।

अमित गर्मजोशी से मिला। उसने अब तक 36 प्रकार के कन्द खा लिये थे। उसे उनके नाम जबानी याद थे। पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि रावण की लंका मे आक्रमण से पहले भगवान राम की सेना ने इन्ही कन्द-मूलो से अपार शक्ति प्राप्त की थी। पारम्परिक चिकित्सको ने इनमे से बहुत से कन्द-मूलो के बारे मे जानकारी बन्दरो से प्राप्त की है। सम्भवत: बन्दरो ने भी इन पारम्परिक चिकित्सको से बहुत कुछ सीखा होगा। मै लम्बे समय से इन कन्द-मूलो के विषय मे जानकारी एकत्र कर रहा हूँ। मुझे तो सबसे पहले इनका सामरिक महत्व दिखता है। भविष्य ँऐ छत्तीसगढ के जंगलो मे होने वाले किसी सैनिक अभियान के लिये इन कंद-मूलो से सम्बन्धित जानकारी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसमे बहुत से कन्द आम लोगो की दिनचर्या मे शामिल किये जा सकते है जिससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ सके। एडस के बहुत से रोगी जब आखिर उम्मीद लेकर पारम्परिक चिकित्सको की शरण मे आते है तो इन्ही कन्दो का भोजन दिया जाता है। पर इन कन्दो के विषय मे आम लोगो को बताने से पहले कुछ सावधानी भरे कदम उठाने जरुरी है।

ये कन्द जंगल मे सीमित मात्रा मे है। इन कन्दो पर मनुष्य ही आश्रित नही है बल्कि भालू और जंगली सुअर जैसे वन्य जीव भी अपनी शक्ति के लिये इनका नियमित सेवन करते है। यदि इन कन्दो के विषय मे जानकारी शहरो तक पहुँच गयी तो इन्हे पाने के लिये मारामारी मच जायेगी और देखते ही देखते जंगल के जंगल साफ हो जायेंगे। इसलिये प्रचार से पहले इन कन्दो की जैविक खेती की विधियाँ विकसित करने की जरुरत है। यह सच है कि खेती से औषधीय वनस्पतियो के गुण प्रभावित होते है पर जंगल जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करके काफी हद तक औषधीय गुणो को बरकरार रखा जा सकता है। जैविक खेती से जंगलो पर दबाव कम होगा। जंगलो से एकत्र किये गये चन्द कंदो को नये कन्द के उत्पादन के लिये उपयोग किया जायेगा। लिखने और पढने मे यह सब आसान लगता है। पर जमीनी स्तर पर यह कठिन कार्य है। भारतीय जंगलो मे विलुप्त हो रही सफेद मूसली को बचाने के लिये इसकी खेती को प्रोत्साहित किया गया। पर सफेद मूसली का प्रचार प्रसार बढने से जंगलो पर दबाव और बढ गया। सफेद

मूसली की खेती पौध-सामग्री माफिया के चंगुल मे फँस गयी। अधिक उत्पादन के चक्कर मे जैविक खेती को ताक पर रख दिया गया। आज बडे पैमाने पर खेती तो हो रही है पर उच्च गुणवत्ता का उत्पाद नही मिल पा रहा है।

अमित से मिलकर दिल को सुकून मिला। यह केवल जडी-बूटियो का ही प्रभाव नही था बल्कि उसका त्याग भी था। आजकल के युवा आकर्षक डिब्बो मे बन्द उत्पादो पर अधिक विश्वास करते है। उनमे से बहुत कम ही अमित की तरह जंगल मे जाकर समय गुजारना पसन्द करते है। मुझे उम्मीद है कि डेढ महिने पूरे होने तक अमित स्वस्थ्य जीवन की कुंजी प्राप्त कर लेगा और आजीवन अपने परिवार व मित्रजनो मे इसे बाँटता रहेगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-28

- **पंकज अवधिया**

साँप-बिच्छू, उन्हे दूर रखने वाली वनस्पतियाँ और हमारे बुजुर्ग

रात को जब हम वापस लौट रहे थे तब दूर सडक मे कुछ रोशनी दिखायी दी। पास आये तो तीन साये नजर आये। फिर उनके हाथ मे चीनी टार्च दिखायी दी। ड्रायवर ने कहा कि रात को जंगल मे रुकना ठीक नही है। वे तीन थे जबकि गाडी मे हम चार थे। गाडी जब पास आयी तो वे सडक के बीचो-बीच आ गये। हमे गाडी धीमी करनी ही पडी। वे हमे नही रोक रहे थे बल्कि सडक मे कुछ तलाश रहे थे। हमने गाडी रोकी तो वे सब अपने जूतो से किसी जीव को कुचल रहे थे। हमारी गाडी की रोशनी पडी तो हमे मरा हुआ बिच्छू दिखायी दिया। काले रंग का बडा बिच्छू। जिन्होने इसे मारा था वे मौज-मस्ती के लिये जंगल आये हुये थे। पास मे उनकी बाइक खडी थी। रात के नौ बजे उन्हे टार्च की रोशनी मे यह निरीह प्राणी दिखा तो उन्होने मारने मे जरा भी देर नही की।

बिच्छू को देखकर साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक बोले कि यह कम जहरीला था। बिच्छू के बारे मे साफ और सरल नियम है। जितना बडा बिच्छू उतना कम जहर। "बताओ, कहाँ काटा है यह बिच्छू?" पारम्परिक चिकित्सक ने लडको से पूछा। लडके बोले

कि हमे काटा नही है। पर किसी आते-जाते को काट सकता था इसलिये हमने इसे मार दिया। इस पर पारम्परिक चिकित्सक बिफर पडे और क्रोधित होकर बोले कि रात भर टार्च जलाकर जंगल की जमीन को देखते रहो। हजारो जहरीले जीव मिलेंगे। मारते रहना सबको। अरे, इसने कुछ बिगाडा नही था तो इसे मारा क्यो? वह अपने रास्ते जा रहा था। वैसे ही जंगल मे चलती सडक पार करने का जोखिम उठा रहा था। तुम लोग जाओ अपने ठिकाने। क्यो यहाँ बिच्छू के ठिकानो पर आकर उत्पात मचा रहे हो? पारम्परिक चिकित्सक की डाँट का असर दिखा और वे तीनो अपनी बाइक की ओर बढ गये।

इसमे कोई दो राय नही कि जितना धैर्य हमारी बुजुर्ग पीढी मे दिखता है उतना हमारी और नयी पीढी मे नही। मुझे याद आता है कि कुछ वर्षो पहले एक बडा नाग हमारे खेतो मे डेरा जमाये हुये था। जब भी मै खेत जाता तो पिताजी उसके बारे मे बताते थे। कहते थे कि वह तो आवाज सुनकर दूर निकल जाता है। कभी भी फन काढकर अपना रुतबा नही जताता है। दूर शहरो से आये हमारे रिश्तेदारो को जब खेत मे इसके बारे मे बताया जाता था तो वे झट से खेत से दूर होकर गाडी मे बैठ जाते थे। पिताजी हंटर जूते पहनते है और बडे मजे से खेतो मे घूमते है। हमारे खेत मे काम करने वाले श्रमिको मे एक नयी पीढी का युवा आया। जब उसे पता चला कि यहाँ नाग है तो उसने सबसे पहले उसे ढूँढा और फिर उसका काम तमाम कर दिया। जब पिताजी को यह पता चला तो वे खूब नाराज हुए। उन्होने उसे उसी पल बाहर का रास्ता दिखा दिया। वह युवा बाहर जाकर कहता रहा कि मैने तो सबकी जान बचायी। उल्टे मुझे ही नौकरी से निकाल दिया। वह अबोध था। साँप की असली महत्ता किसान जानते है। इसलिये वे कभी भी साँपो को बाहर का रास्ता नही दिखाते है।

इस जंगल यात्रा के दौरान एक पहाडी मन्दिर मे सुस्ताते हुये गाँव के बुजुर्गो की बाते सुनने का अवसर मिला। एक बुजुर्ग बता रहे थे कि रात को खाना खाते वक्त एक गेहुँआ साँप उनके सामने आ गया। बुजुर्ग ने धार्मिक आस्था के चलते उसे प्रणाम किया और उसे अनदेखा कर दिया। झोपडी मे लाइट तो थी नही। उनकी पत्नी को पीठ पर कुछ ठंडा सा अहसास हुआ तो उन्होने पीठ को हिला दिया। वह अहसास जाता रहा। पत्नी ने साँप को अन्दर आते नही देखा था। उन्होने अपने पति को यह बताया। बुजुर्ग ने ध्यान नही दिया। नीचे गिरने के बाद साँप फिर पीठ पर चढ गया। इस बार पत्नी ने और जोर से झटका दिया। अबकी बार साँप सामने की ओर गिरा। बुजुर्ग ने देख लिया। इससे पहले कि वे कुछ करते वह बाहर चला गया। वे लोग खाना खाते रहे। वह साँप फिर घूमकर आ गया। इस बार पीठे पर चढते हुये बुजुर्ग ने देख लिया। साँप के सिर को पकडा और बाहर

खुले मे ले जाकर साँप को छोड दिया। कुछ मंत्र पढे और साँप को घुडकी देते हुये कहा कि अब आया तो छोडूंगा नही। फिर साँप नही आया। बुजुर्ग अपने साथियो को यह सब मजे से बता रहे थे। वे इस बात से अंजान थे कि हम यह सब सुन रहे थे। हमारी आँखे आश्चर्य से चौडी हो रही थी। पर उन सब के लिये यह रोजमर्रा के जीवन की बात लग रही थी। साँपो और दूसरे विषैले जीवो को उनकी पीढी ने बेवजह नही मारा इसलिये ये आज बडी संख्या मे हमारे आस-पास है और माँ प्रकृति द्वारा तय की गयी भूमिका निभा रहे है। हमारी पीढी वन्य प्राणियो पर बडी-बडी बाते तो कर लेती है पर इनके सामने पडने पर मारने मे जरा भी देर नही करती है। यह सब चलता रहा तो साँप जैसे जीव आने वाले कुछ वर्षो मे पूरी तरह समाप्त हो जायेंगे।

उन तीन लडको से मिलने के बाद हम आगे बढे तो ड्रायवर ने गाडी की गति धीमी कर दी। उसने बताया कि उसे सडक पर बहुत से छोटे जीव दिख रहे है। इस बार मानसून मे देरी के कारण उनमे अफरा-तफरी का माहौल है। अचानक ड्रायवर ने गाडी सडक के नीचे उतार ली। हम एक ओर झुक गये। उसने एक साँप को बचा लिया था पर सडक से नीचे उतरने के कारण पहिये के नीचे एक गिरगिट आ गया था। कुछ नही किया जा सकता था। हमने यह निश्चय किया कि अगली बार से रात होने से पहले ही लौट आया करेंगे ताकि हमारी गाडी से कम से कम नुकसान हो। आमतौर पर हम जंगल मे तब तक बढते रहते है जब तक कि अन्धेरा नही हो जाता। अन्धेरा होने के बाद वापसी की प्रक्रिया शुरु होती है। वापसी नान-स्टाप होती है।

पारम्परिक चिकित्सको के पास बहुत सी ऐसी जडी-बूटियाँ होती है जो साँपो और ऐसे ही विषैले जीवो को दूर रखती है। इन वनस्पतियो को पैर के निचले हिस्से मे बाँध लिया जाता है। हम अपने जूतो मे इसे रख लेते है। पर पारम्परिक चिकित्सक इनके प्रयोग के खिलाफ है। जंगल मे गन्ध महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ऐसे मे एक नयी गन्ध लेकर जंगल मे प्रवेश करना जंगल के लिये ठीक नही है। आप तो जानते ही है कि वे नंगे पाँव चलते है। उनके चलने से जमीन मे जो कम्पन होती है उससे साँप जैसे जीव अपने आप किनारा कर लेते है। फिर बेवजह जडी-बूटियो का प्रयोग किया ही क्यो जाये? पारम्परिक चिकित्सको का यह तर्क सही जान पडता है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-29

- **पंकज अवधिया**

अपनो को खोने वाले बच्चो के मन मे किस रुप मे बसते है भालू दादा?

मेरा बचपन ज्यादातर शहर मे बीता। बचपन मे भालू की जो छवि पराग, नन्दन जैसी बाल पत्रिकाओ ने बनायी वो भालू दादा या भालू मामा की थी। बाल कविताओ मे भालू इसी रुप मे मिलते थे। पुराने रिकार्डो के गीतो मे भी भालूओ को नाच दिखाकर मनोरंजन करने वाले जीव के रुप मे मन मे बसा लेता था। बचपन मे भालू सरकस मे साइकल चलाते हुये दिख जाता था। सरकस मे जब जानवरो की परेड होती थी तो भालू आकर्षण का केन्द्र होते थे। भालू को सरकस की मिनी ट्रेन मे बैठा देखकर मै कल्पना के अद्भुत संसार मे खो जाता था। भालू का यही रुप मेरे द्वारा रचित बाल कहानियो मे भी दिखा। कुछ बडा हुआ तो मदारी को भालू थामे देखा। वह बडी कुशलता से भालू को डुगडुगी बजाकर नचाया करता था। भालू को दादा और मामा की तरह आज भी पूरे देश मे बच्चो के सामने प्रस्तुत किया जाता है। पर सभी बच्चे इतने खुशकिस्मत नही होते कि वे भालू को दादा और मामा के रुप मे देख सके।

जंगल यात्रा के दौरान जटियाटोरा गाँव के एक शिक्षक़ से यूँ ही चर्चा चल रही थी। उन्होने बताया कि वन्य जीवो का मामा, चाचा या दादा जैसे सम्बोधनो से कविताओ और कहानियो के माध्यम से प्रस्तुतिकरण जंगल के पास रहने वाले ग्रामीण बच्चो पर अजीब सा प्रभाव डालता है। उन्होने मुझे एक बालक से मिलवाया जिसके परिजनो को उसकी आँखो के सामने भालू ने घायल कर दिया था। बाद मे अस्पताल ले जाते हुये उनकी मौत हो गयी थी। निश्चित ही जब वह बालक पुस्तको मे भालू के मसखरे रुप को पढता होगा तो अजीब तरह के मानसिक द्वन्द मे फँस जाता होगा। मैने उस बालक से इस बारे मे बात करने की कोशिश की पर उसकी उलझन देखकर मै शांत हो गया। शिक्षक ने बताया कि बहुत से ऐसे छात्र कक्षा मे भालू के सन्दर्भ मे ऐसी बाते होने पर चुप से हो जाते है। वे या तो शून्य को निहारने लगते है या लघु शंका के लिये चले जाते है। बहुत से ऐसे भी बच्चे होते है जिनमे मन मे भालूओ को दो छवियाँ बन जाती है। एक तो वह भलुआ जो कि दिन मे कभी भी गाँव मे घुसकर दहशत फैला देता है और दूसरी वह छवि जो पुस्तको और गीतो से बनती है।

मेरे नाना जी जबलपुर के नामी गिरामी वकील थे। उनके पास एक मुवक्किल आया करता था। उसकी एक आँख ही सलामत थी। पूरे शरीर मे जख्म के निशान थे। मेरी माँ उस समय छठवी-सातवी कक्षा मे रही होंगी। उन्हे धुन्धली याद है कि उस व्यक्ति का नाम अर्जुन था। वह एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहा था तभी भालू ने उसपर हमला कर दिया। उसने लम्बे संघर्ष के बाद भालू को मार डाला पर तब तक वह बुरी तरह से लहूलुहान हो चुका था। आज भी उस व्यक्ति के बारे मे बताते समय माँ के चेहरे मे दहशत के भाव आ जाते है। कई दशको बाद आज भी जब मै अपनी जंगल यात्रा के दौरान भालुओ से हुयी मुलाकातो के बारे मे उन्हे बताता हूँ तो उन्हे पुरानी बाते याद आ जाती है। वे मेरी इन मुलाकातो से खुश नही दिखती है। मुझे माँ के अन्दर जटियाटोरा का वही बालक नजर आता है जिसने भालू के हमले मे अपने परिजन को खोया है।

एक प्रसिद्ध अभ्यारण्य के पास एक बालक जब सुबह तालाब गया तो लकडबघ्घे ने उस पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण बडा ही जबरदस्त था। वह बालक को घसीटते हुये तालाब के बीच मे ले गया। घायल बालक ने जीवटता दिखायी और उसकी पकड से आजाद होकर तैरकर दूसरे किनारे पर आ गया। हो-हल्ला सुनकर गाँव वाले आ गये और बालक को अस्पताल ले जाया गया। तन के जख्म तो भर गये पर मन के जख्म कहाँ भरते है? जब मै उस बालक से मिला तो इस घटना को चार साल हो चुके थे। उसके पिता ने मुझे एक रंगीन चित्रो से भरी पुस्तक दिखायी जिसमे वन्य जीवो को मनुष्यो की वेशभूषा मे बडे ही रोचक ढंग से दिखाया गया था। बालक को यह पुस्तक बेहद पसन्द थी पर जब भी लकडबघ्घा वाला पन्ना आता उसके चेहरे के भाव बदल जाते थे। उसने पेन से उस चित्र को गोद डाला था पर फिर भी ऐसा लगता था कि उसे लकडबघ्घे की छवि दिखती थी उसमे। यह दिल दहलाने वाला अनुभव था।

भारत गाँवो मे बसता है और जंगलो के लगातार कटने से मनुष्यो व वन्य जीवो के बीच संघर्ष तेज हो गया है। इसका सीधा प्रभाव बच्चो पर पड रहा है। यह प्रभाव इतना गहरा होता है कि बच्चे ताउम्र इसे भुला नही पाते है। मै मन के इन जख्मो को बचपन मे ही भर देना चाहता हूँ। इसलिये मैने इस अनछुए पहलू पर यह लेख लिखा है। मुझे लगता है कि देश के बाल लेखको को एक मंच पर आकर इस पर गहनता से विचार करना चाहिये और ऐसे बाल साहित्य की रचना करनी चाहिये जो ऐसे दुखी मन को राहत पहुँचा सके। यह एक कठिन कार्य है पर इसे चुनौती के रुप मे लेकर हम निश्चित ही इस लक्ष्य को पा सकते है, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे बच्चो से रोज मिलने वाले गुरुजन सुझाव देते है कि पाठ्य पुस्तको मे मनुष्यो और वन्य जीवो के बीच इस बढते संघर्ष के विषय ने सरल

शब्दो मे बताना चाहिये। यह भी बताना चाहिये कि ये वन्य जीव जंगल से गाँवो की ओर क्यो आ रहे है और वे कौन से उपाय है जिनकी सहायता से इस संघर्ष को टाला जा सकता है। वे दोहराते है कि यह सब बिल्कुल सरल भाषा मे होना चाहिये तभी बच्चे इसमे रुचि लेंगे। ये बच्चे जब बडे होकर देश की बागडोर सम्भालेंगे तो उनके प्रयास और निर्णय़ इस संघर्ष को टालने मे मील का पत्थर साबित होंगे। वन्य जीवो से नफरत करने वाले बहुत से बच्चे आज बडे होकर देश की योजना बना रहे है। जो हुआ सो हुआ पर अब और देर नही करनी चाहिये। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-30

- **पंकज अवधिया**

तेन्दुए, जंगली सुअर, भालू, लकडबघ्घे सभी मिलेंगे आपको राजधानी की सडको पर

गाँव के चरवाहे को हल्की सी झपकी आ गयी। वह गाँव से दूर मवेशियो को चरा रहा था। जब उसकी नीन्द खुली तो उसने मवेशियो के समूह के बीच कुछ काले-काले जीव देखे। उसने जोर से आवाज लगायी और उस ओर लाठी लहरायी तो वे काले जीव वहाँ से भागे। चरवाहे ने इन्हे बरहा अर्थात जंगली सूअर के रुप मे पहचाना। वह उल्टे पाँव वापस आ गया। यह घटना छतीसगढ की राजधानी रायपुर से मात्र बीस-पच्चीस किलोमीटरकी दूरी की है। इस क्षेत्र मे धान के खेत है पर खेतो की मेड पर बबूल और अर्जुन के वृक्ष। जंगल का नामो-निशान नही है। क्षेत्र मे खारुन नदी बहती है जो मानसून न आने के कारण नाली की तरह पतली हो गयी है। बडी-छोटी सभी गाडियो की दिन-रात आवाजाही वाले ऐसे क्षेत्र मे बरहा कल से आ गये है। ये एक नही, दो नही बल्कि तीन झुंडो मे है और एक झुंड मे 15 से 17 बरहा है।

मानसून की बाट जोहते किसानो ने धान की नर्सरी तैयार की है। छोटे-छोटे पौधे अंकुरित हो रहे है। बरहा के दल इन्ही नये पौधो को खोदकर खा रहे है। इतना ही नही वे खेतो मे लोट रहे है जिससे पूरी नर्सरी चौपट हो रही है। इस क्षेत्र के ज्यादातर किसानो ने बरहा को अपने जीवन मे पहली बार देखा है। उनसे कैसे निपटना है-वे नही जानते है। बरहा के खेतो मे आने और नर्सरी को बरबाद करने की खबर क्षेत्र मे जंगल की आग की तरह

फैली। एक युवा किसान ने अपने खेत के चारो ओर बिजली के तार लगा लिये। उनमे करंट दौडने लगा। जब बरहा के दल खेत मे आये तो उन्हे झटका लेगा। बडे बरहा तो बच गये पर एक नवजात बरहा की मौत हो गयी। पूरा दल वहाँ से लौट गया। बरहा को मरा देखकर वहाँ से गुजर रहे कुछ मनचलो ने उसे उठाया और बिना देरी के पकाकर खा गये। पर यह खबर दबी नही रह सकी। करंट लगाने वाले से लेकर बरहा को खाने वाले तक सभी कानूनी मामले मे फँस गये।

उधर बरहा का दल भी इस घटना से क्रोधित था। अल सुबह जब तुलसी नामक गाँव के दो बच्चे शौच के लिये खेत की ओर निकले तो दल ने उन पर आक्रमण कर दिया। दोनो बच्चे बुरी तरह से घायल हो गये। एक को तो शहरी अस्पताल ले जाना पडा। दोनो घायलो के पैरो का माँस बाहर आ गया था इस हमले से। पूरे क्षेत्र मे सनसनी फैल गयी। बरहा के दल के क्षेत्र के आने के चौबीस घंटो के भीतर इतना सब हो गया। सारी बात बिगड गयी। मुझे आज शाम को इस बारे मे पता चला। मैने तुरंत ही गाडी से गाँवो की ओर निकलने का मन बनाया पर तेज बारिश के कारण यात्रा कल तक टल गयी।

गाँव वाले इस बात को अभी न समझे पर बरहा का इतनी बडी संख्या मे आना एक स्थायी संकट के आगमन की सूचना है। छत्तीसगढ मे आम लोगो के खेत घेरो से बन्द नही होते है। एक से दूसरे खेत जाया जा सकता है। यहाँ दशको से जंगली जानवर नही रहे इसलिये कभी इस ओर ध्यान नही दिया गया। ऐसे मे अचानक बरहा के आ जाने से एक गम्भीर समस्या खडी हो सकती है। यदि ये कम संख्या मे आते तो एक बार मानव आबादी से दूर रखा जा सकता था पर ये बडे दलो मे आये और आते ही लोग उनसे उलझ पडे। ऐसे व्यवहार की अपेक्षा बरहा को भी नही होगी। उन्होने पहले अपने बच्चे को खोया और फिर लोगो को माँस खाते देखा। वे अपने को निश्चित ही असुरक्षित समझ रहे होंगे। तभी तो इस घटना से सम्बन्ध न होने के कारण भी दो इंसानी बच्चे उनके शिकार हो गये। आगे भी बेकसूर लोगो के इस तरह घायल होने की सम्भावना से इंकार नही किया जा सकता है।

क्षेत्र के लोग रात को घरो से बाहर नही निकल रहे है। शौच के लिये भी नही। कुछ लोग लाठी को सहारा मान बैठे है पर लाठी के सहारे रात के घने अन्धेरे मे बरहा के दलो से लडना सम्भव नही है। उनका पक्ष भारी रहेगा और मनुष्यो को भारी हानि उठानी पडेगी। इस क्षेत्र मे धान के अलावा सब्जियो की फसले भी होती है। बरहा के पास पानी है, रहने के लिये नदी के किनारे के खोल और खाने के लिये नाना प्रकार की फसले, अब वे यहाँ से नही जाने वाले। ये दिन दूनी रात चौगुनी की गति से बढते है। कुछ साल पहले इस

क्षेत्र मे बन्दरो के दल आये। अब वे यहाँ के स्थायी निवासी हो गये है। किसानो की फसले बरबाद हो रही है और घर के छप्पर भी। अभी बन्दरो ने मनुष्यो पर आक्रमण शुरु नही किया है।

बरहा प्रभावित क्षेत्र मे फसल के दौरान किसानो की रात खेतो मे कटती है। लकडी का मचान बनाकर खेतो मे सोना होता है और बरहा के आते ही आग जलाकर शोर मचाना होता है। जिन लोगो ने तारो की बाड लगायी है उन्हे निचली वाली कतार से नीचे एक और कतार लगानी पडती है। ताकि उसके नीचे से बरहा नही निकल सके। पर यह स्थायी उपाय नही है। बहुत से भागो मे किसानो बाड के नीचे लकडी के नुकीले कील गडा देते है। इससे भी बरहा को अन्दर घुसने मे तकलीफ होती है। सबसे प्रभावी उपाय है काँटे वाली स्थानीय वनस्पतियो से खेत की घेराबन्दी। मै प्रभावितो को यही सलाह देता हूँ कि ऐसी वनस्पतियाँ लगाये जिससे बाड के लाभ के अलावा उपयोगी बीज और दूसरे भाग मिलते रहे ताकि अतिरिक्त आमदनी होती रहे। इस क्षेत्र मे गटारन के पौधे लगाये जा सकते है। इसके बीजो की स्थानीय औषधि बाजार मे नियमित माँग है। केतकी भी अच्छा विकल्प है। पूरा गाँव इसे लगा रहा है तो फिर इसके रेशो से रस्सी बनाने का उद्योग विकसित किया जा सकता है। बहुत से भागो मे थूहर की बाड भी लगती है। थूहर के सभी भाग उपयोगी है। गाँवो मे मवेशियो के ज्यादातर रोग थूहर के सरल प्रयोग से दूर हो जाते है। इन वनस्पतियो को एक बार लगाने और कुछ समय तक देखभाल करने की जरुरत है फिर ताउम्र ये अपने आप फैलती रहती है। शुरुआत के कुछ समय वनस्पतियो के जमने तक किसानो को मचान के सहारे बरहा से फसल की रक्षा करनी होगी।

यह उचित समय है जब Human-wildlife conflicts (HWC) के क्षेत्र मे काम कर रही स्वयमसेवी संस्थाए बिना देर के इस क्षेत्र मे आये और अपने अनुभव से बरहा के विषय मे सही समझ आम लोगो मे विकसित करे। ऐसा होना चाहिये पर मुझे इसकी उम्मीद कम ही लगती है। ज्यादातर ऐसी संस्थाए सम्मेलनो और चर्चाओ के आयोजन मे अधिक रुचि लेती है। यदि जमीन मे उतरना ही पडे तो वे टाइगर प्रोजेक्ट की ओर भागती है क्योकि उसमे नाम भी है, पैसा भी। ऐसे मे जंगली सूअरो यानि बरहा पर कौन ध्यान देगा?

राजधानी के इतने पास बरहा का नया आतंक मचा है पर मीडिया अभी जागा नही है। राजधानी क्षेत्र मे तेन्दुआ, लकडबग्घा जैसे वन्य जीव अक्सर देखे जाने लगे है। जंगल किस तेजी से खत्म हो रहे है, वन्य जीवो के बडी संख्या मे आगमन से यह साफ दिख रहा है। इस क्षेत्र के किसानो और आम लोगो के लिये आने वाले दिन बडी मुसीबत भरे

हो सकते है, यदि समय पर हालात पर काबू करने के प्रयास नही किये गये। कल मै इस क्षेत्र मे जाने का प्रयास करुंगा और फिर आपको इस नयी समस्या के सभी पहलुओ पर विस्तार से जानकारी देने का प्रयास करुंगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-31

- **पंकज अवधिया**

इमली मे काली साडी वाली चुडैल, जिद्दी बैगा और जनविश्वास

"रात के दो-सवा दो बजे थे। जगदलपुर से निकलते समय ही मुझे देर हो गयी थी। सडक पर कम गाडियाँ थी। काँकेर के पास ढाबे मे रुककर चाय पी और मुँह मे पानी के छींटे मारकर मै फिर गाडी चलाने लगा। काँकेर शहर पार करते ही कुछ दूरी पर मुझे एक साया हाथ दिखाते हुये दिखा। रात मे तो गाडी रोकने का तो सवाल ही नही है। मै चलता रहा। जब गाडी की लाइट उस साये पर पडी तो वह काली साडी पहने कोई महिला नही थी। अचानक मेरा पैर अपने आप ब्रेक पर चला गया और गाडी रुक गयी। मैने गाडी मोडी और वापस भागा। पीछे मुडकर देखने की हिम्मत नही हुयी। ढाबे पर मैने यह घटना बतायी तो लोग बोल पडे कि अच्छा किया लौट आये, वहाँ एक इमली का पुराना वृक्ष है। उसी मे चुडैल का निवास है। सुबह तक मै जागता रहा। फिर मंत्रो का जाप करते हुये दूसरी गाडियो के पीछे मैने अपनी गाडी निकाली। अब कोई कितने पैसे दे मै उस रास्ते से जाता ही नही हूँ।" मेरे ड्रायवर का एक मित्र हमे यह रोमांचक किस्सा सुना रहा था। आज मुझे काँकेर की यात्रा करनी थी इसलिये सुबह-सुबह ही इस व्यक्ति को मेरे सामने प्रस्तुत कर दिया गया किस्से के साथ।

काँकेर से मै अनगिनत बार गुजरा हूँ। साथ ही उस क्षेत्र मे वानस्पतिक सर्वेक्षण करता ही रहता हूँ पर ऐसी कोई बात मैने नही सुनी थी। मैने अपने डेटाबेस से उस व्यक्ति को काँकेर क्षेत्र मे ली गयी इमली के वृक्ष की हजारो तस्वीरे दिखायी पर उसने दो टूक कह दिया कि यह जंगल के अन्दर की इमली नही है। मुख्यमार्ग मे यह इमली का वृक्ष है। मैने उस व्यक्ति को साथ रख लिया। हम काँकेर की ओर निकल पडे। रायपुर से 140 किमी की दूरी थी। रास्ते से एक बैगा को लेना था। जब हमने इस बैगा को गाडी मे

बिठाया तो उससे इमली और चुडैल की चर्चा की। उसने हमे और डराने की बजाय इसे कपोल-कल्पित घटना बताया और बोला कि कहाँ आज के जमाने मे चुडैल की बात करते हो? सफेद साडी वाली चुडैल सुनी थी। काली साडी वाली चुडैल पहली बार सुन रहा हूँ। चलो, मुझे दिखाओ कहाँ पर है? मै रात भर उस वृक्ष के नीचे गुजारने को तैयार हूँ। बैगा की बात सुनकर मैने पक्ष और विपक्ष दोनो को भिडाने का मन बना लिया। उनसे कहा कि बडी शर्त लगाओ ताकि दोपहर के खाने का इंतजाम हो जाये। उस व्यक्ति का कहना था कि रात भर क्या एक पल भी उस वृक्ष के नीचे कोई खडा नही हो सकता। जबकि बैगा अपनी जिद पर अडा हुआ था।

काफी देर की यात्रा के बाद हमे एक मोड पर पहुँचे। उस व्यक्ति ने गाडी रुकवा दी। दूर मोड पर एक इमली का वृक्ष था। उस ओर इशारा करते हुये उसने कहा कि बस, मै तो यही रुकूंगा। आपको जाना हो तो जाये। हम उतर गये और पैदल ही उस ओर चल पडे। वृक्ष के समीप मुझे कुछ भी अजीब सा नही लगा। सुबह बारिश हुयी थी। वृक्ष के चारो ओर नमी थी। वृक्ष मे हरी-हरी नयी पत्तियाँ लगी थी। वृक्ष बहुत पुराना नही लगता था। लगता था कि उसकी कटाई-छटाई की गयी है। साथ आये बैगा ने भी वृक्ष का निरक्षण किया। वहाँ बहुत सी जल चुकी अगरबत्तियाँ थी और पूजा के निशान थे। बैगा ने उस व्यक्ति को आवाज दी और फिर शर्त के मुताबिक वही धूनी जमाकर बैठ गया। मैने उस वृक्ष की ढेरो तस्वीरे ली और फिर ड्रायवर को लेकर आस-पास के लोगो से मिलने चला गया।

लोगो ने बताया कि सडक विभाग ने मोड पर हो रहे एक्सीडेंटो को ध्यान मे रखते हुये मोड पर खडे इस वृक्ष को कटवाने की बहुत कोशिश की पर यह सम्भव नही हो पाया। जिस किसी ने इसे काटने की हिम्मत की उसकी जान चली गयी। स्थानीय लोगो ने आगे बताया कि सडक मे बाधा बनने वाले सारे वृक्ष काट दिये गये पर यह वैसा का वैसा रहा। ध्यान से सडक मार्ग को देखने से सचमुच यही एक वृक्ष बाधा के रुप मे दिखता था। स्थानीय लोग इसकी पूजा करते है। चुडैल की बात पर सभी एक मत नही दिखे। ज्यादातर ने कहा कि रात को इस मार्ग से गुजरने वाले को परेशान नही किया जाता है। “क्या इस वृक्ष मे फल लगते है?” मैने पूछा तो सब ने कहा “हाँ”। कौन इन फलो को एकत्र करता है? उनका जवाब था कि कोई भी एकत्र कर सकता है। इसका मतलब यह था कि इमली एकत्र करते समय किसी को डर नही लगता था। वे बेधडक वृक्ष के पास चले जाते थे। स्थानीय लोगो से दूसरे विषयो पर भी बातचीत हुयी। मानसून मे हो रही देरी का मुद्दा हावी रहा।

आस-पास की तस्वीरे लेने के बाद जब हम लौटे तो बैगा वृक्ष के नीचे जमा हुआ था। उस व्यक्ति ने हार मान ली थी पर उसने यह नही माना था कि यहाँ चुडैल जैसी कोई चीज नही है बल्कि उसने बैगा को शक्तिशाली मान लिया था। बैगा ने शर्त जीत ली थी। उसने इमली की छाल एकत्र की और अपने पास रख ली। हम आगे चल पडे। ढाबे पर हमने भरपेट खाना खाया।

आगे के रास्ते मे मै इमली के बारे मे सोचता रहा। मुझे यह साफ अन्ध-विश्वास लगा पर यह भी मन मे आया कि इसे जारी रहने देना भी ठीक ही है। इसने इस वृक्ष को बचा के रखा है। विकास के नाम पर असंख्य नये-पुराने वृक्ष काट दिये गये। उनके साथ किसी चुडैल की बाते नही जुडी हुयी थी। आज यात्रा मे निकलते समय मैने राजधानी के प्रसिद्ध शीतला मन्दिर के ऊपर के पीपल को छँटते देखा था। इस वृक्ष ने इस देव स्थान को अपने साये मे पीढीयो तक रखा पर आज उसे बिना बताये उस पर आरियाँ चलायी जा रही थी। आम लोग देख रहे थे पर कोई भी उसकी जान बचाने सामने नही आ रहा था। दूसरी ओर इमली का वह वृक्ष है जिसके बारे मे डरावनी बाते ही इतनी फैल चुकी है कि आम लोग न भी आये तो कोई उसका बाल भी बाँका नही कर सकता है।

रास्ते के दोनो ओर खडे वृक्षो की तस्वीरे लेने का मन आजकल नही करता है क्योकि मुझे इस बात का अहसास है कि ये वृक्ष विकास की बलिवेदी कभी भी चढ सकते है। पता नही क्यो इमली के उस वृक्ष की तस्वीर लेते समय यह बात मेरे मन मे क्यो नही आयी। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-32

- **पंकज अवधिया**

सब मर्जो की दवा चेपटी कन्द और उसके जानकार से मुलाकात

जंगल मे बडी मात्रा मे कन्द-मूलो को एकत्र कर रहे कुछ लोगो को देखकर मैने गाडी रुकवायी। पास गया तो पता चला कि सभी चेपटी कन्द की तलाश मे थे। मैने सोचा कि किसी व्यापारी के कहने पर इतनी बडी मात्रा मे चेपटी कन्द एकत्र किये जा रहे होंगे पर

लोगो ने बताया कि पास के गाँव के एक पारम्परिक चिकित्सक के लिये इन्हे एकत्र किया जा रहा था। जिस गाँव का नाम उन्होने लिया वहाँ मै पहले गया तो था पर इस पारम्परिक चिकित्सक के बारे मे नही सुना था। मैने पता पूछकर उस ओर कूच किया। मै गाडी ठीक से खडा कर ही रहा था कि साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने गाँव के पारम्परिक चिकित्सक के घर मे प्रवेश किया फिर स्थानीय भाषा मे अपना परिचय देकर उनसे मित्रता कर ली। गाँव के पारम्परिक चिकित्सक जिनका नाम दशरथ था स्नान और ध्यान कर रहे थे। उनकी पत्नी से हमारे पारम्परिक चिकित्सक ने परिचय प्राप्त किया और फिर उन्हे "दाई" अर्थात "माँ" से सम्बोधित किया। दशरथ की पत्नी प्रसन्न हो गयी और हमारा स्वागत किया।

हम दशरथ के घर का मुआयना करने लगे। सरई यानि साल की लकडी से घर का पटाव बना हुआ था। झोपडी मे बाहर की ओर गेरु लगा हुआ था। प्रवेश द्वार के चारो ओर लकडी की ग्रामीण नक्काशी युक्त बीजा की लकडी थी। छानी मे सूपे ही सूपे थे और इन सूपो मे चेपटी कान्दा सूख रहा था। कुछ सूपो मे कोआ यानि महुआ का फल सूख रहा था। ग्रामीण इसके तेल का प्रयोग रोजमर्रा के जीवन मे करते है। इसके औषधीय उपयोग भी है। दशरथ के घर मे एक पिन्जरे मे कुछ पक्षी भी थे। उन्हे दीमक का नाश्ता कराया जा रहा था। ये तीतुर या तीतर थे जो कि बहुत शोर मचाते है। इनके शोर से ग्रामीण लाभ उठाते है। इनके शोर को सुनकर दूसरे तीतर आँगन मे आ जाते है। ग्रामीण आने वाले पक्षियो को पकडकर खा जाते है। पिंजरे वाले पक्षी वैसे ही बन्द रहते है। दूसरे दिन फिर वे आवाज निकालते है तो फिर दूसरे तीतर आ जाते है। इस तरह पीढीयो से हर दिन तीतर जाल मे फँसने के लिये अभिशप्त है। ग्रामीणो को बैठे-बिठाये भोजन मिलता रहता है। मैने पिंजरे मे बन्द तीतर के चित्र लिये। आँगन मे तुलसी का पौधा भी था। देसी गुलाब फूलो से लदा हुआ था। पास मे एक खाट पडी थी और सागौन की मजबूत लकडी से बना एक तख्त भी आगंतुको का भार सहने बेसब्र था। दाई ने मुझे बैठने के लिये कहा पर मै तो आस-पास फैली चीजो पर ध्यान केन्द्रित किये हुये था। इस बीच दशरथ आ गये और हम शहरियो को देखकर आश्चर्य मे डूबने लगे।

दशरथ ने बताया कि न केवल छत्तीसगढ के बडे नगरो से बल्कि दिल्ली, कोलकाता से भी उनके पास रोगी आते है। उन्हे कार मे बिठाकर शहर ले जाते है। कोई गठिया की दवा माँगता है तो कोई ह्रदय रोगो की। ज्यादातर शहरी लोग बडी रकम देकर औषधि मिश्रण के बारे मे पूछते है। पर दूसरे पारम्परिक चिकित्सको की तरह दशरथ भी किसी को अपना पारम्परिक ज्ञान नही बताते है। उन्हे डर है कि कही इसका व्यवसायिक दुरुपयोग

न हो जाये। वे बडी मात्रा मे चेपटी कन्द एकत्र करवाते है। यह बात सभी लोग जानते है। शहरी रोगी यह सब देख-सुनकर अपनी बुद्धि के अनुसार आस-पास के जंगलो से बडी मात्रा मे कन्द ले जाते है और मानने लगते है कि इसे खाने से रोग ठीक हो जायेगा। पर ऐसा नही होता है। दशरथ ने हमे कुछ सूखे हुये चेपटी कन्द खाने को दिये और कहा कि इसे आधार बनाकर मै साढे चार सौ से अधिक औषधीय मिश्रण बनाता हूँ। इनसे से ही रोगो की चिकित्सा की जाती है। ज्यादातर वनस्पतियाँ वे पास के जंगलो से एकत्र करते है जबकि कुछ के लिये वे साल मे कई बार दूर जंगलो की यात्रा करते है। वे अफसोस जताते हुये कहते है कि उनके दादा के पास चेपटी कन्द मे हजारो नुस्खे थे पर उन्होने जाते-जाते ये किसी को नही बताये। उनका ज्ञान उनके साथ ही समाप्त हो गया।

आमतौर पर कहा जाता है कि चिकित्सक को अपनी दवा नही लगती। दशरथ खाट मे बैठे थे और मै जमीन पर। मुझे ऐसा लगा जैसे उनके दाहिने हाथ मे कुछ तकलीफ है। मेरा अनुमान सही था। उन्हे लकवा हो चुका था। उन्होने अपनी औषधीयाँ अपनायी पर नतीजा सिफर ही रहा। मैने उनसे नेगुर और दूसरी वनस्पतियो के बारे मे पूछा। उन्होने बताया कि पास के डोंगर मे यह मिल जायेगा। मैने साथ चल रहे एक पारम्परिक चिकित्सक के साथ एक स्थानीय व्यक्ति को बिना देर इन वनस्पतियो के एकत्रण के लिये भेज दिया। दशरथ को खटिया मे लिटाकर नीचे खौलता पानी रखा और फिर जंगल से लायी जडी-बूटियो को डाल दिया। भाप निकलने लगी। भाप को प्रभावित अंगो की ओर भेजा तो दशरथ की आह निकल गयी। उन्हे शरीर मे दर्द भी था। उसमे इस भाप से कुछ राहत मिली। "आह" की ध्वनि इसलिये आयी थी। आधे घंटे बाद यह उपचार पूरा हुआ। मैने उनसे कहा कि आप प्रतिदिन यह करे तो आपको इस समस्या से छुटकारा मिल जायेगा। दशरथ चकित थे क्योकि उन्होने "माँगने" वाले शहरी बहुत देखे थे पर मोटर मे चढकर "देने" आये शहरी को शायद पहली बार देख रहे थे। मैने उनसे कहा कि चेपटी कन्द के नुस्खो को आप किसी को न बताये, मुझे भी नही। बस इन्हे सम्भालकर नयी पीढी को देकर जाये ताकि आपके दादा जी की तरह यह दुर्लभ ज्ञान समाप्त न हो जाये। मैने अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो से दूसरे पारम्परिक चिकित्सको से चेपटी कन्द के सैकडो नुस्खो पर जानकारियाँ एकत्र की है। अगली यात्रा के दौरान यदि दशरथ चाहेंगे तो मै ये नुस्खे उन्हे बतौर उपहार दे दूंगा।

मेरा ड्रायवर इस बीच गाडी मे रखा प्रसाद ले आया। राजिम का यह प्रसाद अभनपुर के स्वादिष्ट पेडे के रुप मे था। दाई ने इसे प्राप्त किया। चलते-चलते मैने उन लोगो को एक सरल उपाय बताया जो चेपटी कन्द एकत्र करने जाते थे। उनसे कहा कि एक साथ से

जब कन्द एकत्र करे तो उसका चौथाई हिस्सा जमीन मे ही रहने दे। इससे ये कन्द बढकर अगले साल काम आयेंगे। साथ ही इन कन्दो पर आश्रित रहने वाले वन्य जीवो को भटकने की जरुरत नही पडेगी। एक दिशा से कन्द एकत्र करने के बाद कुछ समय के लिये दूसरी दिशा से कन्द एकत्र किये गये। आप चाहे तो ऐसा एक साल के लिये भी कर सकते है। यानि पहले साल उत्तर से कन्द एकत्र किये तो दूसरे साल पूर्व से और फिर तीसरे साल दक्षिण से, चौथे साल फिर उत्तर से। इस चक्रिय एकत्रण से शेष तीन दिशाओ के कन्दो को बढने का अवसर प्राप्त हो जायेगा। इससे जंगल मे संतुलन बना रहेगा। मेरी बात सुनकर दशरथ बोले कि दादा के समय ऐसा होता था। अब हम फिर से इसे अपनाने की कोशिश करेंगे।

दशरथ से विदा ले लेकर चेपटी कन्द खाते हुये हमने विदा ली। मुझे लगा कि मेरी आज की जंगल यात्रा सार्थक रही। पर अभी तो बहुत कुछ आगे होना शेष था---- **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-33

- **पंकज अवधिया**

जंगली सूअर को दौडाती गाये, बरहा मूसली और हलाकान अन्नदाता

बुधवार यानि एक जुलाई की देर रात को हम उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बरहा यानि जंगली सूअर के बडी संख्या मे आने की खबर मिली थी। मै इस बारे मे विस्तार से पिछले लेखो मे लिख चुका हूँ। अभी तक हमे जानकारी थी कि तीन झुंड मे 70 बरहा आये है पर ग्राम सिकोला मे रुकते ही वहाँ किराने की दुकान चलाने वाले श्री कृष्ण कुमार साहू ने बताया कि बरहा की संख्या सौ से ज्यादा है। ये पास के नाले और नदी मे रहते है। उसकी दुकान मे दूसरे युवा भी थे। पूरे गाँव मे सन्नाटा था। बरहा का खौफ था। कृष्ण ने बताया कि धान की नर्सरी को ये बरहा नुकसान पहुँचा रहे है। जैसे भैसे पानी मे लोटती है वैसे ही बरहा धान की नर्सरी मे लोट रहे है। इससे बहुत नुकसान हो रहा है। मैने पूछा कि क्या कोई और आकर इससे पहले इस बारे मे जानकारी लेकर गया है तो उसने कहा कि आप पहले हो। यह खबर अभी अखबारो मे भी नही छपी है। कृष्ण से विदा लेकर हम आगे बढे और तुलसी नामक उस गाँव मे पहुँचे जहाँ बरहा ने दो बच्चो

को घायल किया था। ये चरवाहे के बच्चे थे। मै उनसे मिलने गया पर रात अधिक होने के कारण वे सो गये थे। उनके परिजनो से ही मुलाकात हो पायी।

ग्रामीणो ने बताया कि आस-पास जंगल नही है फिर भी जाने कहाँ से इतनी बडी संख्या मे बरहे आ गये है। इनमे मादाए और बच्चे बडी संख्या मे है। ये कहाँ से आये है, इसका पता थोडे से सर्वेक्षण के बाद पता चल सकता है। उन स्थानो, जहाँ अचानक ही बरहा का आना कम हो गया होगा, की सहायता से बरहा का मूल निवास जाना जा सकता है। गाँव के बुजुर्गो ने बताया कि ये जंगल के ही बरहा दिखते है जिन्हे मनुष्यो के आस-पास रहने की आदत नही है। जंगल मे सम्भवत: पानी की कमी के चलते इनका आगमन हुआ होगा। पर इस बात को जानकर सभी चिंतित थे कि अब ये यहाँ के स्थायी निवासी बन गये है। ग्राम खुडमुडी मे लोगो ने बताया कि आस-पास के गाँव के वे लोग जिनकी फसल को बरहा ने नुकसान पहुँचाया है, बडी संख्या मे बरहा को खदेडने गये थे। उन्होने दूर तक उन्हे खदेडा लेकिन बरहा की फिर से वापसी हो गयी। अब फिर से खदेडने की तैयारी है। मुझे अपने अनुभव से लगता है कि इससे कुछ भी लाभ नही होने वाला है। ये बरहा मनुष्यो की बस्तियो के बीच फँस गये है। एक बस्ती के लोग खदेडेंगे तो दूसरी बस्ती के पास बरहा चले जायेंगे। इस पर दूसरी बस्ती के लोग भी खदेडेंगे और बरहा फिर पहली बस्ती मे आ जायेंगे। यह क्रम कभी समाप्त नही होगा।

गाँव की गायो और दूसरे मवेशियो ने गाँव वालो की तरह बरहा को अपने जीवन मे कभी नही देखा है। बरहा ने अब तक इन्हे नुकसान नही पहुँचाया है। यही कारण है कि गाँव मे विचित्र दृश्य दिख रहे है। बरहा गायो के समूह के पास आ जाते है तो कुद्ध गाये दूर तक उन्हे दौडाती है। आम ग्रामीणो ने लाठी के सहारे के अलावा अब समूह मे खेत जाना आरम्भ किया है। एक के आवाज लगाने से दूसरे एकत्र हो जाते है और बरहा को भगाने लगते है। अभी फटाको का प्रयोग आरम्भ नही हुआ है पर इसकी बात चल रही है। फटाको की बात सुनकर मुझे उत्तरी बंगाल के जंगली हाथियो की याद आती है। हाथियो के आने पर रात को गाँव वाले फटाके फोडते है। हाथी खडे-खडे लुफ्त उठाते रहते है। उन्हे मालूम है कि यह आतिशबाजी ज्यादा नही टिकेगी। जब शो खत्म होता है तब वे गाँव मे प्रवेश करते है। फटाको के प्रयोग से कभी बन्दरो से भी निपटा जाता था पर तेज आवाजो के वे अब अभ्यस्त हो गये लगते है।

इस यात्रा के दौरान दिन मे काँकेर के पास एक ऊँची पहाडी पर बन्दरो से सामना हुआ। बन्दर मनुष्यो के उस पहाडी पर आने-जाने के अभ्यस्त हो चुके थे। मै आराम से उनकी तस्वीरे लेता रहा। इसी बीच नीचे बस्ती से बारात निकली। फटाके फूटे तो पहाडी की

चट्टानो से टकराकर इतनी जोर की ध्वनि हुयी कि हम लोग चौक पडे। पर बन्दर पूरी तरह अप्रभावित दिखे। उन्होने उस ओर देखा भी नही। मुझे लगता है बरहा के लिये फटाको का प्रयोग गाँव वालो के लिये व्यर्थ खर्च ही होगा। कुछ ही दिनो मे बरहा इसके अभ्यस्त हो जायेंगे।

पंचायत कुछ क्यो नही कर रही है? इस प्रश्न के जवाब मे ग्रामीणो ने कहा कि अभी मानसून की देरी के कारण धान की बुआई नही हुयी है इसलिये बरहा द्वारा कम नुकसान हो रहा है। बुआई के बाद अब नुकसान का प्रतिशत बढेगा तब किसानो का आक्रोश भी बढेगा। उसके बाद फिर पंचायत बुलायी जायेगी। सबसे बडी समस्या यह है कि किसी को इससे निपटने का उपाय नही मालूम है। पंचायत बैठ भी गयी तो अधिकारियो को इस बाबत विज्ञप्ति भेजने के अलावा और कुछ नही किया जा सकता है। ग्रामीणो ने मुझसे वन अधिकारियो से बातचीत करने को कहा। वे कहते थे कि बरहा को गाडियो मे भरकर जंगल मे छुडवा दिया जाये। मैने अधिकारिक रुप से तो किसी से बात नही की पर अपने एक मित्र से बात की तो उन्होने कहा कि एक-दो जानवरो के लिये यह विधि कारगर है। पर सौ से ज्यादा बरहा को इस तरह दूसरी जगह ले जाना सम्भव नही जान पडता है। उन्होने यह भी कहा कि यदि गाँव वाले जबरदस्त ढंग से विरोध करे तो ही यह इस दिशा मे कुछ हो सकता है।

इस जंगल यात्रा के दौरान मै कुछ ऐसे पारम्परिक चिकित्सको से मिला जो कि बरहा को करीब से जानते है। वे बरहा का पीछा करते है जंगलो मे और बरहा द्वारा पसन्द किये जाने वाले कन्दो से औषधीयो का निर्माण करते है। उनसे अच्छा भला कौन बता पायेगा इन वन्य-जीवो के बारे मे? उन्होने समस्या को ध्यान से सुना और फिर बोले कि यदि उन गाँवो मे आये बरहा जंगली है तो कन्द-मूल उनके आहार के अहम भाग होंगे। ये नदियो और नालो के किनारे उगने वाले गोन्दला जैसे कन्दो पर भी आश्रित रह सकते है। यदि उन्हे कन्दो से वंचित कर दिया जाये तो आधुनिक फसलो पर वे ज्यादा आश्रित नही रह सकते। गाँव वालो को बरहा को खदेडने मे अपनी शक्ति जाया करने की बजाय मिल-जुल कर उनके निवास स्थान के आस-पास से कन्दो को नष्ट कर देना चाहिये। साथ ही कुछ सप्ताह तक रात-दिन किसी भी हालत मे उन्हे खेतो मे घुसने से रोकना चाहिये। इससे वे मजबूरी मे ही सही पर स्थान बदलने की कोशिश करेंगे। अब चूँकि बरसात शुरु हो गयी है इसलिये हो सकता है कि वे वापस उसी जंगल की ओर कूच करे। यह भी हो सकता है कि वे दूसरे गाँव की ओर जाये। आस-पास के बडे क्षेत्र मे मुनादी के द्वारा इस बारे मे जागरुकता फैलाना जरुरी है।

आमतौर पर बरहा रात को सक्रिय रहते है और दिन मे आराम करते है पर यहाँ के बरहा दिन मे खेतो मे घूम रहे है और रात को बेशरम की झुरमुट मे दुबक जा रहे है। इस जंगल यात्रा के दौरान मैने पहली बारिश के बाद काली मूसली के पौधे को उगते देखा। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि इसे स्थानीय भाषा मे "बरहा मूसली" भी कहते है। ये बरहा को बहुत पसन्द है और इसके बिना वह शक्तिहीन हो जाता है। प्रभावित गाँवो के विषय मे अच्छी बात यह है कि यहाँ दूर-दूर तक "बरहा मूसली" के पौधो का नामोनिशान नही है। हो सकता है कि इस वनस्पति की अनुपलब्धता ग्रामीणो के लिये वरदान बन जाये। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-34

- **पंकज अवधिया**

समागम से समाधि तक महत्व है घठा वृक्ष का

दल से एकदम अलग एक बूढा बन्दर एक सफेद छाल वाले वृक्ष पर बैठा था। बैठा क्या था, वह तो तने से लिपटा हुआ था। शायद वह आराम कर रहा था। मैने अपना कैमरा निकाला और उसकी तस्वीर लेने की कोशिश की। जूम किया तो मुझे बन्दर की गतिविधियाँ सन्दिग्ध लगी। मैने साथ चल रहे स्थानीय व्यक्ति से इस बारे मे पूछा तो उसने भी इस गतिविधि को अजीब बताया। पारम्परिक चिकित्सको से जब पूछा तो वे बोले कि ऐसे बहुत से वृक्ष है इस जंगल मे। आप इस वृक्ष को छूकर देखे तब आपको असलियत पता चलेगी। मै आगे बढा और तने को छुआ। तना बर्फ के समान ठन्डा था। पारम्परिक चिकित्सको के कहने पर मैने कपडे उतारे और नगे बदन ही वृक्ष की ऊपर की डालियो पर लेट गया। ऐसा लग रहा था मानो मै बर्फ पर लेटा हुआ हूँ। पर असली बर्फ की तरह लेटे रहने मे मुश्किल नही हो रही थी। कुछ समय मे ही तरोताजा महसूस होने लगा। मै इस वृक्ष की शीतलता से हैरान था। मेरे बाद पारम्परिक चिकित्सको ने भी इसका लाभ उठाने मे जरा भी देरी नही की।

पारम्परिक चिकित्सको ने खुलासा किया कि आम लोगो को अपनी जीवनी क्षमता के अनुसार इस वृक्ष पर समय बिताना चाहिये। इससे शरीर की अनावश्यक गर्मी शांत हो

जाती है। बन्दर इस वृक्ष को पीढीयो से जानते है इसलिये वे इसका भरपूर लाभ उठाते है। अभी सुबह की हल्की बारिश के बाद वातावरण मे उमस है। इसी उमस ने बाल वाले बूढे बन्दर को परेशान कर रखा है। बन्दर ने अब इस वृक्ष का सहारा लिया है। इस क्षेत्र मे इसे "घठा" के नाम से जानते है पर छत्तीसगढ मे ही इसे अलग-अलग भागो मे अलग-अलग नामो से जाना जाता है। मैने इसकी हजारो तस्वीरे ली है पर दूर से तस्वीर लेने के कारण मैने कभी इसे छू कर नही देखा आज की तरह। यही कारण है कि मै इसकी अनोखी शीतलता से अनजान रहा। बूढे बन्दर ने भी ध्यान खीचा। मैने अपने अनुभवो से यह सीखा है कि जंगल मे किसी भी गतिविधि को देखते समय "क्यो" का ध्यान रखाना चाहिये। जिज्ञासु बने रहने पर निश्चित ही समाधान प्राप्त हो जाता है।

मेरे मित्र के एक रिश्तेदार टोरंटो मे रहते है। वे पेशे से चिकित्सक है। उनका कहना है कि हाइपर टेंशन इस दुनिया की सबसे खतरनाक बीमारी है। दस साल के बच्चो से लेकर नब्बे साल के बूढे तक को इस नव-रोग ने जकड रखा है। यही अन्य रोगो की जड भी है। यही बात देश के पारम्परिक चिकित्सक भी कहते है। वे दवाओ के प्रयोग की बजाय रोगियो को शांति के कुछ पल गुजारने की बात कहते है। उन्होने घठा जैसे वृक्षो की छाँव मे बैठने की सलाह दी जाती है। दो घंटे भी खटिया डालकर इस वृक्ष के नीचे रोगी पडे रहे तो बडे से बडा तनाव समाप्त हो जाता है। हाँ, इस समय मोबाइल बन्द रखना जरुरी है-पारम्परिक चिकित्सक मुस्कुराकर कहते है। घठा से लिपट कर रहने की सलाह रक्त सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा के दौरान भी की जाती है।

आपको आश्चर्य होगा कि पहले जब ये वृक्ष बहुतायत मे थे तब पारम्परिक चिकित्सक इसके समूहो को चिन्हित कर लेते थे। इन समूहो के नीचे मिट्टी की झोपडी बनायी जाती थी। इसकी छत खुली रखी जाती थी। विवाह के पहली रात वर और वधू को इसी झोपडी मे गुजारने के लिये कहा जाता था। पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि समागम की प्रक्रिया मे उत्पन्न गर्मी पर इस वृक्ष की छाँव अनुकूल असर डालती है और इस प्रक्रिया की अवधि को अप्रत्याशित रुप से बढा देती है। वे पारम्परिक चिकित्सक जिनके पूर्वजो ने राजवैद्य की भूमिका निभायी है, बताते है कि राज परिवार आखेट के दौरान अपना तम्बू इसी वृक्ष समूह के पास लगाते थे। विवाह की पहली रात मे इस वृक्ष का महत्व तो है ही पर जीवनी शक्ति के अनुसार साल मे कई बार जोडे इस झोपडी मे रात गुजार सकते है। यहाँ यह बताना जरुरी है कि इस झोपडी को चारो ओर से क्यो घेरा जाता है? इसकी शीतलता के कायल वन्यजीव भी है। यही कारण है कि सुरक्षा के लिहाज से खुली छत वाली झोपडी पारम्परिक चिकित्सक अपनाते है।

मैने अपने सर्वेक्षणो के दौरान यह महसूस किया है कि आम लोग इसके बारे मे कम ही जानते है। यही कारण है कि इसकी लकडी को दूसरी लकडियो की तरह या तो भट्टियो मे फूँक दिया जाता है या घरो के निर्माण मे प्रयोग कर लिया जाता है। इसके कारण हाल के दशको मे इनकी संख्या मे कमी आयी है। इसकी लकडी के भी ढेरो औषधीय उपयोग है। पर इस बारे मे पारम्परिक चिकित्सक बताना नही चाहते है। उन्हे डर है कि शहरियो को इस बारे मे पता चलते ही इस वृक्ष का सफाया हो जायेगा। वे इससे सम्बन्धित ज्ञान का दुरुपयोग न होने देने की शर्त पर बताते है कि रोग की अंतिम अवस्था मे जब सारी औषधीयाँ बेकार सिद्ध होती है तब अंतिम उपाय के तौर पर इसकी लकडी से बनी खाट मे रोगी को लिटा दिया जाता है। उसके हाथ-पैर मे जडो का लेप लगाया जाता है और तनो का पानी पीने को दिया जाता है। वे दावा करते है कि इससे बहुत से मामलो मे लाभ होते देखा गया है। लाभ के लक्षण दिखते ही रोगी की चिकित्सा नये सिरे से आरम्भ की जाती है। बहुत से पारम्परिक चिकित्सक रोगी की मृत्यु के बाद शव के साथ इसकी लकडी का एक टुकडा रख देते है। बहुत पूछने पर भी वे इसका कारण नही बताते है।

घठा के फल खाये नही जाते है। इन्हे जहरीला माना जाता है। इसके विष को दूर करके इससे औषधीयाँ बनायी जाती है पर इसमे बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। इसलिये पारम्परिक चिकित्सक विकल्पो का प्रयोग करते है। घठा के विषय मे यह दिव्य ज्ञान आज तक वैज्ञानिक साहित्यो तक क्यो नही पहुँचा, यह समझ से परे है। हजारो शोधकर्ताओ ने इसके बारे मे लिखा है पर इसके औषधीय गुणो के बारे मे एक पंक्ति भी नही मिलती है। घठा के बारे मे अब तक एकत्र की गयी जानकरियो के आधार पर "घठा पुराण' की रचना की जा सकती है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि वर्तमान पीढी इतनी अधिक सौभाग्यशाली नही है कि सभी को इसका लाभ मिल सके। वर्तमान पीढी इस वृक्ष का व्यापक पैमाने पर रोपण करके आने वाली पीढी को बतौर उपहार इसे दे सकती है। आने वाली पीढी मे तो तनाव चरम पर होगा। ऐसे मे घठा का उपहार उन्हे स्वस्थ्य रखेगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-35

- **पंकज अवधिया**

वृक्षो की गोन्द चाटते बन्दरो का पीछा और रोचक रहस्योघाटन

पहाडी पर चढने से पहले ही स्थानीय लोगो ने चेता दिया था कि नारियल और दूसरी पूजन सामग्री लेकर नही जाये, बन्दर रास्ते मे ही लूट लेंगे। पर फिर भी हम बडी मात्रा मे पूजन सामग्री लेकर चढे। कुछ दूर चढने पर ही बन्दरो ने हमारे आस-पास घूमना शुरु कर दिया। मेरे हाथ मे कैमरा था इसलिये मुझमे वे ज्यादा रुचि नही ले रहे थे। पीछे चल रहे पारम्परिक चिकित्सक पर उन्होने धावा बोल दिया और सारी पूजन सामग्री जमीन पर बिखर गयी। बन्दरो को जो खाते बना, खा गये पर नारियल वैसे के वैसे पडे रहे। पीढीयो से इस पहाडी मे रहते हुये भी उन्होने नारियल को छीलना नही सीखा था। मैने आगे बढकर गिरे हुये नारियल को उठाना चाहा तो उन्होने उस ओर देखा तक नही। सामग्री लूट लेने के बाद उनकी रुचि हममे कम हो गयी। बस इसी पल का हमे इंतजार था। हम तस्वीरे लेने लगे और बन्दरो के व्यव्हार का अध्ययन करने लगे। इस बीच पारम्परिक चिकित्सक ने बन्दरो का विश्वास जीतने के लिये नारियल उठाया और पत्थर से उसे फोड दिया। फिर नारियल को बन्दरो मे बाँट दिया। बन्दरो का नजरिया हमारे प्रति दोस्ताना हो गया।

हमने पहाडी का मुख्य मार्ग छोडा और उस रास्ते पर चल पडे जिससे कम ही लोग आते जाते थे। बन्दर कुल्लु के वृक्ष पर बैठे हुये थे। आपने इस वृक्ष के विषय मे इस लेखमाला मे काफी कुछ पढा है। करीब एक घंटे तक लगातार बन्दरो को देखने के बाद बोरियत सी होने लगी। तभी एक बन्दर को नुकीला पत्थर उठाते देखा। उसने पत्थर की सहायता से कुल्लु की तने को मारना शुरु किया। तना नरम था इसलिये थोडी ही मेहनत से तने से गोन्द निकलनी आरम्भ हो गयी। बहती गोन्द को पहले व्यस्को ने चाटा और फिर बच्चो ने। चाटने का क्रम पारी-पारी से काफी देर तक चलता रहा। इसके बाद वे सब एक ऊँची चट्टान पर गये और एक छेद मे जमे बारिश के पानी का सेवन करने लगे।

कुल्लु की गोन्द का प्रयोग वनवासी पीढीयो से करते आ रहे है। वे गर्मी के दिनो मे शीतलता के लिये गोन्द को पानी मे भिगो देते है और फिर उस पानी को पी लेते है। बन्दर भी लगभग वैसा ही कर रहे थे। इसका मतलब क्या वे भी शीतलता की तलाश मे थे? पारम्परिक चिकित्सक ने शांत रहकर सब कुछ देखते रहने का निर्देश दिया। पानी पीने के बाद सारे के सारे बन्दर पहाडी के दूसरी ओर चले गये। हमने पीछा करने की ठानी।

कुछ दूर चलने पर हमे पहाड पर खोह दिखाई दिये। उनमे हलचल हो रही थी। हमे पता था कि इन खोह मे भालू हो सकते है। हमारे रोंगटे खडे हो गये। यदि भालू सामने आ जाते तो हमारे पास करने को ज्यादा कुछ नही था। मदद के लिये कोई आस-पास नही था और अगर होता भी तो भालूओ के शिकंजे से बचाने कोई सामने नही आता। खोह मे हलचल बढ रही थी।

सम्भावित हमले को देखते हुये मैने मोबाइल निकालना ही उचित समझा। बडी जोर से रेशमिया गीत बजाने लगा। फिर धीरे-धीरे हम उस खोह से आगे निकल गये। मुझे एन 73 की ध्वनि गुणवत्ता का असर एक बार फिर पता चला। पारम्परिक चिकित्सक ने जोर-जोर से हनुमान चालीसा पढना शुरु किया। किसी भी तरह शोर करना था ताकि भालू खोह से बाहर न निकले। तरकीब काम आयी और हम आगे बढ गये। हमे बन्दरो का झुंड फिर से दिखायी देने लगा। वह सलिहा वृक्ष के तने से गोन्द चाटने मे मगन था। गोन्द चाटने के बाद उन्होने पानी नही पीया। कुछ देर के बाद वे और आगे बढ गये। हमने अपने लिये रास्ता बनाने की कोशिश आरम्भ कर दी। इस बीच हमे गोह दिखायी दिये जो कि चट्टानो के पीछे छिपे हुये थे। ये आजकल दुर्लभ हो गये है। इन्हे देखना सचमुच हमारा सौभाग्य था। कुछ दूर चलने पर हमे तेज दुर्गन्ध आने लगी।

बन्दरो का समूह किसी हाल ही मे मरे जीव का भक्षण कर रहा था। बन्दर शाकाहारी माने जाते है पर विपरीत परिस्थितियो ने इन्हे सर्वहारी बना दिया है। पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि यह बन्दरो का शिकार नही है बल्कि ये किसी दूसरे जीव के शिकार का हिस्सा चुरा रहे है। हो सकता है कि दूसरा जीव आस-पास ही हो और पहले चक्र के भोजन के बाद आराम कर रहा हो। इस माँस को खाने से शरीर मे गर्मी पैदा होती और बन्दरो का स्वास्थ्य बिगडता इसलिये उन्होने शीतलता प्रदान करने वाली गोन्द का सेवन किया। यह सुनकर लगा कि इतना खतरा उठाना व्यर्थ नही गया। मै आस-पास की वनस्पतियो की तस्वीरे लेने लगा। तभी पारम्परिक चिकित्सक को एक वृक्ष के शीर्ष पर आराम करता तेन्दुआ दिखा। उसने शायद हमे देख लिया था पर फिर भी वह शायद ही आक्रमण करता। हम उसके शिकार के नजदीक जाते तब ही शायद वह हमला करता। बन्दर तेन्दुए की उपस्थिति से अंजान थे। तेन्दुआ बन्दरो को खाना पसन्द करता है। इसके लिये वह वृक्ष मे भी चढ जाता है। तेन्दुआ जरुर बन्दरो पर नजर गडाये हुये था। पीछे भालू की खोह, ऊपर तेन्दुआ और सामने बन्दर, बडी विकट स्थिति थी। तभी मोबाइल की घंटी बजी। उधर से आइसी-वाइसी बैक से कोई मधुर आवाज मे स्कीमे बता

रहा था। मुझे लगा कि स्कीम बताने वाले को बिना देर यहाँ बुला लूँ और सारी बाते समझ लूँ। फोन काटा और फिर हम वापस लौटने लगे।

भालू की खोह के पास पहुँचे तो फिर हनुमान चालीसा और रेशमिया गीत का शोर शुरु कर दिया। जैसे-तैसे हम मुख्य मार्ग तक पहुँचे। देखा तो वहाँ कोई हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। वे ऊपर वाले मन्दिर के पुजारी थे। उन्हे किसी ने हमारे रास्ते भटकने की बात बता दी थी। भालू की खोह की ओर गया जानकर वे मन्दिर छोडकर आ गये थे। उन्होने बताया कि पहले बहुत से हादसे हो चुके है इस कच्चे मार्ग पर। अनजान जगहो पर ऐसे जाना ठीक नही है। हमने अपनी गल्ती मानी।

पुजारी जी को हमने बन्दरो के व्यवहार के बारे मे बताया। उन्होने कहा कि पहले बन्दर पहाडो तक सीमित थे। उन्हे पहाड से पर्याप्त भोजन और पानी मिल जाया करता था। जब से इस पहाड मे मनुष्य़ की गतिविधियाँ बढी है तब से पहाड की वनस्पतियाँ खत्म होती जा रही है। पहाडी के आधार पर जंगली फलो के वृक्षो को काटकर जैट्रोफा लगा दिया गया है। बन्दर इसके जहरीले फलो को नही खाते है। बहुत से सजावटी पौधो का रोपण भी किया गया है। अब ये पौधे जंगलो मे खरपवार बनकर फैलने लगे है। मनुष्य़ भक्त के रुप मे आ रहे है और ढेरो कचरा छोडकर जा रहे है। अपने आवास को बर्बाद होता देखकर अब बन्दर नीचे बस्ती मे जा रहे है। बस्ती मे उन्हे आसानी से खाना मिल जाता है। इससे उनकी रुचि जंगली वनस्पतियो मे कम हो रही है। उन्होने अपनी युवावस्था को याद करते हुये बताया कि उन्हे भी बन्दरो और दूसरे जीवो के वनस्पति प्रेम का अध्ययन करने मे रुचि थी। उन्होने इस बात की पुष्टि की कि काँटेदार सेमल के वृक्ष मे बन्दर नही बैठते है पर उसके सभी भागो के औषधीय प्रयोगो के विषय मे वे जानकारी रखते है।

शाम होने लगी। भक्तो का आना बन्द हो गया। पुजारी जी ने कहा कि अब भालूओ के बाहर निकलने का समय है। ठंडक होने पर सर्प भी निकलने लगेंगे इसलिये नीचे उतरना ही ठीक होगा। हमने उनकी बात मानी और उनके पीछे चल पडे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-36

- **पंकज अवधिया**

अच्छे-बुरे भालू, लिंग से बना कामोत्तेजक तेल और निराधार दावे

क्या ऐसा हो सकता है कि अगल-बगल स्थित दो पहाडियो मे से एक मे अच्छे भालू रहे और दूसरे मे बुरे भालू? बुरे भालू यानि ऐसे भालू जो मनुष्यो पर आक्रमण करे और उनकी फसलो को बर्बाद कर दे और अच्छे भालू यानि ऐसे भालू जो मनुष्यो को देखते ही किनारे से निकल जाये। उनकी फसलो को कम नुकसान पहुँचाये। और तो और पाँचवी-छठवी क्लास के बच्चे उन्हे दौडा दे तिस पर भी वे कुछ न बोले। मै अपना प्रश्न फिर से दोहराता हूँ। आपको शायद यकीन न हो पर यह एकदम सत्य है। आज यानि रविवार का दिन इन्ही अच्छे-बुरे भालूओ के साथ बिता कर कुछ समय पहले लौटा हूँ।

आज जंगल यात्रा मे निकलने के समय भालू से दिन भर मिलना-जुलना होगा इसकी मैने कल्पना भी नही की थी। आज एक पारम्परिक चिकित्सक के पास जाना था और फिर एक सर्प विशेषज्ञ से मुलाकात करने की योजना थी। सर्प विशेषज्ञ हरेली यानि 22 जुलाई को अपने चेलो को दीक्षा देने वाले है। इसके लिये उन्होने मुझे विशेष तौर पर आमंत्रित किया है। मै साजो-सामान के साथ उस दिन जाना चाहता हूँ। उनसे मिलकर पूरी योजना तैयार करने के उद्देश्य से मै निकला था।

जब मै उस क्षेत्र मे पहुँचा तो एक ऊँची पहाडी को देखकर गाडी उधर घुमा ली। पहाडी के नीचे पहुँचे तो साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि इस पहाडी पर बहुत से भालू है। यदि आप इन्हे देखना चाहे तो यहाँ खुले मे शाम को चार से पाँच के बीच बैठ जाये। भालू पहाडी से उतरेंगे और अपने रास्ते चले जायेंगे। क्या वे हम पर आक्रमण नही करेंगे? यह प्रश्न करने पर उन्होने कहा कि इस गाँव के लोग भालुओ को सम्मान देते है। पहाड पर गाँव वालो के जलको देवता है। उनके भक्त होने के कारण इस पहाडी के भालू गाँव वालो को नही सताते है। उन्होने इस पहाडी का नाम जलको पाट बताया। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। हालाँकि यह बात मेरे लिये नयी नही थी क्योकि इस क्षेत्र मे मैने अपने जीवन का महत्वपूर्ण समय बिताया है। पर मेरी रुचि वनस्पतियो मे ज्यादा रही है, वन्य जीवो मे जरा कम। भालू के बारे मे इतनी दिलचस्प बाते सुनने के बाद मैने सारे कार्यक्रम रद्द कर इसी विषय़ पर ध्यान केन्द्रित करना चाहा।

हम कोटनपाली और विराजपाली नामक दो गाँव पहुँचे और वहाँ के लोगो से बातचीत की। इन गाँवो से थोडी दूरी पर एक और पहाड है जिसे लमकेनी कहा जाता है। इसे पर्रा पाट भी कहा जाता है। यहाँ के भालू बडे ही खूँखार है। गाँव वालो ने बताया कि एक बार गाँव

के एक घर मे मेहमान आये। मेहमान और मेजबान खलिहान की घेराबन्दी करने काँटे वाली शाखाए लेने के लिये पर्रा पाट मे चढे। एक भालू ने मेजबान पर आक्रमण कर दिया। मेहमान के पास टंगिया थी। उसने बिना किसी देर और संकोच के भालू पर हमला कर दिया। भालू ने मेजबान को छोडकर मेहमान पर आक्रमण कर दिया। इतना जबरदस्त आक्रमण की मेहमान की अंगुलियाँ ही मिल पायी। सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। यह गाँव वालो के लिये शर्मिन्दगी की बात थी। वे मेहमान की रक्षा नही कर पाये। आज भी जिस स्थान पर मेहमान की मौत हुयी थी वहाँ एक स्मारक बना हुआ है। इस घटना ने भालू और गाँव वालो को एक-दूसरे का जानी दुश्मन बना दिया।

लमकेनी और जलको पाट इतने करीब है और फिर भी इनमे बसने वाले भालुओ के व्यवहार मे जबरदस्त अंतर है। गाँव वाले बताते है कि लमकेनी के बुरे भालू यदि गल्ती से जलको पाट मे आ जाते है तो अच्छे भालू उन्हे खदेडने मे जरा भी देर नही लगाते है। यह अपने आप मे एक अनोखी बात है। अच्छे भालू दीमको के शौकीन है। उनका यह शौक किसानो को मदद करता है। उनकी फसल दीमको से बची रहती है। अच्छे भालू जिस पहाडी पर रहते है वहाँ बडे-बडे खोह है। पहाडी पर बहुत कम वृक्ष बचे है। पहाडी पर तीखी ढलाने है। इनमे मनुष्य़ शायद ही तेजी से चढ पाये पर भालुओ के लिये यह बाये हाथ का खेल है। वे रोज शाम को पहाडी से उतरते है और अल सुबह वापस लौट जाते है। आज शाम को हमे बडी संख्या मे भालुओ को देखने के लिये आमंत्रित किया गया तो हम सहर्ष तैयार हो गये।

आज रविवार था इसलिये इस पहाडी के आस-पास सन्नाटा पसरा हुआ था। सप्ताह के शेष दिन यहाँ हजारो की संख्या मे लोग काम करते है। यह काम है पत्थर तोडने का। गाँव के बुजुर्ग बताते है कि पिछले एक दशक मे पत्थर खदान के कारण इस पहाडी का आधा भाग साफ हो चुका है। यदि यही गति रही तो आगामी दस-पन्द्रह वर्षो मे यह पहाडी पूरी तरह से गायब हो जायेगी। बारुद से चट्टानो को तोडा जाता है और फिर ट्रको मे लादकर तेजी से बढते महानगरो मे पहुँचा दिया जाता है। साल भर यहाँ काम चलता रहता है। केवल बरसात मे खदान मे पानी भरने के कारण काम बन्द रहता है। इस समय गाँव वाले खेती करते है। इस खदान ने गाँव वालो के जीवन मे सुख भर दिया है पर भालू का आवास लगातार छोटा होता जा रहा है। पहले जंगल उनका था जहाँ वे घूमते थे और पहाड भी उनका था जहाँ वे रहते थे। अब जंगल बचे नही है और पहाड भी सिमट रहा है, ऐसे मे वे कितने दिन तक बच पायेंगे, यह कहना मुश्किल है। दुर्भाग्य से यह सब

अच्छे भालुओ के साथ हो रहा है। बुरे भालू के पहाड मे खदान नही है। वे मजे से वहाँ जीवन व्यतीत कर रहे है।

मैने मन मे भय लिये गाँव वालो से पूछा कि भालू देवता स्वरुप माने जाते है फिर भी आप खनन से पहाडी को खत्म कर भालुओ का आवास खत्म कर रहे है? इस पर वे नाराज नही हुये। उन्होने कहा कि देव स्थान वाला भाग खनन से मुक्त है। वहाँ लम्बे समय तक भालू मजे से रह सकते है। हाँ, पहाडी के कटने से उनका घूमना-फिरना बन्द हो जायेगा पर यह हमारे पेट से जुडा है। पहले पेट भगवान और फिर दूसरे भगवान। यह कडवा सत्य दिल दहलाने वाला है।

दिन भर काम निपटाकर हम देर शाम कोटनपाली गाँव पहुँच पाये। बिसत नामक स्थानीय व्यक्ति ने हमारे साथ चलने मे रुचि दिखायी। उन्होने अपने चार-पाँच साल के बच्चे को भी साथ रख लिया। उन्होने सुझाव दिया कि यहाँ से भालू दर्शन ठीक नही रहेगा। आप हिम्मत दिखाये तो पहाडी के दूसरी तरफ चलते है। हमारी छोटी गाडी चली जायेगी, यह सुनकर हम बिना देरी के उस ओर चल पडे। काफी देर चलने के बाद हम पहाडी के आधार तक पहुँच गये। गाडी किनारे मे खडी की और ताकने लगे ढलानो को ताकि भालू दिख जाये। भालू कितने भी अच्छे बताये जाये पर हमारी इच्छा गाडी से बाहर निकलने की नही थी। बिसत अपने बच्चे को कन्धे मे बिठाकर ढलान की ओर चल पडे। हम उनकी हिम्म्त के कायल हो गये। कुछ देर बाद वे वापस आये तो उनके पीछे थोडी दूरी पर दो भालू ढलान से उतर रहे थे। उन्हे बिसत की फिक्र नही थी। नीचे उतर कर वे हमारी कार से सट कर निकल गये। हमे बताया गया कि अभी दसो भालू और दिखेगे। इस बीच बारिश होने लगी तो बिसत भी गाडी के अन्दर आ गये।

उन्होने बताया कि जिन इलाको मे बुरे भालू रहते है वहाँ लोग कानून को ताक मे रखकर भालुओ को मारकर खा जाते है। क्या भालू के अंगो का व्यापार भी यहाँ होता है? मेरे इस प्रश्न पर उन्होने "हाँ" मे जवाब दिया। यहाँ भी व्यापारी भालू के लिंग की प्राप्ति के लिये उनकी हत्या कर देते है। मैने अपने लेखो मे पहले लिखा है कि भालू के लिंग का तेल कामोत्तेजक के रुप मे बिकता है। बिसत ने बताया कि यहाँ लिंग के प्रयोग की दूसरी विधि लोकप्रिय है। व्यापारी दावा करते है कि लिंग की सब्जी बनाकर खाने से कामोत्तेजना बढती है। बिसत ने आँखो मे क्रोध भरते हुए कहा कि लिंग की सब्जी खाओ या तेल लगाओ पर जैसा दावा किया जाता है वैसा लाभ नही होता है। बेवजह ही भालू देवता मारे जाते है। भालू की काम शक्ति प्रबल होती है- यह सच है पर यह कौन सी बात हुयी कि उसके लिंग का इस तरह उपयोग किया जाये? मुझे बिसत की बात सही लगी।

अब आप ही सोचिये यदि इंसानो की बढती आबादी को देखकर, वन्य जीव खुद अपनी आबादी बढाने की सोच ले और इसके लिये इंसानो की इस शक्ति का राज लिंग मान ले तो सारी मानव आबादी खतरे मे पड जायेगी।

दो भालुओ के निकलने के काफी देर तक दूसरे भालू नही दिखे। मैने हिम्मत करके बिसत के साथ आस-पास के क्षेत्र का मुआयना किया। भालू कन्द-मूलो को बहुत पसन्द करते है। अल्प समय मे ही मैने 33 किस्म के कन्द एकत्र किये। इनमे से ज्यादातर कन्द ऐसे थे जो भालू की अपार शक्ति के लिये उत्तरदायी थे। पारम्परिक चिकित्सक ने इसकी पुष्टि की। मैने इन कन्दो की तस्वीरे ली और फिर हम वापस लौट आये। इस बीच बारिश तेज हो गयी। हमे मिट्टी के गीले होने का डर था। गाडी के फँसने पर हम शायद ही निकल पाते। और अच्छे भालू इतने भी अच्छे नही थे कि वे मिलकर गाडी को धक्का देते इसलिये हमने वापसी की राह पकड ली। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-37

- **पंकज अवधिया**

नागलोक, माँ के रुप मे बरहा और कन्द के लिये वन्यजीवो मे मारामारी

गर्मी की रात थी। चार-पाँच साल का एक बालक अपने माँ-बाप के साथ घर के बाहर सो रहा था। एक ओर माँ और दूसरी ओर पिता। बीच वाली खाट मे बालक था। तभी एक पंजा आकर बालक की गर्दन मे घँस गया। यह पंजा था तेन्दुए का जो अभी-अभी दीवार फाँद कर आया था। दो और तेन्दुए दीवार के उस पार थे। तेन्दुए ने बालक को घुमाकर अपने पीठ पर लादना चाहा पर विफल रहा। इस प्रक्रिया मे उसकी पकड ढीली हो गयी और बालक पंजे से छूटकर जमीन मे गिर गया। उसे होश आया और वह खडे होकर रोने लगा। उसके माँ-बाप हडबडाकर उठे। अन्धेरे मे उन्हे दो चमकती आँखे दिखायी दी। उन्होने शोर मचाया और उस ओर दौडे। पलक झपकते ही तेन्दुआ दीवार फाँदकर नजरो से ओझल हो गया।

आपने पिछले लेख मे अच्छे और बुरे भालुओ के विषय मे जाना। यह घटना उसी क्षेत्र की है। इस क्षेत्र मे भालुओ का एकछत्र राज्य है। स्थानीय लोग इस बात को जानते थे इसलिये वे आराम से घर के बाहर सो रहे थे। उन्हे तेन्दुए के वहाँ होने का आभास ही नही था। पिछले कुछ दिनो से उनके कुछ मवेशी अवश्य मारे गये थे। आक्रोशित ग्रामीणो ने खोज-खबर ली तो उन्हे पता चला कि जंगल विभाग ने बिना किसी सूचना के दूसरे स्थानो से पकडकर लाये गये तीन तेन्दुओ को इस क्षेत्र मे छोड दिया था। वह बालक सौभाग्यशाली था पर जंगल विभाग की इस लापरवाही से हजारो ग्रामीणो की जान खतरे मे पडी हुयी थी। स्थानीय लोगो ने आँखो मे आक्रोश लिये मुझे इस घटना के विषय मे बताया।

बालक पर हमला करने वाले तेन्दुए को खुला छोडना खतरे से खाली नही था। चरवाहो ने उसका पीछा किया और महुए की ऊँची शाखा मे उसे बैठे देख लिया। उस पर पत्थरो की बौछार करके उसे लहूलुहान कर दिया गया। बाद मे जंगल विभाग वाले उसे फिर से पकडकर ले गये।

देश के बडे शहरो मे बैठे आम लोग दुनिया भर की समस्याओ पर ध्यान लगाये हुये। मनुष्यो और वन्य जीवो के बीच बढते संघर्ष की ओर किसी का ध्यान नही है। सनसनीखेज न होने के कारण मीडिया इस समस्या और सम्भावित समाधानो पर चर्चा नही कर रहा है। पल हर पल स्थिति खतरनाक हो रही है। मनुष्य़ और वन्यजीव दोनो ही इस धरती मे पीढीयो से रहते आये है। उन्हे आगे भी साथ रहना होगा। पर कैसे? यह प्रश्न यक्ष प्रश्न की तरह हमारे सामने है। इस पर व्यापक राष्ट्रीय बहस की जरुरत मुझे लगती है ताकि स्थायी समाधान पर पूरे देश मे कार्य हो सके। Human-wildlife conflict एक तकनीकी विषय़ बिल्कुल नही है। यह वन वैज्ञानिको और योजनाकारो की बपौती भी नही है। यह आम लोगो से जुडी समस्या है इसलिये समाधान की पहल भी जमीनी स्तर से होनी चाहिये। उच्च स्तर से जो समाधान सामने आ रहे है वे जमीनी सच्चाई से कोसो दूर है। छत्तीसगढ के नागलोक का ही उदाहरण ले।

आज राजधानी मे नागलोक के विषय मे खबर प्रकाशित हुयी है। तलहटी वाले इस भाग मे हर साल पहली वर्षा के बाद साँप निकलते है और आम लोग इनके शिकार हो जाते है। बडी संख्या मे हर वर्ष मौते होती है। हर साल देशी-विदेशी अखबार इन्ही दिनो इस विषय मे एक खबर प्रकाशित कर साल भर इस महत्वपूर्ण विषय को भूल जाते है जबकि साँप से मौते साल भर होती रहती है। आज प्रकाशित खबर मे साँपो पर नियंत्रण के लिये नेवले और मोर को बडी संख्या मे छोडने की राय तथाकथित जानकारो ने दी है। यह

उपाय सुनने मे तो अच्छा लगता है पर क्या नेवले केवल साँप को ही मारेंगे जब उन्हे बडी मात्रा मे छोडा जायेगा? कही ऐसा उदाहरण मिलता है? मोर छोडे जा सकते है पर उन पर लालची आँखे गडाये पंख के व्यापारियो से उन्हे कौन बचायेगा? माँस के लिये लार टपकाते स्थानीय शिकारियो से कौन उनकी रक्षा करेगा? रही-सही कसर किसान पूरी करेंगे। मोर उनकी फसलो से कीडे खाने आयेंगे और फिर कीटनाशकयुक्त कीडो को खाकर बडी संख्या मे मारे जायेंगे। ऐसे दुखद समाचार मोर के सन्दर्भ मे देश भर से आते रहते है। ऐसे मे नेवले और मोर को छोडने से भला क्या होगा?

मुझे याद आता है कि कुछ समय पहले जब मै इस क्षेत्र मे गया था तो स्थानीय लोग किसी भय से ग्रसित नही लगे। वे पीढीयो से साँपो के साथ रह रहे है। पहले जब जंगल घने थे तो यह समस्या ज्यादा विकट थी। इस समस्या के साथ रहते हुये स्थानीय लोगो ने इसके स्थानीय समाधान भी खोज लिये थे। उनके कुछ नियम है जिनका पालनकर वे साँप से बचा जा सकता है। लापरवाही की बडी कीमत उन्हे चुकानी पडती है। शहर के लोग जब इस क्षेत्र मे आते है तो वे समस्या को अपनी नजर से देखते है। इनमे से ज्यादातर वे लोग होते है जो घर मे एक पतले से साँप को देखकर तुरंत बेरहमी से उसे मार देते है। ऐसे लोगो के लिये नागलोक की समस्या भयावह समस्या लगती है।

चलिये अब जंगल यात्रा की ओर लौटे। इस जगल यात्रा के दौरान मै उन क्षेत्रो मे गया जहाँ किसान पीढीयो से जंगली सूअर यानि बरहा से अपनी फसलो को बचाने की जद्दोजहद कर रहे है। इन किसानो ने केक्टस नुमा वनस्पतियो से अपने खेतो को घेरकर रखा है। किसान बरहा से इस घेरे को सुरक्षित बताते है साल के ज्यादातर समय पर जब मादा बरहा बच्चे देती है तो उन्हे भोजन दिलाने के लिये बहुत से दुस्साहसिक कदम उठाती है। मादा बरहा इन कंटीली वनस्पतियो पर टूट पडती है और अपने चोटो की परवाह नही करते हुये इनके बीच अपना रास्ता बना लेती है। पीछे खडे बच्चे और दल के दूसरे सदस्य खेत के अन्दर प्रवेश कर जाते है और किसान देखते रह जाते है। ऐसे समय मे किसानो को अतिरिक्त मेहनत करनी होती है। साथ ही टूटी हुयी वानस्पतिक बाड को फिर से ठीक करना होता है। यह महत्वपूर्ण जानकारी उन क्षेत्रो के किसानो के लिये उपयोगी साबित होगी जहाँ बरहा नये-नये आये है।

जंगल यात्रा के दौरान लोगो ने बताया कि बरहा और भालुओ ने अपने बीच समझौते कर रखे है। जंगल मे जाने वाले लोग बताते है कि कभी-कभार इनकी मुठभेड हो जाती है पर हमेशा भालू भारी पडते है। बरहा के नुकीले दाँतो से भालू जख्मी हो जाते है इसलिये संघर्ष को टालते हुये वे उनसे भिडना पसन्द नही करते है। क्षेत्र के पारम्परिक चिकित्सक

बताते है कि उन्होने कई बार विशेष कन्दो के लिये भालुओ और बरहा मे जबरदस्त संघर्ष देखा है विशेषकर उन सालो मे जब सूखा पडता है। इन कन्दो के लिये मारामारी की जाती है। दोनो ही वन्य जीव क्षेत्र विशेष मे आकर वनस्पति के उगने की प्रतीक्षा करते है। कई बार दोनो को मन-मसोस कर रह जाना होता है क्योकि मनुष्य़ इन कन्दो को ले जाते है। इन कन्दो का अपना बाजार है और सूखे के सालो मे इनकी माँग मे जबरदस्त बढोतरी हो जाती है।

वन्यजीवो और उनसे जुडी समस्याओ के विषय मे हिन्दी मे ज्यादा कुछ नही लिखा गया है। वन्यजीवो और मनुष्यो के खूनी संघर्ष की खबरे छप तो रही है पर मूल कारणो की ओर किसी का ध्यान नही है। मै हमेशा लिखता हूँ कि यह मेरा जीवन वनस्पतियो के लिये समर्पित है और यदि मै शेष जीवन लगातार बिना रुके सिर्फ लिखता रहूँ तब भी पूरी जानकारियो को नही लिख पाऊँगा। ऐसे मे वन्य जीवो पर इतने विस्तार से लिखना मन मे हलचल पैदा कर देता है। मै उलझन मे पड जाता हूँ। आशा है नयी पीढी से कोई सामने आकर इस विषय को आगे बढायेगा ताकि मै पूरी तरह वनस्पतियो पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकूँ। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-38

- **पंकज अवधिया**

हुंर्रा यदि लकडबघ्घा है, भेडिया नही तो रेवडा क्या है?

बरसात के दिनो मे जब रात मे हमारी गाडी किसी गाँव से गुजरती है तो कुत्ते भौकने लगते है और दूर तक दौडाते है पर इस बार कुछ गाँवो मे ऐसा नही हुआ। मैने इस बात पर गौर किया और जानबूझकर गाडी रुकवायी ताकि कुत्तो ने अगर हमे न देखा हो तो देख ले। पर सारे कुत्ते गायब थे। ऐसा बहुत से गाँवो मे हुआ तब हमने रुककर गाँव वालो से इस बारे मे पूछना चाहा। हमे इस बात का आभास था कि यह अटपटा प्रश्न होगा और गाँव वाले भला क्या सोचेंगे इस बारे मे पर प्रश्न पूछते ही वे बोल पडे कि आजकल इस इलाके मे रेवडा (या लेवडा) घूम रहा है। बाँध के पार उसे कुछ लोगो ने पानी पीते देखा था। उन लोगो ने उसे भगाने की भी कोशिश की थी पर वह अपने स्थान से टस से मस

नही हुआ। उसकी हिम्मत देखकर उन लोगो की हिम्मत टूट गयी और वे वापस आ गये। अभी तक किसी मनुष्य़ या मवेशी पर रेवडे के आक्रमण की सूचना नही दर्ज की गयी है पर गाँव के कुत्ते एकाएक गायब हो रहे है। सारा शक रेवडे पर ही है और यह शक गलत भी नही है। गाँव वालो ने एक ही रेवडा देखा है पर हो सकता है कि दूसरे और भी इस प्रजाति के जीव गाँव के आस-पास हो। जिन गाँवो की बात मै कर रहा हूँ वो छत्तीसगढ की राजधानी से मात्र कुछ किमी की दूरी पर है।

घटारानी क्षेत्र मे मैने हुंर्रा के तांडव के बारे मे पहले लिखा है। वही हुंर्रा जिसे वन विभाग ने लकडबघ्घा घोषित किया था और जिसने दस से अधिक ग्रामीणो पर प्राणघातक हमला किया था। अंत मे उसने जमाही गाँव के अवधराम यादव पर आक्रमण किया था जिन्होने उस हुंर्रा को मार डाला था। घायलो से जब मैने बातचीत की तो उन्होने इसे हुंर्रा बताया था। जब मैने अपने डेटाबेस से उन्हे तस्वीरे दिखायी तो उन्होने लकडबघ्घा पर हाथ रखा। अंग्रेजी मे इसे हाइना (Hyaena hyaena) कहा जाता है। आपने डिस्कवरी जैसे चैनलो पर हाइना को देखा होगा और उसकी हँसी सुनी होगी। उसके जबडे बहुत मजबूत होते है। लकडबघ्घा हिन्दी शब्द है और हुंर्रा छत्तीसगढी। हाल ही मे मै दुर्ग जिले के गाँवो मे गया तो मुझे हुंर्रा शब्द भेडिये के लिये सुनने को मिला। हुंर्रा या होंर्रा की पहचान उन्होने सियार से आकार मे बडे जंगली जानवर के रुप मे की। जब मैने भेडिये की तस्वीरे उन्हे दिखायी तो उन्होने झट से इसकी पुष्टि कर दी। मैने बचपन से अपने पिताजी से होंर्रा शब्द भेडिये के लिये सुना था। एक बार जब वे साइकिल से गाँव से लौट रहे थे तो उनका सामना इस जानवर से हुआ था। वह रास्ते मे खडा था। उसने पिताजी के लिये रास्ता नही छोडा। उसकी ढिठाई देखकर पिताजी उस समय भय मिश्रित आश्चर्य मे पड गये थे।

अब सियार जिन्हे कोलिहा कहा जाता है, ही दिखायी देते है। भेडिये पूरी तरह से इस क्षेत्र से गायब हो चुके है। इससे चरवाहो को सबसे ज्यादा राहत मिली है। भेडियो की नजर मवेशियो विशेषकर बकरियो पर रहती है। पलक झपकते ही वे बकरी और भेडो को उठा ले जाते है। मुझे बचपन मे बताया जाता था कि चरवाहो की मुलाकात इनसे अक्सर होती थी। जिन गाँव वालो ने हुंर्रा को भेडिये के रुप मे पहचाना उन्होने लकडबघ्घा की पहचान रेवडे या लेवडे के रुप मे की। ये स्थानीय नामो मे बडी गडबड है।

दुर्ग जिले मे सियार डरपोक माने जाते है। वे मनुष्यो को देखते ही किनारा कर लेते है। वे मानव बस्ती से दूर निर्जन स्थानो मे रहते है। जबकि राज्य के घटारानी और दूसरे जंगली क्षेत्रो के सियार आक्रामक हो गये है। वे झुंड मे रहते है और पैदल चल रहे

ग्रामीणो को काटने के लिये बडी दूर तक दौडाते है। रात मे विशेषकर गोधूली बेला मे उनकी सक्रियता बढ जाती है। शौच के लिये निकले ग्रामीण बडा असहज महसूस करते है। गाँवो मे चलने वाली बाइक से भी ये सियार नही डरते है। बहुत बार बाइक सवारो को वापस आ जाना पडता है। संदर्भ साहित्यो मे जंगली जानवरो के व्यवहार के विषय़ मे जो बाते लिखी है अब वे बदल रही है। जंगली जानवरो का व्यव्हार क्षेत्र और वहाँ की परिस्थितियो के अनुसार तेजी से बदल रहा है। राज्य के तौरेंगा जलाश्य के पास इस बार जब वन्य प्राणी प्रेमी हिरणो की तस्वीरे लेने पहुँचे तो उन्हे बडा ही बुरा अनुभव हुआ। हिरणो ने गुस्से मे उन्हे काफी दूर तक दौडाया। जब वे अपनी जीप मे बैठ गये तब भी हिरणो ने उन्हे नही बख्शा। हिरण का यह व्यवहार संदर्भ ग्रंथो मे नही मिलता है।

भालू द्वारा महुआ या दूसरे वनोपज के एकत्रण करने गयी महिलाओ पर हमले की घटना अक्सर अखबारो मे छपती रहती है। भालू पुरुषो पर भी जबरदस्त हमला करते है पर सभी पुरुषो पर नही। यदि आप हष्ट-पुष्ट है या ऐसे दिखते है तो आपको डरने की जरुरत नही है। भालुओ ने अपने अनुभवो से सीखा है कि अच्छी कद-काठी के मनुष्य़ संघर्ष के दौरान उन्हे बहुत नुकसान पहुँचा सकते है। जबकि कमजोर और अशक्त मनुष्य़ जरा भी प्रतिरोध नही कर पाते है। भालू से सामना होने पर शक्ति का प्रदर्शन भी काम आता है। बारनवापारा अभ्यारण्य मे गर्मी के दिनो मे जंगली जानवरो के लिये बनाये गये तालाबो मे पानी भरने के लिये एक स्थानीय व्यक्ति की नियुक्ति की गयी थी। एक बार उस व्यक्ति से उसके जंगल के अनुभवो पर विस्तार से चर्चा हुयी। वह व्यक्ति बिना किसी हथियार के साइकिल मे जंगल मे भ्रमण करता है और उन स्थानो मे पानी भरने का काम करता है जहाँ सारे जानवर आते रहते है। उसने बताया कि भालू जब आते है तो वह तन कर खडा हो जाता है। यदि भालू आक्रामक़ मुद्रा मे हो और भागने की कोई गुंजाइश न हो तो वह अपनी साइकिल उठाकर जोर से जमीन मे पटक देता है। यह शक्ति प्रदर्शन काम आता है और मुठभेड टल जाती है। जंगल के ज्यादातर जीव संकट मे अपने आप को बडा करके दिखाते है और चेता देते है कि उनसे पंगा लेना महंगा पडेगा। मनुष्यो को भी ऐसा ही करना पडता है।

आज गाँव से आये हमारे खेतो मे काम करने वाले मदन ने चर्चा के दौरान खेखर्री नामक किसी जंगली जानवर का जिक्र किया जो "खे-खे" की आवाज निकालता है। उसने इसे गाँव मे सियारो के साथ देखे जाने की बात बतायी। यह सियार की तरह ही होता है पर सियार नही है। मैने उसे जंगली जानवरो की ढेरो तस्वीरे दिखायी पर वह उनमे खेखर्री

को नही ढूँढ पाया। जंगली जानवरो के स्थानीय नाम इंटरनेट मे नही मिलते है। अब मुझे गाँव जाकर इस जीव की पहचान करनी होगी। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-39

- **पंकज अवधिया**

ज़टिल रोगो की अंतिम अवस्था मे डुढुम और वनस्पतियो का पारम्परिक प्रयोग

हम जंगल के लिये निकले ही थे कि एक फोन आ गया।"आप तुरंत चले आइये, तालाब की सफाई के दौरान जो अनोखी मछली निकली थी वह फिर से मिल गयी है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। जल्दी आये, नही तो वह हाथो-हाथ बिक जायेगी। तालाब के बाहर चार-पाँच सौ रुपये नकद देकर लोग इसे ले जाने को तैयार है।" मैने गाडी मोडी और चल पडा उस ओर। राजधानी के धोबी तालाब मे इन दिनो सफाई चल रही है। अवैध कब्जो की मार से यह तालाब पूरी तरह खत्म हो चुका था। इसमे मानव बस्तियाँ बस गयी थी और शेष भाग मे जलीय खरपतवारो का आधिपत्य हो गया था। अब जब इसकी सफाई चल रही है तो न केवल नाना प्रकार की जलीय वनस्पतियाँ मिल रही है बल्कि मछलियाँ और बडे जलीय खरप्तवारो पर घोसला बनाकर रहने वाले पंछी भी मिल रहे है। यहाँ यदि जीव-विज्ञान के शोधकर्ता डेरा लगाकर बैठ जाये तो इतनी नयी जानकारियाँ मिल जायेंगी कि वे इस पर दर्जनो शोध-पत्र प्रकाशित कर सकते है। पर अफसोस यहाँ अभी तक कोई नही पहुँच पाया है।

तालाब की तीन चौथाई सफाई हो चुकी है। मै हर चार दिन मे वहाँ जाने की कोशिश करता हूँ। पिछली बार मुझे इस मछली मे बारे मे बताया गया था। मेरे पहुँचने से पहले वह बिक गयी थी। इतने सारे मोबाइल होने के बावजूद किसी ने उसकी तस्वीर नही खीची थी। इस बार मै मौका नही चूकना चाहता था।

मै जब तालाब पहुँचा तो मछली फिर से बेची जा चुकी थी। इस बार यह मछली साढे पाँच सौ मे बिकी। यह मेरा सौभाग्य था कि इस बार इसकी तस्वीर ले ली गयी थी। मुझे बताया गया कि इस मछली का सामने का हिस्सा सर्प की तरह है। इसे देखने से सर्प का

भ्रम हो जाता है। जब तक इस इसकी मछली जैसी पूँछ न देखो इसके सर्प होने का भ्रम बना रहता है। आमतौर पर यह जाल मे नही फँसती है। जब कभी गल्ती से फँस जाती तो हाथो हाथ बिक जाती है। तस्वीर देखने से साफ पता चल रहा था कि इसकी संरचना इसे साधारण जाल मे फँसने नही देती है।

मुझे याद आता है कि विद्यार्थी जीवन मे जब गाँव जाना होता था तब मछली पकडने के लिये गरी डालकर नदी मे बैठे बच्चो को कभी-कभार यह मिल जाती थी। नये लोग घबराकर इसे छोड देते थे। रुके पानी मे यह मुश्किल से मिलती है जबकि बहती नदी-नालो मे ये अधिक संख्या मे होती है। रायपुर शहर के मध्य तालाब मे इसका मिलना दुर्लभ घटना थी। मेरे लिये भी और मछुआरो के लिये भी।

जंगल यात्रा के दौरान नाना प्रकार की मछलियो के बारे मे रोचक जानकारियाँ मिलती ही रहती है पर शाकाहारी होने के कारण उतने ध्यान से मै इन्हे एकत्र नही कर पाता हूँ जितने ध्यान से इन्हे खाने वाले इन जानकारियो मे रुचि लेते है। मेरे पिछले ड्रायवर का मछली पकडना पुश्तैनी व्यवसाय था। उसके पिता उसके लिये एक से बढकर एक मछली लेकर आते थे। जब दिन के अंत मे मै उसे कुछ पैसे देना चाहता तो वह तुरंत बाजार जाकर मछली ले आता था। उसके साथ के कारण मैने मछलियो के विषय मे बहुत सी जानकारियाँ एकत्र की। पारम्परिक चिकित्सा मे मछलियो का प्रयोग होता है और इस विषय मे पारम्परिक चिकित्सको के पास ज्ञान का भंडार है।

मुझे आशा थी कि देश भर मे मछलियो पर इतने बडे-बडे शोध संस्थान होने के कारण मछलियो के औषधीय गुणो पर विस्तार से लिखा गया होगा पर सन्दर्भ साहित्यो मे इस विषय मे बहुत कम जानकारी मिलती है। कुछ शोधकर्ताओ ने यह लिखकर छोड दिया है कि फलाँ प्रजाति फलाँ रोग मे काम आती है पर इसकी प्रयोग विधि और प्रयोग के समय बरती जाने वाले सावधानियो के विषय मे कुछ भी नही लिखा। इस कमी ने मुझे प्रेरित किया कि मै मछलियो के विषय मे जितना सम्भव हो उतनी जानकारी एकत्र करुंगा। एक दशक से भी अधिक समय से मछलियो पर लिखने के कारण इस पर इतने अधिक सन्दर्भ दस्तावेज उपलब्ध हो गये है कि अब देशी-विदेशी संस्थानो मे शोधरत वैज्ञानिक मुझे "मछली विशेषज्ञ" भी मानने लगे है। पर मै इसे स्वीकार नही करता क्योकि बिना मछली खाये भला कैसा मछली विशेषज्ञ?

क्षय रोग की वह अवस्था जब मुँह से खून आने लगता है आम लोग डुढुम नामक मछली को खिचडी के साथ खाने की सलाह देते है। इससे लाभ तो होता ही होगा पर पारम्परिक

चिकित्सक इस विषय मे अधिक जानकारी रखते है। वे भी डुढुम का ही प्रयोग करते है पर वनस्पतियो के साथ। खिचडी के स्थान पर औषधीय धान का प्रयोग किया जाता है। औषधीय धान को पकाते समय उसमे नाना प्रकार की औषधीयाँ डाली जाती है और पकाने के बाद पर परोसने से पहले भी वनस्पतियो का सत्व मिलाया जाता है। वे बताते है कि केवल डुढुम का प्रयोग सभी रोगियो को लाभ नही पहुँचाता है। इसलिये रोगी की दशा और जीवनी शक्ति के आधार पर नाना प्रकार की वनस्पतियो को मिलाया जाता है। इनमे से ज्यादातर वनस्पतियाँ डुढुम के औषधीय गुणो को बढाने का कार्य करती है।

आमतौर पर रोग की इस जटिल अवस्था मे रोगी के लिये 75 दिनो का उपचार निर्धारित किया जाता है। इन 75 दिनो मे 55 दिनो तक डुढुम रोगी के नियमित भोजन का हिस्सा रहती है। किसी भी दिन डुढुम को अकेले नही खिलाया जाता है। पहले दिन डुढुम को दो वनस्पतियो के साथ दिया जाता है, दूसरे दिन दो और वनस्पतियाँ जोड दी जाती है, तीसरे दिन दो और, इस तरह यह क्रम 15 दिनो तक चलता है। उसके बाद रोगी की दशा की समीक्षा की जाती है। इस आधार पर आगे के लिये डुढुम और अन्य वनस्पतियो का मिश्रण सुझाया जाता है।

देश भर मे डुढुम को अलग-अलग नामो से जाना जाता है। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भी ऐसे पारम्परिक चिकित्सक हमारे बीच है जो डुढुम का प्रयोग क्षय रोगो की चिकित्सा मे सफलतापूर्वक कर रहे है। उन्होने समय के साथ अपने उपचार मे कुछ परिवर्तन किये है। औषधीय धान अब मुश्किल से मिलते है। साथ ही लम्बे समय तक डुढुम की प्राप्ति भी एक समस्या है। डुढुम के साथ प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ बहुतायत मे है पर फिर भी पारम्परिक चिकित्सक उपचार की मूल विधियो को कम ही अपनाते है। मुझे लगता है कि इस पारम्परिक उपचार विधि को फिर से पुनरजीवित करने की आवश्यक्ता है।

रायपुर के तालाब से पकडी गयी मछली डुढुम ही थी पर तस्वीर से यह साफ लगता था कि वह स्वस्थ्य नही है। प्रदूषित तालाब मे शायद उसे सही पोषण नही मिला होगा। चूँकि यह धोबी तालाब था इसलिये डिटरजेंट इसके पानी मे काफी मात्रा मे घुला हुआ था। बाद मे जब मैने यह तस्वीर पारम्परिक चिकित्सको को दिखायी तो उन्होने इस बात की पुष्टि की कि यह खाने योग्य नही है। जब उन्होने सुना कि किसी ने साढे पाँच सौ मे एक मछली खरीदी है तो वे बोले पडे कि इतने पैसे देकर वह कई बीमारियो को अपने घर ले गया है, अनजाने मे ही।

इस लेख को लिखने से पहले मै अपने डेटाबेस मे उन नुस्खो की गिनती कर रहा था जिनमे किसी न किसी रुप मे डुढुम को डाला जाता है। आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि कुल नुस्खो की संख्या नौ हजार तीन सौ दस निकली। मुझे विश्वास है कि डुढुम पर आधारित हजारो नुस्खे आज भी दस्तावेजीकरण की बाट जोह रहे होंगे। इन नुस्खो से सम्बन्धित ज्ञान को विलुप्त होने से हमे ही बचाना होगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-40

- **पंकज अवधिया**

मिट्टी के फल, सर्प विष का भोग और मणि के ऊपर उगता जामुन

"आपको हमारे साथ जंगल चलना ही है तो आज डोंगर के उस पार चलते है जहाँ वृक्षो पर मिट्टी के फल लटके होंगे।"पारम्परिक चिकित्सक की बात सुनकर अचरज हुआ। भला वृक्षो मे मिट्टी के फल कैसे फलेंगे? मै तैयार हो गया। गाडी किनारे पर खडा करके चाबी ड्रायवर के हवाले की और पारम्परिक चिकित्सक के पीछे-पीछे चल पडा। हम जिस डोंगर की ओर बढ रहे थे वह वृक्ष विहीन था। केवल शीर्ष पर एक चिरईजाम यानि जामुन का वृक्ष लगा हुआ था। पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि पीढीयो से लोग यह मानते है कि शीर्ष पर स्थित इस वृक्ष के नीचे दो मणियाँ है। इसी मान्यता के कारण इसकी पूजा की जाती है। अब सब तो इतनी ऊँचाई पर नही पहुँच पाते है इसलिये नीचे से ही पूजा हो जाती है। इस वृक्ष ने बहुत से तूफान झेले है पर फिर भी बिना किसी परेशानी के उग रहा है। हमे यह आश्चर्य होता है कि इस पथरीले डोंगर मे इसे पानी कहाँ से मिलता होगा?

मणि वाली मान्यता ने दूर-दूर से धनी लोगो को सदा ही आकर्षित किया है। धनी पैसे लुटाने की तैयारी से आते है और वृक्ष का सौदा करने लगते है। वृक्ष को हटाने के बाद ही तो मणि निकलेगी। स्थानीय लोग इस काम के लिये तैयार नही होते है। बाहरी मजदूर आते है तो सारी बाते पता चलने पर वे वापस लौट जाते है। अब धनी खुद तो शीर्ष पर जाकर यह काम नही कर सकते है।

पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि मणि की बात से ज्यादा उन्हे इस जामुन के पेड के औषधीय गुणो मे विश्वास है। ज्यादातर नदी या दूसरे जलस्त्रोतो के पास जामुन प्राकृतिक रुप से उगता है। आप कुल्लु और सलिहा जैसे वृक्षो जो कि पथरीली जमीन पसन्द करते है, के साथ जामुन को कम ही पायेंगे। ऐसे जामुन के फल मे विशेष औषधीय गुण होते है। हम समर्थ व्यक्तियो को शीर्ष पर भेजकर अपने आप गिरे फलो को एकत्र करवा लेते है। फलो का गूदा और गुठली निकालकर फेक देते है और केवल पतले छिलके को रख लेते है। इस छिलके को नीम की छाँव मे सुखाकर साल भर प्रयोग के लिये रख लिया जाता है। हम नाना प्रकार के औषधीय मिश्रणो मे इस छिलके को डालते है। केवल छिलके भी औषधि की तरह देते है। हमारे साथ मजबूरी यह है कि ऐसा एक ही वृक्ष है और साल मे कुछ फल ही मिल पाते है। हमने इस वृक्ष को फैलाने की बहुत कोशिश की पर सफल नही हो पाये। बहुत से फल वही पडे रह जाते है पर उस पथरीली जमीन मे उग कर नये पौधे नही बन पाते है। पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि आपको आज छिलके का स्वाद चखने का अवसर मिलेगा। मै मन ही मन बडा प्रसन्न हुआ।

काफी दूर चलने के बाद हम डोंगर के दूसरी ओर पहुँचे। सुनसान क्षेत्र था। नाना प्रकार की चिडियो की आवाज आती थी। टूटे हुये भिम्भौरे साफ संकेत दे रहे थे कि वहाँ भालू आते थे। किसी मरे हुये जानवर की बदबू भी आ रही थी। मुझे बताया गया कि किसी माँसाहारी ने ताजा शिकार कल रात या आज सुबह किया होगा। बहुत से साँप भी दिखे जो कि उमस से बैचैन होकर बिलो से बाहर आ गये थे। शायद और भी बहुत से जीव हो जो हमे देख रहे हो पर किसी को हमारी परवाह नही थी। हम एक वृक्ष के पास रुके। मैने उसकी पहचान बबूल की एक जाति के रुप मे की। पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि यह गौहर का वृक्ष है। यह मेरे लिये नया नाम था। मैने अब तक इस वृक्ष के दसो स्थानीय नाम सुने थे पर यह एकदम नया था। खैर, नाम मे क्या रखा है। मैने सिर उठाया तो सचमुच मुझे ढेरो मिट्टी के फल दिखायी दिये। नियम से तो इस वृक्ष मे फल्लियाँ लगी होनी चाहिये थी पर हर शाखा मे मिट्टी की गोल-गोल आकृति लटक रही थी। कहने को तो ये फल कहे जा सकते थे पर वास्तव मे ये फल नही थे।

कुछ वर्षो पहले मैने पहली बार इन तथकथित मिट्टी के फलो को देखा था। उस समय मै दुर्ग जिले के पारम्परिक चिकित्सको के साथ था। उन्होने बताया था कि यह मिट्टी का ढेला वृक्षो की शाखाओ से बन्धा रहता है। आम लोग समझते है कि ये किसी कीडे ने बनाया होगा पर जब इन्हे तोडा जाता है तो इनके अन्दर से कुछ नही निकलता है। न ही कीडे और न ही उनके अंडे। पारम्परिक चिकित्सक इन्हे एकत्र करते थे और पानी मे

उबालकर काढा बनाते थे। इस काढे का बाहरी और आँतरिक उपयोग वात रोगो की चिकित्सा मे किया जाता था। मैने प्राचीन भारतीय ग्रंथो और आधुनिक वैज्ञानिक साहित्यो को खंगाल डाला पर कुछ भी जानकारी नही मिली।

उस समय मैने तस्वीरे खीची और दुनिया भर के वैज्ञानिक मित्रो को भेजी। विश्व खाद्य संगठन मे काम करने वाले पौध-रोग विशेषज्ञ मित्रो ने आशंका जाहिर की कि यह मिट्टी न होकर वृक्ष द्वारा किसी रोग की प्रतिक्रिया मे बनायी गयी संरचना है। उन्होने विस्तार से ली गयी तस्वीरे माँगी। मैने फिर से उस स्थान का दौरा किया और सारी तस्वीरे लेकर लौटा। उन्होने तुरंत पुष्टि कर दी कि यह यूरोमाइक्लेडियम नामक कवक की करामात है। उन्हे यह जानकर घोर आश्चर्य हो रहा था कि इसका औषधीय उपयोग है। उन्होने बताया कि दुनिया भर की अकेसिया प्रजाति मे इसका आक्रमण होता है। पर कही भी इसका प्रयोग औषधि के रुप मे नही होता है। मैने मित्रो को धन्यवाद दिया है। यह मेरे लिये बडी ही उपयोगी जानकारी थी। बाद मे अपने सर्वेक्षणो के दौरान मैने परसा सहित बहुत से जंगली वृक्षो मे ऐसी संरचनाए देखी। अलग-अलग क्षेत्र के पारम्परिक चिकित्सक अलग-अलग विधियो से इनका प्रयोग करते है।

इस जंगल यात्रा के दौरान इस संरचना को गौहर के वृक्ष पर देखकर पुरानी यादे ताजा हो गयी। मैने पारम्परिक चिकित्सक को यूरोमाइक्लेडियम के बारे मे बताना चाहा पर फिर यह सोचकर रुक गया कि उन्हे भला इससे क्या मतलब? मैने इन संरचनाओ को एकत्र करने मे मदद की और जल्दी ही हम वापस लौट आये। वापस आकर पारम्परिक चिकित्सक ने संरचनाओ को तोडा और फिर चूर्ण को धूप मे सुखाया। अब साल भर वे स्त्री रोगो की चिकित्सा मे इसका प्रयोग करेंगे। वायदे के अनुसार उन्होने मुझे विशेष जामुन के फलो के छिलके खिलाये और कहा कि इससे आपकी स्मरण शक्ति बढेगी। मैने उनका आभार व्यक्त किया।

22 जुलाई को उन्होने अपने घर आमंत्रित किया है। उस दिन उनके चेले बडी संख्या मे उपस्थित होंगे और विषैले सर्पो का जहर निकाला जायेगा। इस जहर की पूजा की जायेगी और फिर चेले को इसे भात के साथ मिलाकर खिलाया जायेगा। यह सच है कि यदि आपके मुँह मे छाले न हो और पाचन तंत्र के मे किसी तरह की चोट न हो तो मुँह के रास्ते भात के साथ जहर खाने से यह नुकसान नही करता है। मैने "अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग" नामक लेखमाला मे लिखा है कि कैसे गणेश नामक सर्प विशेषज्ञ अपने चेलो को विशेष दिन भात मे मिला कोबरा का जहर खिलाते है। सर्प विशेषज्ञ हो या

पारम्परिक चिकित्सक, विष का सेवन करके वे कुछ सिद्ध नही करना चाहते है। वे तो बस अपनी परम्परा निभाते है।

मैने देखा है कि आजकल के गुटखा खाने वाले मुँह जो कि अन्दर के कटे-फटे होते है गुरु से मिले जहर युक्त भात को मजे से खा जाते है। उनपर बुरा असर नही होता है। यदि किसी को जहर चढता है तो जडी-बूटियो से स्थिति को सम्भाल लिया जाता है। मुझे याद आता है कुछ वर्षो पहले मैने जहर को इस रुप मे ग्रहण किया था। जीभ कटी हुयी थी। जहर ने असर दिखाया और गर्मी लगने लगी। सिर घूमने लगा। मुझे बहुत से कन्दो को चबाने को कहा गया और ढेर सा घी पिलाया गया। काफी देर के बाद स्थिति सम्भली। मुझे बस यही डर था कि कही मेरे दिमाग रुपी हार्ड डिस्क मे दर्ज बाते कही गडमड न हो जाये पर शुक्र है, ऐसा हुआ नही।

मैने पारम्परिक चिकित्सक को 22 जुलाई को आने का आश्वासन दिया। मैने शहर से कुछ मँगाने के बारे मे पूछा तो उन्होने पाँच आम के पौधे लाने को कहा जिसे मैने सहर्ष स्वीकार लिया। अब बेसब्री से उस दिन का इंतजार है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-41

- **पंकज अवधिया**

धनी रोगियो से घिरते पारम्परिक चिकित्सक और शार्ट-कट उपचार की बाध्यता

"बडे होकर क्या बनोगे?" एक प्रसिद्ध पारम्परिक चिकित्सक के तीन पोतो के सामने मैने यह प्रश्न रखा तो वे तुरंत बोल पडे कि हम तो बाबा का काम करेंगे। बाबा मतलब पारम्परिक चिकित्सक। यह जवाब किसी भी पारम्परिक चिकित्सक को प्रसन्न कर सकता है। मुझे याद आता है कि जब 1990 के आस-पास मैने वानस्पतिक सर्वेक्षण का कार्य शुरु किया तब पारम्परिक चिकित्सक अपने ज्ञान के भविष्य को लेकर बहुत चिंतित थे। उस पारम्परिक चिकित्सको को कोई सम्मान नही मिलता था। यह कार्य पैसे कमाने के लिये नही था इसलिये बच्चो का कैरियर नही बन सकता था। फिर गाँव के लोग ही

पारम्परिक चिकित्सको के पास आते थे। पारम्परिक चिकित्सको को डर था कि कही बच्चे उनके ज्ञान को बेच न दे। पर आज हालात वैसे नही है।

इस जंगल यात्रा के दौरान मै दो ऐसे पारम्परिक चिकित्सको से मिला जिन्हे दम मारने की फुरसत नही है। एक पारम्परिक चिकित्सक किसी रोगी को देखने पास के शहर गये थे। सुदूर गाँव मे उनके घर के सामने दसो गाडियाँ खडी थी। ये गाडियाँ उन मरीजो की थी जो पारम्परिक चिकित्सक के आने का इंतजार कर रहे थे। हमे घर से काफी दूर गाडी खडी करनी पडी। पार्किंग की समस्या जो थी। इतनी भीड तो शहरी डाक्टरो के दवाखानो के सामने भी कम ही दिखती है। हम भी कतार मे लग गये।

पास मे एक बूढी माँ बैठी हुयी थी। पता चला कि वे पारम्परिक चिकित्सक की माँ थी। मैने उनसे बात करने का अवसर नही गँवाया। उनके पति यानि पारम्परिक चिकित्सक के पिता क्षेत्र के जाने-माने पारम्परिक चिकित्सक थे। उन्होने राज परिवारो को भी अपनी सेवाए दी थी। उस समय सारी दवाए जंगल की जडी-बूटियो से बनती थी। वे लगभग सारे रोगो की चिकित्सा करते थे। उस समय क्षेत्र मे बहुत जंगल थे और जंगली जानवर दिन मे गाँव मे आ जाते थे।

बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक के सौ से ज्यादा चेले थे पर वे अपना सारा ज्ञान अपने बेटे को देना चाहते थे। पर बेटा इसके लिये तैयार नही था। उसने सिर्फ तीस रोगो के बारे मे ज्ञान अर्जित किया। शेष ज्ञान बुजुर्ग ने अपनी पत्नी को दे दिया। जैसे-जैसे पत्नी की आयु बढी उस ज्ञान को व्यवहार मे न लाने के कारण वे सब भूलती गयी। इस तरह महत्वपूर्ण पारम्परिक ज्ञान समाप्त हो गया। अब तो बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक हमारे बीच नही है पर उनके अधेड बेटे ने तीस रोगो के लिये मोर्चा खोल रखा है। इन्ही से मिलने हम आये थे।

मेरी उनसे दर्जनो बार मुलाकात हो चुकी है। वे इतनी भीड के बावजूद खुद होकर पैसे नही माँगते है। कोई पैसे देने की जिद करता है तो उसे घर के मन्दिर मे अर्पित करने की बात करते है। यह पैसा दवाओ के लिये खर्च होता है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर चुके उनके बच्चे बेरोजगार है। वे अपना पिता को अच्छा व्यवसायी नही मानते है। उन्हे लगता है कि यदि थोडे भी पैसे लिये जाये तो कुबेर का खजाना हाथ लग सकता है। बचपन से जिन्होने जिस काम को हेय दृष्टि से देखा था अब वे इस काम को अपनाना चाहते है। निस्वार्थ सेवा के लिये नही बल्कि इससे धानार्जन करने के लिये। जिस पारम्परिक चिकित्सक की चर्चा मै यहाँ कर रहा हूँ उनके तीनो बेटे सिर्फ सात रोगो की चिकित्सा

का ज्ञान सीखना चाहते है। वह भी शार्ट कट मे। मैने जब उनसे बातचीत की तो उनकी रुचि महंगे मोबाइल, बडी कारो और आलीशान घर मे दिखी, पारम्परिक ज्ञान पर उनकी पकड सतही थी। ये शुभ लक्षण नही है। पारम्परिक चिकित्सक भी इस बात को जानते है पर उन्हे इस बात की तसल्ली है कि कम से कम उनके बच्चे इसमे रुचि तो ले रहे है।

1000 जीबी से अधिक आकार की मधुमेह की जो वैज्ञानिक रपट मै तैयार कर रहा हूँ उसमे मैने विस्तार से पारम्परिक चिकित्सा विधियो का वर्णन किया है। उदाहरण के लिये मधुमेह की जटिल अवस्था मे पारम्परिक चिकित्सक अपने दिमाग मे 200 दिनो की कार्ययोजना बनाते है। यानि 200 दिनो तक रोगी को कौन-कौन सा उपचार दिया जाना है। मैने पहले लिखा है कि जब पारम्परिक चिकित्सको के इस ज्ञान को कागजो पर लिखने का प्रयास किया जाता है तो 200 दिनो की केवल एक कार्य योजना को लिखने मे हजारो पन्ने रंग जाते है। पारम्परिक चिकित्सक ऐसी दस से बारह कार्ययोजनाए मन मे रखते है। रोग की अवस्था के अनुसार अलग-अलग कार्ययोजनाओ को लागू करते रहते है। यह बडा ही अद्भुत तरीका है चिकित्सा का। पर मधुमेह की चिकित्सा के लिये 200 दिनो तक पूरे नियम कायदो से कोई भी चिकित्सा करवाने को तैयार नही होता है। पारम्परिक चिकित्सको पर दबाव होता है कि वे कोई ऐसा मिश्रण दे जिससे तुरंत असर दिखे। यदि असर नही दिखा तो रोगी तुरंत दूसरे पारम्परिक चिकित्सको के पास चला जायेगा। ऐसे मे या तो पारम्परिक चिकित्सक हाथ जोडकर साफ मना कर देते है या फिर पारम्परिक विधियो को ताक मे रखकर प्रभावी मिश्रण देने का मन बना लेते है। पारम्परिक चिकित्सको की नयी पीढी इसी तात्कालिक लाभ वाले मिश्रणो को जानना चाहती है। ऐसे मिश्रण कुल ज्ञान रुपी सागर की कुछ बून्दो के समान है। मुझे डर है कि यह परम्परा दिव्य ज्ञान को सदा के लिये समाप्त कर देगी।

जंगल विभाग के एक बैरियर मे हमे रोक लिया गया और कहा गया कि गाडी की जाँच होगी। हमे कोई परेशानी नही थी। जाँच के बाद आश्वस्त होकर उन्होने हमे हरी झंडी दिखा दी पर हम कहाँ जाने वाले थे। हम सालो से जंगल मे घूम रहे थे पर कभी ऐसी चेकिंग नही हुयी थी। हमे बताया गया कि इस क्षेत्र मे लगातार हर गाडी की चेकिंग होती है। क्यो? जवाब चौकाने वाला था। हमे बताया गया कि शहर से छोटी गाडियाँ बडी संख्या मे आती है और दुर्लभ जडी-बूटियो को खोदकर ले जाती है। शहरी लोग किसी पारम्परिक चिकित्सक के गाँव के आस-पास की सारी जडी-बूटियो के नमूने ले जाते है। उन्हे लगता है कि इस तरह उन्होने सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। पर यह उनका भ्रम ही

है। शहरियो का यह कार्य पारम्परिक चिकित्सको के लिये परेशानी पैदा करता है। उन्हे वनस्पतियो के लिये काफी दूरी तय करनी पडती है।

बहुत से पारम्परिक चिकित्सको ने राजधानी मे घर ले लिया है, बहुत से हवाई यात्रा के दौरान मिल जाते है, रेल की उच्च श्रेणियो मे भी वे दिख जाते है। दुनिया भर से आ रहे सन्देश कहते है कि ऐसा केवल छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको के साथ होता है क्योकि उनके बारे मे काफी कुछ लिखा जा रहा है। हाल ही मे राजस्थान के पारम्परिक चिकित्सको के एक दल ने मुझसे सम्पर्क किया कि वे छत्तीसगढ आकर यहाँ के पारम्परिक चिकित्सको से कुछ सीखना चाहते है। उन्हे लगता था कि उनके क्षेत्र मे उतनी महत्वपूर्ण जडी-बूटियाँ नही है जितनी कि छत्तीसगढ मे है। मैने उन्हे समझाया कि हम सौभाग्यशाली है कि भारत मे जहाँ भी खडे हो जाइये आपको चारो ओर जडी-बूटियो का खजाना बिखरा मिलेगा। आपका छत्तीसगढ मे स्वागत है पर आप अपने क्षेत्र के पारम्परिक ज्ञान की भी कद्र करे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-42

- **पंकज अवधिया**

किंग खान की सी शैतानी हँसी हँसने वाले भूत का पर्दाफाश

वैसे ही सावन के लगते ही भूतो के आगमन की सूचना मिलती रहती है। सूचना मिलते ही वहाँ जाना होता है और फिर वैज्ञानिक आधार पर सच का खुलासा करना होता है। जब आम लोगो को यह विश्वास हो जाता है कि यह भूत मन का भूत था तभी वापसी होती है। बरसात के दिनो मे बहुत से भू-भागो को दूर से देखा जा सकता है पर पानी भरा होने के कारण वहाँ जाया नही जा सकता है। मन के भूत ऐसे ही स्थानो मे रहते है। हमे जोखिम उठाकर वहाँ जाना होता है तभी उनका अस्तित्व समाप्त होता है। ज्यादातर मामलो मे तो यह प्राकृतिक घटना होती है। जबकि कुछ ऐसे मामले भी होते है जिसमे भूत प्रचारक निर्जन स्थानो मे डेरा डाले रहते है और सारे प्रपंचो के माध्यम से हमे वहाँ आने से रोकते है। कहते है कि उधर देखने मात्र से ही अन्धे हो जायेंगे। कदम बढाया तो भस्म हो जायेंगे। पर फिर भी उस ओर बढते है तो नाना प्रकार की आवाजे निकाली

जाती है। टीवी पर भूत वाले धारावाहिक देख-देख कर इन आवाजो की इतनी आदत पड गयी है कि अब ये नही डराती। कुछ और बढने पर जलते कोयले के टुकडे फेके जाते है। यह तो सरासर अपराध है। हम तेज आवाज मे भूत प्रचारक को हडकाते है कि यदि हमे कोयला लगा तो उसकी खैर नही। फिर कोयले आने रुक जाते है। चूँकि हम अकेले होते है और आम लोग दूर ही रहते है, भूत प्रचारक अंतिम विकल्प मे रुप मे अपनी गरीबी का बहाना करते है और फिर अचानक अमीर होकर ढेर से रुपये निकालकर समझौते का आफर देते है।

कुछ दिनो पहले पास के एक निर्जन स्थान से शैतानी हँसी सुनायी देने की खबर आयी तो मुझे लगा कि यह भी ऐसा ही मामला होगा पर वहाँ पहुँचने पर स्थिति दूसरी ही नजर आयी। क्षेत्र मे हल्ला था और अफवाह का बाजार गर्म था कि पूजा-पाठ न होने के कारण देवता नाराज है और भाँति-भाँति की आवाज निकालकर भय उत्पन्न कर रहे है। रात को शौच के लिये खेतो की ओर जाते हुये लोगो ने ये आवाजे सुनी थी और उल्टे पैर वापस लौट आये थे। हँसी एकदम शैतानी हँसी थी। कुछ लोगो ने ऐसी हँसी जीवन मे पहली बार सुनी थी।जबकि कुछ ने धार्मिक धारावाहिको मे ऐसी हँसी सुनी थी। यह सब सुनकर हमे पक्का यकीन हो गया कि किसी भूत प्रचारक का यह काम है। निश्चित ही अब जल्दी ही कोई तांत्रिक गाँव मे आयेगा और इस हँसी के आधार पर ग्राम शांति के लिये पूजा-पाठ करवायेगा। हो सकता है तीन-चार अबलाए भी इनके चंगुल मे फँस जाये और उन्हे ही इन करतूतो के लिये उत्तरदायी मान लिया जाये। अबलाए इसलिये कहा क्योकि जिनकी रक्षा कोई नही कर पाता वे ही जादू-टोना करने वाली ठहरा दी जाती है।

हमे बताया गया कि हँसी रात को ही सुनायी देती है। सो, देर रात जंगल से लौटते हुये हमने इस क्षेत्र की ओर गाडी मोड ली। साथ मे जंगल क्षेत्र से आया एक वनवासी भी था जिसे शहर के अपने रिश्तेदार से मिलना था। हम निकटम गाँव पहुँचे तो सन्नाटा बिखरा हुआ था। हमने पान वाले से इस बारे मे पूछा तो उसने झट से कहा कि सिने अभिनेता शाहरुख खान ने जिस अन्दाज मे क-क-किरण का कहा था और फिर लम्बी हँसी निकाली थी, उसी अन्दाज मे पास के नाले से यह आवाज आती है। ड्रायवर ने तुरंत उसे मजाक न करने की सलाह दी पर साथ चल रहे वनवासी और मुझे लगा कि जैसे हमने भूत को जान लिया है। फिर भी हमने नाले तक जाकर उसे देखने की इच्छा दिखायी।

हमारे साथ कोई जाने को तैयार नही हुआ। हमने बडी वाली जंगल टार्च निकाली ओर उस ओर बढ चले। यदि हमारा शक सही था तो ज्यादा पास जाना खतरनाक था। जलते

कोयले का डर नही था बल्कि जान का खतरा था। जो आवाज आ रही थी वह हाइना यानि लकडबघ्घा की थी।

नाले के उस पार हमे दो चमकती हुयी आँखे दिखायी दी। वो हमे ही घूर रही थी। आवाज तेज हो गयी थी। वह लकडबघ्घा ही था। मुझे याद आ रहा था कि इसके कुल वजन का दस प्रतिशत वजन ह्रदय का होता है। यह ह्रदय लम्बी दूरी तक शिकार का पीछा करने मे मदद करता है। यदि यह हमारे पीछे लग जाता तो हम पैदल ज्यादा नही भाग पाते। नाला सूखा था इसलिये पलक झपकते ही वह पास आ सकता था। हमने वापस आकर रेवडा यानि लकडबघ्घा के बारे मे पूछताछ की तो पता चला कि एक रेवडा कुछ दिन से आस-पास घूम रहा है। जंगल से दूरी के कारण वर्तमान पीढी ने न ही रेवडा को कभी देखा और न ही इसकी भयानक हँसी सुनी। लकडबघ्घे की हँसी का जिक्र आधुनिक साहित्यकार करते रहते है पर उनमे से शायद ही किसी ने असल जिन्दगी मे इसे सुना होगा। वैसे बीबीसी के हवाले से छपी एक खबर मे यह बताया गया था कि वरिष्ठता के आधार पर अलग-अलग आवृत्ति की आवाजे ये वन्यजीव निकालते है। इन आवाजो को काफी दूर से सुना जा सकता है। हमने गाँव वालो को असलियत बतायी तो वे काफी देर तक हँसते रहे। पान वाले ने आवाज की नकल दोहरायी तो ठहाको का जोर बढ गया। मन के भूत के पनपने से पहले ही उसका पर्दाफाश हो गया। मैने गाँव वालो से कहा कि आप क्षेत्र मे इस बारे मे ज्यादा से ज्यादा लोगो को बताये ताकि मन का यह भूत फिर से सर न उठाये। मेरे मन मे यह विचार आया कि वन्य-जीवो की आवाजो की एक रिकार्डिंग हमेशा अपने साथ रखूँ ताकि ऐसे मौके पर उन्हे सुनाकर लोगो की जिज्ञासा शांत कर सकूँ। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-43

- **पंकज अवधिया**

जाने किसे झेलना होगा मुम्बई मे कृत्रिम वर्षा के प्रयोग का अभिशाप?

कौन-कौन से वृक्ष वर्षा कराते है? इस प्रश्न का जवाब मै सालो से खोज रहा हूँ पर जवाब के रुप मे जिन वृक्षो की सूची मुझे मिल रही है वे जंगल मे खोजे नही मिल रहे है। कुछ

हफ्तो पहले मुझे पारम्परिक चिकित्सक एक ऊँची पहाडी पर लेकर गये और एक बहुत ऊँचा वृक्ष दिखाया। वे बोले, ये कैम का वृक्ष है। इस जंगल मे यह एकमात्र वृक्ष है। यह पानी बरसाता है। आप जिस भी जंगल मे इसे अधिक संख्या मे पायेंगे वहाँ आपको अच्छी वर्षा वाले आँकडे मिलेंगे। पहले हमारे जंगलो मे भी यह बडी संख्या मे था पर आधुनिक मानव समाज की लालची निगाहो से यह नही बच पाया। स्वयम जंगल विभाग ने तीन बार इस जंगल को लकडी के लिये काटा है। यह वृक्ष पहाडी पर था इसलिये बच गया। "देखिये यह कितना मोटा और ऊँचा है।" यदि आज हम इसका पौधा लगाये तो कई दशक लगेंगे इस आकार का वृक्ष तैयार होने मे। पर आज इसका जंगल लगाने से कई दशको के बाद पानी की समस्या नही रहेगी।

पारम्परिक चिकित्सको की बात सुनकर मुझे उडीसा के नियमगिरि की याद आ गयी। यहाँ भी बडी संख्या मे कैम के वृक्ष थे। इन्हे स्थानीय भाषा मे कदम कहा जाता है। यह कृष्ण-कन्हैया वाला कदम नही है। नियमगिरि पर्वत अपनी अच्छी वर्षा के कारण नाना प्रकार की वनस्पतियो और वन्य जीवो को आश्रय दिये हुये था। यहाँ से कई नदियाँ निकलती है जो असंख्य लोगो की प्यास बुझाती है और फिर भी इनका पानी कम नही होता है। इन नदियो पर मैदानी भागो मे बडे-बडे बाँध बने हुये है। असंख्य किसान इन नदियो के सहारे है और ये नदियाँ कैम जैसे बरसात लाने वाले वृक्षो पर निर्भर है। केवल कैम ही सक्रिय भूमिका नही निभाता है। कैम के साथ नियमगिरि मे साल के जंगल है। महुआ के साथ बडे पुराने पीपल है। इन सब का मिश्रण बादलो को आकर्षित करता है।

जंगल मे मै लगातार जा रहा हूँ। बरसात मे रोज देर दोपहर जंगल मे पानी बरसता ही है। पानी की बौछारे देर तक साथ चलती रहती है पर शहर के पास आते ही रुठ कर वही रुक जाती है। कितना भी मनाने की कोशिश करो, वे आगे नही बढती है। मुझे याद आता है अपना छात्र जीवन जब मै छुटियो मे जगदलपुर चला जाया करता था। सुबह से जडी-बूटी एकत्र करता था और स्थानीय मार्गदर्शको के साथ घूमता रहता था। पर शाम होते ही हमे लौटना पडता था। रोज शाम को बारिश जो हो जाती थी। यह सिलसिला पूरी गर्मी चलता था। अल सुबह गर्मियो मे चादर ओढने की जरुरत पडती थी। आज मेरा मन उस शहर मे जाने को नही करता है। जंगल तेजी से विकास की भेंट चढ गये। एक विशेष प्रकार का जंगल अभी भी बढ रहा है और वह है कांक्रीट जंगल। अब तो साल भर शहर को ठंडा रखना होता है। एसी की जरुरत साल भर होती है। यह जरुरत बढने ही वाली है क्योकि वहाँ बडी-बडी भठ्ठियाँ लगने वाली है लोहे को गलाने के लिये। पता नही तब कितना और गर्म होगा यह शहर?

आज पूरा देश उस समाचार पर नजर गडाये हुये है जिसमे "क्लाउड सीडींग" यानि कृत्रिम वर्षा की बात की जा रही है। इस बार सम्भावित सूखे को देखते हुये मुम्बई मे नयी तकनीक से वर्षा करायी जायेगी। मीडिया चीख-चीख कर एक तरफा यानि "क्लाउड सीडींग" के पक्ष मे बाते कर रहा है। तस्वीर के दूसरे पहलू को देखने कोई तैयार नही है। मै भी मौसम विशेषज्ञ नही हूँ इसलिये मैने अपने कुछ वैज्ञानिक मित्रो से इस बारे मे पूछा तो वे बोले कि यह तकनीक तो पूरी दुनिया मे अपनायी जा रही है। इस बात की बहुत सम्भावना है कि वर्षा होगी। पर इस वर्षा की कीमत किसी न किसी को चुकानी ही पडेगी। कही आस-पास पड रहा सूखा और तीव्र हो जायेगा। फिर सिल्वर आयोडाइड के प्रयोग से भी पर्यावरण विशेषकर वनस्पतियो पर असर पडेगा। मित्रो ने पूछा कि जहाँ ऐसे प्रयोग हो रहे है वहाँ आस-पास जैव-विविधता वाला क्षेत्र तो नही है। मैने उनसे कहा कि पश्चिम घाट तो जैव-विविधता वाला क्षेत्र है। मित्रो ने कहा कि ऐसे मे इस तकनीक का प्रयोग सम्भल कर अपने विवेक का इस्तमाल करके किया जाना चाहिये।

"क्लाउड सीडींग" पर जब मैने वैज्ञानिक साहित्यो को खंगाला तो इसके पक्ष और विपक्ष मे बहुत सी बाते जानने को मिली। यह आभास हुआ कि सब कुछ सीधा-सीधा नही है। दुनिया के बहुत से देशो मे इस पर प्रतिबन्ध भी लगता रहा है। वैज्ञानिक दस्तावेज बताते है कि थाईलैंड मे इस तकनीक के लम्बे समय तक प्रयोग ने सूखे की बुरी स्थिति को जन्म दिया है। तकनीकी विषय होने के कारण मीडिया मे इसके नकारात्मक पहलुओ के विषय मे कम ही कहा जाता है। यह देशी नही बल्कि विदेशी मीडिया के साथ भी समस्या है।

"क्लाउड सीडींग" के लिये सरकार करोडो (या अरबो) रुपये पानी की तरह बहायेगी, इस बात की परवाह किये बिना कि यह तकनीक असफल भी हो सकती है। विदर्भ मे ऐसे प्रयोग पहले किये गये है। सन्योग से कुछ वर्षो पहले जब यह प्रयोग किया जा रहा था तब मै वही था। आशातीत सफलता नही मिली थी पर इस बात को सामने नही आने दिया गया। ऐसे मे मै आधुनिक "क्लाउड सीडींग" की स्थान पर पारम्परिक "क्लाउड सीडींग" के पक्ष मे रहना पसन्द करुंगा। माँ प्रकृति सदियो से "क्लाउड सीडींग" कर रही है। जंगलो मे उन्होने ऐसी व्यवस्था बना रखी है कि बिना मेहनत के सदियो से मनुष्यो को पानी मिल रहा है। माँ प्रकृति की इस "क्लाउड सीडींग" मे पक्षपात नही है। सबको बराबर पानी मिलता है। साथ ही इस "क्लाउड सीडींग" मे सिल्वर आयोडाइड जैसे विषाक्त रसायनो का भी प्रयोग नही होता है। फिर क्यो नही नयी जानलेवा तकनीक की जगह माँ प्रकृति की "क्लाउड सीडींग" के यंत्रो को फिर से सुधारा जाता? सरकारे क्यो नही भिड

कर जंगल को बचाती और उनका विस्तार करती है? क्यो नदियो को जन्मने वाले नियमगिरि मे बाक्साइट खनन की छूट देकर प्राकृतिक "क्लाउड सीडींग" स्त्रोत को सदा के लिये विनाश के गर्त मे ढकेला जा रहा है? आज योजनाकार जैट्रोफा (रतनजोत) जैसी अधिक जल-माँग वाली बायोडीजल फसल के रोपण मे रुचि दिखाते है और खरबो पानी की तरह बहाने के बाद नतीजा सिफर ही रहता है। क्यो नही इतने पैसे कैम, साल, महुआ आदि पर खर्च किये जाते? जाने कब इन प्रश्नो के उत्तर मिलेंगे?

कुछ समय पूर्व डिस्कवरी चैनल पर एक कार्यक्रम मे बताया जा रहा था कि जब तेजी से बढते हुये एक समुदी तूफान को खत्म करने के लिये बादलो पर रसायनो का छिडकाव किया गया तो तूफान वहाँ तो टल गया पर उसने दिशा बदलकर दूसरे स्थानो पर जबरदस्त कहर बरसाया। प्रकृति की व्यवस्था की नकल इतनी सरल नही है। अब देखिये मुम्बई की "क्लाउड सीडींग" की कितनी बडी कीमत हमे चुकानी पडती है? **(क्रमशः)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-44

- **पंकज अवधिया**

मानव लिंग की तरह दिखने वाले नशीले और जहरीले कुकुरमुत्ते की तांत्रिक और औषधीय महिमा

इस बार मानसून मे देरी के कारण सूखे जंगलो मे जाने का मन नही कर रहा था। मधुमेह की रपट से तंग आकर मैने जंगल यात्रा का मन बनाया। सुबह साढे पाँच बजे सोने के बाद तीन घंटो मे ही उठ गया और जंगल की राह पकड ली। आज सुबह से हल्की वर्षा हो रही थी। काफी दूरी चलने के बाद कुकुरमुत्तो को देखकर मैने गाडी रोकी और फिर दल-बल सहित जंगल मे घुस गया। लगता था कि रात को भी बारिश हुयी थी। मिट्टी घँस रही थी पर जंगल मे चलना मुश्किल नही था। कुछ दूर चलने के बाद हमे इतने सारे कुकुरमुत्ते मिले कि दिल खुश हो गया। मैने कैमरा निकाला और हल्की बारिश के बीच तस्वीरे लेना आरम्भ किया।

साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि जितने भी खाने योग्य कुकुरमुत्ते थे, वे सब एकत्र कर लिये गये है। अब तक तो आस-पास के लोग उनकी सब्जी बनाकर चट भी कर गये होंगे। अब जो कुकुरमुत्ते हमे दिखायी दे रहे थे वे आम लोगो के किसी काम के नही थे। पर पारम्परिक चिकित्सको के लिये ये बडे काम के थे। वे ध्यान से जाँच-परख कर रहे थे और फिर पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद बडे ही जतन से अपने थैले मे रख रहे थे। मैने इस लेखमाला मे पहले लिखा है कि कुकुरमुत्ते की तस्वीरे ऊपर से लेने से काम नही चलता है। सभी ओर से इनकी तस्वीरे लेनी पडती है ताकि हजारो मील दूर बैठे मशरुम विशेषज्ञ जब इन तस्वीरो को देखे तो इनकी सही पहचान कर पाये। केवल छतरी की ऊपरी तस्वीरे लेकर मैने पहले बहुत गल्तियाँ की है। इस जंगल यात्रा के दौरान मुझे पारम्परिक चिकित्सको ने जहरीले और उपयोगी कुकुरमुत्तो की पहचान सीखायी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वैज्ञानिको के विपरीत वे केवल छतरी का मुआयना करके ही सही पहचान कर रहे थे।

डायबीटीज के इलाज मे कुकुरमुत्ते का सीधा प्रयोग कम ही किया जाता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे देश मे कुकुरमुत्तो के विष्य़ मे समृद्ध पारम्परिक ज्ञान है। मैने अपनी मधुमेह की लम्बी-चौडी रपट मे इस पारम्परिक ज्ञान के विषय मे विस्तार से लिखा है। पारम्परिक चिकित्सक साल के तीन महिने तक केवल कुकुरमुत्तो और इनसे तैयार व्यंजनो पर मधुमेह रोगी को आश्रित रहने को कहते है। मधुमेह की जटिल अवस्था मे तो अन्य औषधीयो के साथ साल भर कुकुरमुत्तो पर आधारित मिश्रण दिये जाते है। पारम्परिक चिकित्सक बरसात मे एकत्र किये गये कुकुरमुत्तो को साल भर सुरक्षित रखते है। कुकुरमुत्तो का प्रयोग पारम्परिक चिकित्सक अपनी निगरानी मे करते है। आप रपट के कुछ अंशो को इस कडी के माध्यम से देख सकते है।

कुकुरमुत्तो के बीच घूमते हुये अचानक मेरी नजर कुछ ऐसे कुकुरमुत्तो पर पडी जो कि हू-बहू मानव लिंग की तरह दिख रहे थे। एक बार तो मुझे विश्वास ही नही हुआ। ध्यान से देखा तो लगा मानो दसो छोटे-बडे मानव लिंग जंगल की धरती पर बिखरे पडे है। मैने उन्हे छूने के लिये जैसे ही हाथ बढाया पारम्परिक चिकित्सको ने रोक दिया। ये जहरीले थे। उन्होने पास से तेन्दु और पलाश की पत्तियाँ तोडी और फिर उनकी सहायता से इन्हे जमीन से अलग किया। मेरा कैमरा तो जैसे रुकने को तैयार नही था। तस्वीरे ही लिये जा रहा था। यह दुर्लभ था। इसलिये नही कि मैने इसे पहली बार देखा था बल्कि पारम्परिक चिकित्सको ने भी इसे सालो बाद देखा था। वे अपने दिन को शुभ मान रहे थे। सम्भवत: जिस वर्ष देर से वर्षा होती है उस वर्ष ये उगते हो।

मुझे बताया गया कि यह कुकुरमुत्ता बहुत अधिक नशा करता है। होशो-हवास उडा देता है। बहुत सूक्षम मात्रा मे तांत्रिक अपनी तंत्र क्रिया के प्रदर्शन से थोडा पहले इसे खा लेते है। उनकी आँखे लाल हो जाती है। वे अंट-शंट बकने लगते है। भाव-भंगिमाए बनाने लगते है। दूसरे लोको की बात करने लगते है। तांत्रिक की यह स्थिति दर्शको को आतंकित कर देती है। उन्हे साधारण से जादू पर भी विश्वास होने लगता है। तांत्रिक इस नशे की काट भी जानते है। हालत बिगडने पर झट से काट का सेवन कर लिया जाता है। यह सब इतना आसान नही है। सही मायने मे तांत्रिक अपनी जान से खेलता है। जरा सी भी मात्रा अधिक नही हुयी कि उसकी तत्काल मौत हो सकती है। यही कारण है कि नयी पीढी के तांत्रिक इस तरह का जोखिम नही उठाते है।

पारम्परिक चिकित्सक दवा के रुप मे इसका प्रयोग करते है। वे कहते है कि याददाश्त खो चुके रोगियो पर इसका सकारात्मक प्रभाव पडता है। किसी गहरे सदमे से रोगी जब खाना-पीना छोड देता है और धीरे-धीरे मौत की ओर बढता जाता है तब भी इसका प्रयोग किया जाता है। रोगी यदि इसे खाना नही चाहे तो दूसरी वनस्पतियो के साथ इसका लेप तलवो पर लगाया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक दोहरायी जाती है जब तक रोगी प्रतिक्रिया नही देने लगता है। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक सिर खुजाकर कहते है कि मानव लिंग की तरह दिखने वाले इस कुकुरमुत्ते का प्रयोग लिंग से सम्बन्धित रोगो की चिकित्सा मे भी होना चाहिये। मानव अंगो की आकृतियो वाले पौध भागो के इस तरह के प्रयोग पीढीयो से होते आये है। पर इन्हे कैसे प्रयोग किया जाये, ये उन्हे नही मालूम है। जहरीला होने के कारण वे किसी पर इसका प्रयोग भी नही करना चाहते है।

जंगल से वापस लौटने के बाद जब मैने अपने डेटाबेस को खंगाला तो मुझे 1994 मे सरगुजा के पारम्परिक चिकित्सको की बात याद आयी। वे इस तरह के कुकुरमुत्ते के विषय मे बताया करते थे। मैने उन्हे देखा नही था पर फिर भी उस बारे मे विस्तार से जानकारी एकत्र करके डेटाबेस मे डाल दी थी। सरगुजा के पारम्परिक चिकित्सक इस प्रजाति का प्रयोग कामशक्तिवर्धक के रुप मे करते थे। वनस्पतियो क्रे साथ इसका प्रयोग होता था।

पारम्परिक चिकित्सक जंगल मे कुकुरमुत्तो की भूमिका को जानते है। उन्हे इस बात का अहसास है कि जंगल की सफाई मे उनकी अहम भूमिका है। यही कारण है कि उन्होने थोडी मात्रा मे ही कुकुरमुत्तो को एकत्र किया। बारिश होते ही नाना प्रकार के कुकुरमुत्ते निकल जायेंगे। तब एक बार फिर जंगल की यात्रा करनी होगी। पारम्परिक चिकित्सको ने

अगली बार जंगल के भीतर तक कीचड से होते हुये जाने की तैयारी कर आने को कहा है। मुझे उम्मीद है कि अगली जंगल यात्रा मे नयी प्रजातियाँ मिल सकेंगी। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-45

- **पंकज अवधिया**

साँपो के डर के कारण विलुप्त होती गरुड जडी और इसे बचाने की मुहिम

यदि आपको पता चले कि पूरे जंगल से जो वनस्पति लुप्त हो चुकी है वह पास के गाँव के एक घर मे सुरक्षित है तो आप तुरंत ही उस ओर चल पडेंगे। मैने भी ऐसा ही किया। जिस वनस्पति के बारे मे ऐसा कहा जा रहा था वह आयुर्वेद के दृष्टिकोण से भी अति महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध दशमूल योग इस वनस्पति के बिना अधूरा है। यह वनस्पति है सोनपाठा। मेरे देखते ही देखते एक दशक के अन्दर इसकी संख्या मे अप्रत्याशित कमी आयी है। अभी भी बडी मात्रा मे इसकी जड का एकत्रण किया जाता है। आप समझ सकते है कि जड के एकत्रण के बाद वनस्पति की क्या हालत होती होगी?पारम्परिक चिकित्सक तो जड का थोडा सा भाग ही एकत्र करते है और फिर वनस्पति के कटे हुये भाग मे जडी-बूटियो का घोल और मिट्टी लगा देते है ताकि इस चोट से वनस्पति जल्द से जल्द उबर जाये पर जब व्यापारियो के गुर्गे यह काम करते है तो उन्हे केवल जड और उसके माध्यम से आने वाला पैसा दिखता है। यदि उन्हे जड का शीर्ष चाहिये होगा तो भी वे पूरी जड उखाडेंगे और इस तरह उस वनस्पति का अस्तित्व समाप्त कर देगे। सोनपाठा का अस्तित्व केवल इसी एकत्रण से खतरे मे नही है। इसके नये उपयोगो ने संकट पैदा कर दिया।

गाँव मे पहुँचते ही हमने पूछना शुरु किया। लोग जानते थे कि सोनपाठा किस घर मे लगा है। हम एक घर मे घुस गये। वह किसी बैगा का घर था। साथ मे आये पारम्परिक चिकित्सक बैगा से मिलने चले गये जबकि मै आँगन मे रुक गया। तभी मेरी नजर तुलसी चौरा पर पडी। तुलसी की जगह एक वृक्ष लगा हुआ था। यह सोनपाठा ही था। बैगा नही था पर उसकी बूढी पत्नी थी। उन्होने बताया कि उडीसा के घने जंगलो से लाकर इस वनस्पति को रोपा गया है। इसकी रोज पूजा की जाती है। आँगन मे इसके सूखे हुये

फूल बिखरे हुये थे। बैगा की पत्नी ने बताया कि एक-एक फूल अपने औषधीय महत्व के लिये महंगे मे बिकता है। वृक्ष पर फल लगे हुये थे। मैने फल तोडने की अनुमति चाही तो उन्होने साफ इंकार कर दिया। उन्होने कहा कि पहले पूजा की जाये उसके बाद ही इसे तोडा जाये। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक नारियल और अगरबत्ती लेने चल गये।

अचानक बैगा की पत्नी उठी और अन्दर से ढेर सारे फल लेकर आ गयी। मैने कहा कि जब फल थे तो फिर पारम्परिक चिकित्सको को नारियल लेने क्यो भेजा? उन्होने विनम्रता से जवाब दिया कि इस फल के लिये जबरदस्त मारामारी है। यदि वे इन्हे देख लेते तो किसी भी बहाने से ले जाते। हमे एक और लम्बे साल की प्रतीक्षा करनी पडती। मैने इस वनस्पति के सभी भागो की तस्वीरे ली और साथ ही बैगा की पत्नी का साक्षात्कार लिया।

सोनपाठा को स्थानीय लोग गरुण या गरुड के नाम से जानते है। वैसे इस नाम की बीस से अधिक वनस्पतियाँ देहातो मे मिल जाती है। इसे सर्प विष प्रतिषेधक माना जाता है। सर्प दंश मे जितना इसका उपयोग नही होता उससे अधिक इसके फलो को घर मे रखा जाता है, इस विश्वास के चलते कि इससे सर्प घर मे नही आयेंगे। बैगा की पत्नी ने अपनी झोपडी की छत मे इसे रखा था। कुछ-कुछ साँप के फन के तरह दिखता है यह फल। मैने अपने लेखो मे पहले यह बार-बार लिखा है कि घरो को सर्पो से मुक्त रखने के लिये फिनायल और कैरोसीन का सरल प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिये वनस्पतियो को नष्ट करने की आवश्यकता नही है। पर पीढीयो से गरुण के बारे मे जो बाते प्रचारित जी जा रही है उन बातो ने ग्रामीण और शहरी समाज मे गहरी जडे जमा ली है। आज इसके बढते बाजार ने इस वनस्पति के सभी पौध भागो को सर्प भगाने वाला घोषित कर दिया है। जबकि यह सत्य से कोसो दूर है।

सडक के किनारे जडी-बूटी बेचने वालो के पास या फिर देहाती मेलो मे इस वनस्पति की जड से तैयार छोटे-छोटे साँप बिकते देखे जा सकते है। यह दावा किया जाता है कि इस जड से बने सर्प को घर मे रखने से असली साँप नही आते है। पता नही असली साँपो को इसकी खबर है या नही?

बैगा की पत्नी ने बताया कि दवा के रुप मे प्रयोग के लिये फूल कम बिकते है, ज्यादातर लोग तो बुरी नजर से बचने के लिये इस फूल को ले जाते है और अपने घरो मे बन्द कर देते है। पता नही वे बुरी नजर से बच पाते है या नही पर उनके इस काम से इस वनस्पति के विस्तार के द्वार बन्द हो जाते है। फूल से फल बनते और फिर बीज नयी

पीढी को जन्म देते। पर बडी मात्रा मे फल और फूल के एकत्रण से इसका अस्तित्व समाप्ति की ओर है। यह विडम्बना ही है कि सरकारी स्तर पर इस जानलेवा व्यापार को रोकने की कोई पहल नही की जा रही है। समाज मे वैज्ञानिक चेतना जगाने का जिम्मा लिये अरबो रुपये वसूलती सामाजिक संस्थाए निष्क्रिय है। अखबार भी मौन है। कुछ अखबार तो हर बार व्यापारियो के कहने पर इस फल से सर्प के न आने की अफवाह उडा देते है और फिर फलो की बिक्री शुरु हो जाती है। कोई यह नही सोचता कि इससे जंगल मे इस वनस्पति की प्राकृतिक आबादी पर कितना गहरा असर पड रहा है। इस बार कुछ अखबारो ने मेरी मुहिम का साथ देने का मन बनाया है। देखते है कि कब तक अति सम्पन्न बाजार के सामने यह मुहिम टिक पाती है। अखबारो के माध्यम से आम जनता से यह अनुरोध किया जा रहा है कि वे इस फल को न खरीदे और पर्यावरण की रक्षा मे अपना अहम योगदान दे। फल नही बिकेंगे तो अपने आप व्यापारी इसमे रुचि लेना छोड देंगे। व्यापारी नही खरीदेंगे तो जंगल से इसका एकत्रण नही होगा।

देश के बहुत से हिस्सो मे उपलब्ध सरकारी दस्तावेज बताते है कि सोनपाठा के व्यापक रोपण की पहल की जा रही है ताकि दशमूल योग के अवयव की आपूर्ति होती रहे। पर ये सरकारी स्तर के रोपण कितने जमीन पर है और कितने कागज पर, यह यकीन से कह पाना मुश्किल है। पारम्परिक चिकित्सक ऐसे रोपणो से खुश नही है। आमतौर पर किसी भी खाली जमीन पर ऐसे रोपण कर दिये जाते है। जंगलो मे जाकर यह देखने की कोशिश नही की जाती है कि कैसी परिस्थितियो मे यह उगता है? किन वनस्पतियो के साथ उगता है? सरकारी रोपण से वृक्ष तो तैयार हो जाते है पर उनके औषधीय गुणो मे कमी रहती है। सारा प्रयास बेकार जाता है। पारम्परिक चिकित्सक यह भी कहते है कि इन वृक्षो को तैयार होने मे दशको लगेंगे तब तक इस धरती मे माँ प्रकृति द्वारा भेंट किये गये वृक्ष ही मानव सेवा करेंगे। उन्हे किसी भी हालत मे नष्ट होने से बचाना है।

व्यापारी मेरी इस चिंता पर हँसते है। वे कहते है कि अभी बाजार मे जितना सोनपाठा है उतना तो इस धरती मे मौजूद वृक्षो से नही आ सकता। इतनी मात्रा के लिये मंगल और चाँद मे भी सोनपाठा लगाना होगा। व्यापारी की बाते साफ इशारा करती है कि सोनपाठा मे मिलावट की जा रही है। बहुत बार ऐसी मिलावटे अप्रत्यक्ष रुप से मुख्य वनस्पति की संख्या को कम होने से बचाती है पर इस मिलावट से जन-स्वास्थ्य के लिये बडा खतरा उत्पन्न हो जाता है। साथ ही जिन वनस्पतियो की मिलावट की जाती है उनके अस्तित्व पर भी खतरा उत्पन्न हो सकता है।

इस जंगल यात्रा के दौरान एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक मिले। वे इस वनस्पति को बढा रहे है। पैसे कमाने के लिये नही बल्कि लोगो को स्वस्थ्य बनाने के लिये। मैने उनके घर मे उग रहे कुछ पौधो को देखा। वे मेरी मदद चाहते है ताकि हर बीज नये पौधो को जन्म दे सके। मै अपनी सेवाए देने के लिये तत्पर हूँ। उम्मीद है कि आने वाले सालो मे हम अधिक से अधिक संख्या मे सोनपाठा उगा पायेंगे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-46

- **पंकज अवधिया**

रीठा की घटती संख्या, सरल प्रयोग और ग्रामीणो की शपथ

"हमारे यहाँ पीढीयो से मिठाई का कारोबार है। मिठाई वाले के घर मे रीठा का होना जरुरी है। बताशे तो रीठा के बिना बनाये ही नही जा सकते। यह मैल को साफ करता है। मैने यह धन्धा छोड दिया है। अब खेती पर ही पूरा ध्यान है। पहले रीठा के बहुत से वृक्ष जंगल और गाँव मे थे पर अब इसका उपयोग कम होने से केवल यही वृक्ष बचा है, वह भी आँधी-तूफान की मार से आधे से टूट गया है।" एक ग्रामीण अधेड मुझे जंगली क्षेत्र का एकमात्र रीठा वृक्ष दिखाते हुये यह कह रहे थे। उन्हे भी आश्चर्य हो रहा था कि कहाँ शहरी बाबू इतनी दूर उनके घर मे आ गये, वह भी बिन बताये। मुझे रीठा की तस्वीरे लेती देख भीड एकत्र हो गयी। इस बीच रीठा के फल ले आये गये और जब तक मै अपना काम खत्म करता तब तक कई हाथ पानी मे रीठा को मलकर झाग बना चुके थे। वे चाहते थे कि मै झागयुक्त हाथो की तस्वीरे लूँ। मैने उन्हे निराश नही किया। भीड मे कुछ बच्चे भी थे जिन्हे रीठा के बारे मे ज्यादा कुछ मालूम नही था। वे बाल धोने के साबुन का प्रयोग करते थे पर यह उन्हे नही मालूम था कि उस साबुन मे उपस्थित रीठा उनके घर के पिछवाडे मे ही उग रहा है।

रीठा की माला अक्सर लोगो के गलो मे दिख जाती है। मान्यता है कि यह माला बुरी नजर से बचाती है। छत्तीसगढी गीतो मे रीठा का जिक्र बार-बार आता है। आज छत्तीसगढ मे रीठा के वृक्ष तेजी से कम होते जा रहे है। रायपुर के मिठाई निर्माता काफी हद तक दूसरे प्रदेशो से मंगाये गये रीठा पर निर्भर है। जब मैने पारम्परिक चिकित्सको से इस

बारे मे पूछा तो उन्होने दो टूक कहा कि जंगल के लकडी माफिया को जो लकडी मिली उसे काट लेते है। उनके औषधीय महत्व से उन्हे कुछ लेना-देना नही है। मैने रीठा से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर काफी कुछ लिखा है।

"क्या अब यह इकलौता वृक्ष बचा रहेगा?" मैने इस वृक्ष के मालिक से पूछा। उन्होने कहा कि बिल्कुल बचा रहेगा, अब शहर के लोग इतनी दूर से आकर तस्वीरे ले रहे है तो इसे बचाना ही होगा। अब तो अगले साल से मै इसे फैलाऊँगा भी। मुझे यह सुनकर तसल्ली हुयी। मैने साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको से कहा कि इन्हे रीठा के कुछ असाधारण प्रयोग बता दे ताकि यह रीठा साल दर साल पूरे गाँव की मदद कर सके। पारम्परिक चिकित्सको ने दस आम रोगो मे रीठा के सरल प्रयोगो के विषय़ मे बता दिया। भीड ने हमे घेर लिया। उन्हे लगा कि हम उनके सारे रोगो की चिकित्सा कर सकते है।

गाँव मे बहुत से लोगो के पैरो मे सडन वाला रोग दिखा। वे कहने लगे कि उन्होने रायपुर जाकर हजारो फूँक दिये है पर कुछ समय तक दबा रहने के बाद यह रोग फिर उभर जाता है। यह सडन रोग इतना भयावह था कि दूर से तेज बदबू आ रही थी। यह खेतो मे लगातार काम करने की वजह से नही हुआ था। पानी से हुये जख्म को तो साधारण देशी नुस्खो से ठीक किया जा सकता है। साथ मे पारम्परिक चिकित्सक थे पर भीड मुझे ज्यादा बडा जानकार मान रही थी। हमने कोने मे जाकर इस बारे मे विचार-विमर्श करने का मन बनाया।

रायपुर के प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉ बी.आर.गुहा के साथ अनुभव लेते वक्त मैने सैकडो ऐसे रोगियो को देखा था। गुहा जी कहते थे कि इन्हे एक दवा से ठीक किया जा सकता है पर ऐसा करने से रोग दूसरे रुप मे कही और से निकल जायेगा। दूसरा रास्ता है आराम से सही तरीके से रोग का जड से इलाज। पर दूसरे रास्ते के लिये रोगी तैयार नही होते थे। उन्हे जरा भी धैर्य नही होता था। एक-दो दिन मे लाभ नही दिखने पर वे दूसरे डाक्टर के पास चले जाते थे। गुहा जी सिद्धांतवादी थे। चाहे कुछ भी हो जाये वे दूसरा रास्ता ही चुनते थे। बाद मे देश भर के पारम्परिक चिकित्सको को भी मैने इस रोग की चिकित्सा करते देखा। ज्यादातर पारम्परिक चिकित्सक त्वचा रोगो के लिये बाहरी उपचार के साथ आँतरिक उपचार की पैरवी करते है। बल्कि आँतरिक उपचार को अधिक महत्व देते है। वे कहते है कि पहले रोगी से विस्तार से पूछ लो कि उसका खान-पान क्या है? यदि गौर किया जाये तो इस खान-पान मे ही ऐसी भोज्य सामग्री मिल जायेगी जो रोग को बनाये रखने मे सक्षम है। इस भोज्य सामग्री पर रोक लगा कर रोगी को काफी आराम पहुँचाया जा सकता है। फिर रोगी को रोगानुसार भोजन सामग्री सुझा दी जाये

ताकि औषधीय मिश्रणो का लाभ अधिक से अधिक हो। पारम्परिक चिकित्सको के पास भी तुरंत आराम पहुँचाने वाली वनस्पतियाँ होती है पर वे इनका प्रयोग कम ही करते है।

इसी आधार पर इस जंगल यात्रा के दौरान मैने साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको से चर्चा की। वे नयी पीढी के पारम्परिक चिकित्सक थे। वे चाहते थे कि रीठा और हर्रा के हरे फलो के लेप से रोगी को तुरंत आराम पहुँचाया जाये। काफी चर्चा के बाद मैने उनकी बाते स्वीकार कर ली और हमने तय किया कि रोगियो को वनस्पतियो के विषय मे बिना बताये हम लेप का बाहरी उपयोग करेंगे और फिर उनके खान-पान मे सुधार का सुझाव देंगे। रोगियो की कतार लग गयी। लेप तैयार हो गया तो प्रयोग भी आरम्भ हो गया। बीस से अधिक रोगियो का उपचार किया गया। लेप लगाने के बाद वे मेरे पास आते और मै उनके खान-पान मे गडबडी की पडताल करता। तीन घंटे इसी सब मे व्यतीत हो गये। जब हम अपना काम पूरा करके गाडी की ओर बढे तो लोगो ने संकोच से पूछा कि पैसा नही लेंगे? मै तो पैसे लेने से रहा। पारम्परिक चिकित्सको ने भी मना कर दिया। हाँ, उन्होने ग्रामीणो से शपथ लेने को कहा कि वे रीठा का प्रसार करेंगे। ग्रामीणो ने एक स्वर मे इसे स्वीकार कर लिया।

तीन घंटे के इस विलम्ब से दिन भर का सारा कार्यक्रम गडबडा गया। जहाँ कही भी हम जडी-बूटी की बात करते है वहाँ रोगियो की लम्बी कतार लग जाती है। लो-प्रोफाइल चलने मे ही भलाई है पर ज्ञान की झलक तो लोगो को मिल ही जाती है। इतने सारे लोगो का दुख-दर्द देखकर इंकार करते भी नही बनता। आजकल ग्रामीणो के खान-पान मे पारम्परिक भोज्य सामग्रियाँ कम हो गयी है। यही उनमे बढते रोगो का कारण भी है। जब उन्हे आस-पास उग रही वनस्पतियो के साधारण प्रयोग बताये जाते है तो उन्हे इस पर विश्वास नही होता है। पर जब वे इन्हे आजमाते है तो उन्हे स्थायी लाभ होता है। मसलन, वात रोगो के लिये उपयोगी चरोटा भाजी खेतो और मेडो मे बिखरी पडी है। पहले इसे चाव से खाया जाता था पर आज की पीढी जहरीली रसायनयुक्त सब्जियाँ खरीदकर खाती है। चरोटा का नाम सुनते ही वे नाक-भौ सिकोड लेते है। पारम्परिक चिकित्सक अपने अनुभव से बताते है कि साल के कुछ महिनो तक साग के रुप मे इसका नियमित प्रयोग साल भर वात रोगो से सुरक्षा प्रदान करता है।

मुझे लगता है गाँवो मे बाहर से स्वास्थ्य सुविधा पहुँचाने की बजाय गाँव मे ही उपस्थित वनस्पतियो के साधारण पर प्रभावी प्रयोगो के विषय मे जागरुकता लानी चाहिये। अभी कुछ दशक पहले तक इन वनस्पतियो का महत्व ग्रामीण भारत अच्छे से समझता था पर

अचानक ही सब कुछ बदल गया और इसकी बहुत बडी कीमत उन्हे चुकानी पड रही है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-47

- पंकज अवधिया

साँपो के आगे बेबस जडी-बूटियाँ और घायल साँप के आगे बेबस हम

"ये बीस जडी-बूटियाँ है। आप इन्हे घर ले जाइये और निश्चिंत हो जाइये। एक भी साँप नही आयेगा। आप पन्द्रह हजार रुपये दे दे। मै अभी इसे पालीथीन मे बाँध देता हूँ।" उडीसा के एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल पर मै कल ही एक जडी-बूटी विक्रेता से चर्चा करने के लिये रुका था। बीस जडी-बूटियो के लिये पन्द्रह हजार कुछ ज्यादा नही है-मेरे प्रश्न पर विक्रेता थोडा नाराज हो गया और बोला कि आप तो किस्मत वाले हो जो इतने सस्ते यह मिल रही है। आप इतनी दूर से आये हो इसलिये सस्ता किया है। मैने कहा कि इतने सारे पैसे तो मेरे पास नही है। फिर उसने मोल-भाव शुरु कर दिया। इस बीच पास की बस्ती से कुछ शोर सुनायी दिया। धीरे-धीरे शोर हमारी ओर आने लगा। "साँप, साँप" की आवाज सुनकर हम चौकन्ने हो गये। देखा तो एक काला सा बडा साँप आया और जडी-बूटियो के बोरे के नीचे छुप गया। हम हडबडा गये। जब कुछ हल्ला शांत हुआ तो देखा कि विक्रेता दूर मे खडा है। जान मे जान आने के बाद याद आयी कि पन्द्रह हजार की बीस जडी-बूटियो के रहते भला कैसे साँप घुस गया? हम विक्रेता पर टूट पडे। वह घबरा कर बोला कि इस साँप पर असर नही होता बाकि सब साँप पर असर होता है।

पास मे एक मन्दिर था जहाँ काँवडिये बडी संख्या मे जल अभिषेक के लिये आ रहे थे। इन काँवडियो मे से कुछ के पास नाग साँप थे। वे साँप को दूध के पात्र मे कुछ समय तक डुबो देते थे और फिर दूध प्रसाद के रुप मे वितरीत कर दिया जाता था। मेरे कैमरे को देखते ही कुछ साँप वाले सक्रिय हो गये। उन्होने साँप पर चोट की और साँप गुस्से मे फन काढकर डसने की मुद्रा मे खडा हो गया। मैने इस मुद्रा मे साँप की अनगिनत तस्वीरे ली है पर फिर भी मन रखने के लिये मैने फ्लैश चमका दिया। नाग को देखकर मन मे आया कि फिर से जडी-बूटी विक्रेता के पास लौटा जाये और उसकी जडी-बूटियो

को इस पर आजमाया जाये। हमे फिर से आता देख विक्रेता दुकान समेटने लगा। हमने नाग उसकी दुकान मे छोड दिया। वह बडे मजे से घूमता रहा। सभी जडी-बूटियाँ उस पर रखी एक-एक करके पर किसी ने भी असर नही दिखाया। विक्रेता के पास अभी भी इसका कारण था। उसने बेशर्मी से कहा कि नाग पर इनका असर नही होता है, बाकि सब पर होता है। लो कर लो बात। यह तो सरासर बेशर्मी है। हमने कडाई बरती तो वह जमीन पर आ गया और कहने लगा कि क्यो गरीब आदमी के पेट पर लात मारते हो?

आज रायपुर के अखबार दैनिक छत्तीसगढ ने उस जडी-बूटी की बडी सी तस्वीर प्रकाशित की जिसके बारे मे मैने पिछले लेखो मे लिखा है। अखबार ने प्रमुखता से यह प्रकाशित किया कि इससे साँप नही भागते है इसलिये आम नागरिक इसे न खरीदकर पर्यावरण के प्रति अपनी जागरुकता का परिचय दे। इस पर राजधानी मे व्यापक प्रतिक्रिया हुयी है। बहुत से फोन आये। कुछ फोन उन लोगो के भी थे जो इस तरह की जडी-बूटियो के व्यापार मे लगे है। उनका कहना था कि क्यो गरीब के पेट मे लात मारते हो? हमे अपना धन्धा करने दो।

कल की जंगल यात्रा के दौरान एक बहुत ऊँची पहाडी पर जाना हुआ। चढते-चढते पैरो मे गाँठ पड गयी, दम फूल गया। मै जिस स्थानीय पारम्परिक चिकित्सक के साथ था वे मजे से चढ रहे थे। काफी चढाई के बाद हम समतल स्थान पर पहुँचे जहाँ घना जंगल था। हम सोनपाठा की तलाश मे आये थे। पारम्परिक चिकित्सक उम्र के अंतिम पडाव मे थे। हाल ही मे गर्मियो के दिनो मे वे इस पहाडी मे आये थे तो लू के कारण वे बेहोश हो गये थे। रात उन्होने जंगल मे काटी और दूसरे दिन बडी मुश्किल से लौटे। घर वालो के मना करने के बावजूद वे मेरे साथ चल पडे। स्थानीय लोगो ने बताया कि इस क्षेत्र मे जडी-बूटियो की प्रचुरता होने के कारण बहुत से पारम्परिक चिकित्सक है। वे अपने ज्ञान से रोगियो को आराम पहुँचाने की कोशिश करते है। यदि असफल हो जाते है तो रोगियो को इस बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक के पास भेजा जाता है। वे सोनपाठा के प्रयोग से उन्हे ठीक कर देते है। यह मेरे लिये आश्चर्य का विषय था कि क्या सभी रोगो की जटिल अवस्था मे सोनपाठा का विवेकपूर्ण प्रयोग इतना उपयोगी है?

बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि वे सोनपाठा के सैकडो नुस्खे जानते है। इन नुस्खो की सहायता से वे सभी रोगो की चिकित्सा कर रहे है कई दशको से। वे बोले कि पहले सोनपाठा के बहुत से वृक्ष थे जंगल मे पर धीरे-धीरे वे समाप्त होते गये। पता नही किसने यह अफवाह फैला दी है कि इससे साँप भागते है। अब सबके सब साँप के लिये इसे एकत्र करते है। यहाँ से व्यापारी बडी मात्रा मे इसे ले जाते है और फिर शहरो मे बेच

देते है। शहरो मे लोग इसे अपने घरो मे रख देते है और पडे-पडे इसके फल सड जाते है। पहले पहाडी के नीचे ही यह मिल जाता था पर अब जंगल मे बहुत दूर जाना पडता है।

पहाडी पर कुछ जडी-बूटी संग्रहकर्ता मिले तो बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने उनके हाथो मे सोनपाठा के फल देखकर उन्हे खूब खरी-खोटी सुनायी। फिर मुझे कहने लगे कि यदि यह सब जारी रहा तो मै रोगियो के लिये कुछ नही कर पाऊँगा। मेरे अनगिनत नुस्खे बेकार चले जायेंगे। मैने दशको से हजारो सोनपाठा के वृक्षो की सेवा की है। उन्हे जडी-बूटियो के घोल से सींचा है ताकि वे दीर्घायु हो। भरी बरसात मे उन्हे देखने गया पर मै अपने ही (मानव) समाज से उनकी रक्षा नही कर पाया। उनकी आँखो मे अफसोस के भाव थे जबकि इसमे उनकी कोई गल्ती नही थी।

बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक की इन बातो ने स्थिति साफ कर दी थी। मुझे यह आभास हो गया था कि असंख्य रोगियो की रक्षा के लिये सोनपाठा जैसी वनस्पतियो की रक्षा जरुरी है। इसके गलत व्यापार को रोकने की जरुरत है चाहे इसके लिये कठोर से कठोर कदम क्यो न उठाने पडे। मैने सोनपाठा पर लिखे लेखो को अपने एक उडीया मित्र को भेजा है। वे इसका उडीया मे अनुवाद कर देंगे और उडीसा मे प्रकाशित करवा देंगे। मुझे उम्मीद है कि इससे कुछ जागरुकता अवश्य आयेगी।

रात को लौटते समय हमे लम्बी सी छडीनुमा कोई चीज सडक पर दिखायी दी। हम सब अनुमान लगाते रहे। फिर सबने मान लिया कि यह किसी वृक्ष की शाखा होगी। हम चलते रहे। पास आने पर ड्रायवर को कुछ शक हुआ। उसने जबरदस्त ब्रेक लगाया। वह साँप था। ऐसा लम्बा साँप मैने अपने जीवन मे पहले कभी नही देखा था। वह किसी गाडी के नीचे आकर घायल हो चुका था। हम कुछ देर रुके रहे। ड्रायवर ने कौतुहलवश नीचे उतरकर उसे पास से देखना चाहा। वह कुछ आगे ही बढा था कि साँप उस पर झपटा। अब भला साँप को क्या पता कि उसे कुचलने वाले हम नही थे। ड्रायवर बाल-बाल बचा। हमने गाडी पीछे मोडी और पास के गाँव मे इसकी खबर दी।

गाँव के कुछ मनचले युवक नशे मे धुत ताश खेल रहे थे। वे हम पर खूब हँसे और बोले कि गाडी निकाल दो उसके ऊपर से। पर गाँव के सरपंच ने कुछ बैगाओ को बुलाया और फिर हम सब उस दिशा मे चल पडे। उनके चेहरे के हाव-भाव से यह साफ था कि उन्होने भी ऐसा साँप पहले पहल देखा था। एक बुजुर्ग ने बताया कि उन्होने इसके बारे मे पुरानी कथाओ मे सुना था। साँप को एक डंडे से उठाकर किनारे कर दिया गया। कुछ पत्थर रख दिये गये। सरपंच ने हमे रात रुककर सुबह इस साँप के अंतिम संस्कार मे भाग लेने का

अनुरोध किया। हमारे लिये रुकना सम्भव नही था। उन्होने हमे और हमने उन्हे धन्यवाद दिया।

मुझे मालूम है कि आज उस साँप का विधि-विधान से अंतिम संस्कार हुआ होगा। शायद भोज भी हुआ हो पर मेरी इच्छा थी कि हम उस घायल साँप की जान बचाने के लिये कुछ करते। शायद मै विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त साँप विशेषज्ञ होता तो यह कर पाता। रात भर नीन्द नही आयी। बस यही सोचता रहा कि काश मेरा ज्ञान उस असहाय जीव के लिये कुछ कर पाता। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-48

- **पंकज अवधिया**

लाखो की नाग मणियाँ, गोरोचन वाली गायो की हत्या और वशीकरण के दीवाने

"मेरे पास दो नाग मणियाँ है। मैने इन्हे बीस लाख रुपये मे खरीदा है। क्या आप इसे एक करोड रुपयो मे बिकवा देंगे?" ये पंक्तियाँ है उन पत्रो मे से एक की जो मुझे अक्सर मिलते रहते है। ऐसे ई-मेल सन्देश भी मिलते रहते है। मै अक्सर इन्हे अनदेखा कर देता हूँ। पर इस बार हद हो गयी। एक व्यक्ति घर आ पहुँचा इन तथाकथित मणियो के साथ। पहले से मिलने का समय तय नही था इसलिये मैने इंकार कर दिया। वह सुबह से शाम तक घर के सामने बैठा रहा। शाम को मै क्लब जाने के लिये निकला तो उसे साथ मे बैठा लिया। गाडी चल पडी। मैने साफ शब्दो मे कह दिया कि मै इन पर विश्वास नही करता हूँ। आप मुझसे कोई उम्मीद नही रखे। उस व्यक्ति ने कहा कि आप एक बार मणियो को देख ले। बीस लाख की मणियो को देखने का लोभ मै भी नही छोड पाया। गाडी वापस मोडी और घर आ गया। उसने मणियाँ मेरे सामने रख दी और कहा कि आस-पास के सारे प्रवेश द्वार बन्द कर दो ताकि कोई सर्प न आ सके। व्यक्ति की बाते असाधारण थी पर मणि एकदम साधारण थी। मैने इसे पिताजी को दिखाने का मन बनाया। पिताजी भू-वैज्ञानिक है। मैने उन्हे बुलाया।

मणियो को देखकर पिताजी के चेहरे के भाव बदल गये। वे मणि को कम और उस व्यक्ति को ज्यादा देखने लगे। उनकी आँखो मे क्रोध के भाव थे। उस व्यक्ति ने पूरी कहानी सुनायी। बताया कि कैसे जान जोखिम मे डालकर उसने यह मणि प्राप्त की। उसने जब इसकी कीमत बीस लाख बतायी तो पिताजी से नही रहा गया। वे अपने कमरे मे गये और मुठ्ठी बाँधे वापस आये। जब उन्होने मुठ्ठी खोली तो उसमे ढेरो वैसी ही मणियाँ थी। यदि उस व्यक्ति वाली की कीमत लगाये तो करोडो की मणियाँ सामने बिखरी पडी थी। पिताजी ने कहा कि इन सब को बेच डालो, मै सब पाँच सौ रुपयो मे देने को तैयार हूँ। तुम एक-एक के बीस लाख ले लेना। उस व्यक्ति को काटो तो खून नही। उसने मणियाँ समेटी और जाने के लिये खडा हो गया। मेरी ओर मुखातिब होकर पिताजी ने कहा कि अपनी कालेज की पढाई के दौरान उन्होने उडीसा से ये नमूने एकत्र किये थे। ये उडीसा की पहाडियो मे यूँ ही पडे रहते है, रत्नो की खदानो के आस-पास। हम लोग के समय इसे अंगूठी मे लगाया जाता था। इस ठग ने इसे नाग मणि बना डाला। अभी पुलिस मे शिकायत करो ताकि यह दूसरो को न ठग पाये। बात आयी-गयी हो गयी। उस व्यक्ति को सबक मिल गया था। मुझे नयी जानकारी। हाँ, शाम का मेरा टेबल टेनिस खेलना चूक गया था।

तंत्र से जुडी बहुत सी ऐसी वस्तुओ का जबरदस्त बाजार है। इंटरनेट ने इस बाजार मे चार चाँद लगा दिये है। आप लेखो और दूसरे माध्यमो से जितना भी लोगो को जगाने की कोशिश करे सारे प्रयास इनकी मार्केटिंग के सामने असफल सिद्ध होते है। तंत्र के लिये गोरोचन का प्रयोग किया जाता है। मैने अपने लेखो मे लिखा है कि गोरोचन वाली गाय मुश्किल से मिलती है। गाँव वाले ऐसी गायो को विशेष महत्व देते है। देश के कई भागो मे इनकी पूजा भी की जाती है। इनका धार्मिक महत्व है। पर तंत्र से जुडे लोग गोरोचन से वशीकरण और मोहनी कार्यो को अंजाम देने का दावा करते है। इसके लिये गोरोचन की मुँहमाँगी कीमत दी जाती है। ग्रामीण इस बात को जानते है। बहुत से लालची ग्रामीण ऐसी गायो को जहर देकर मारने मे देर नही करते है। पैसे के आगे सब अन्धे हो जाते है। मैने अपने सर्वेक्षणो के माध्यम से अस्सी से अधिक ऐसी गायो की पहचान की थी। ये गाये अलग-अलग गाँवो मे थी।

मुझे एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि ऐसी गायो का मूत्र विशेष औषधीय गुणो से परिपूर्ण होता है। बतौर औषधि इस मूत्र का प्रयोग किया जाता है। सफेद दाग मे भी इस मूत्र का प्रयोग होता है। उन बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सको ने कहा था कि जहाँ भी ऐसी गाये मिले उनके लिये मै मूत्र लेता आऊँ। मैने बहुत बार ऐसा किया है और

आज भी करता हूँ। जटिल रोगो से जूझ रहे रोगियो को ऐसी गायो की सेवा करने की सलाह दी जाती है। उनसे गायो को दिन मे कई बार स्पर्श करने की सलाह दी जाती है। पता नही इसका विज्ञान क्या है पर मैने रोगियो को लाभ होते देखा है।

जब से छत्तीसगढ अलग राज्य बना है तब से अचानक ही तांत्रिक गतिविधियो के लिये गोरोचन की माँग अचानक से बढी है। कनाडा और जर्मनी जैसे देशो से लोग पर्यटको के रुप मे आकर गोरोचन की माँग कर रहे है। परिणामस्वरुप गोरोचन वाली गायो की संख्या कम होती जा रही है। मैने ही बीस से ज्यादा गाये खोयी है।

आप गोरोचन की टीका लगाये बहुत से लोगो को महानगरो मे देखेंगे। पता नही इससे वे किसी को मोह पाते है या नही पर एक निरीह जीव को मारकर ऐसा काम करने वाले शायद ही अच्छा जीवन जी पाते हो। तंत्र के बढते मायाजाल का विरोध बहुत बडे पैमाने पर करना होगा तभी हम कुछ हद तक सफल हो सकते है।

कल ही क्लब मे एक स्थान पर भीड को देखकर मैने पूछा कि क्या माजरा है? मुझे देखते ही एक सज्जन बोले कि इनको दिखाओ, ये बता पायेंगे कि ये असली है या नही? एक धनाढ्य व्यक्ति नीले कपडो मे कुछ रखे हुये थे। मुझे देखकर बोले कि आप कुछ समय निकालकर मेरे घर पधारे तब मै इनका राज बताऊँगा। पास ही उनका घर था सो उनके साथ चल पडा। जब उन्होने नीले कपडे को खोला तो मेरी आँखे फटी की फटी रह गयी। वे बोले कि ये नाग मणियाँ है। अब मेरी सारी इच्छाए पूर्ण हो जायेगी। पैसा ही पैसा होगा। कुबेर का खजाना भी कम पड जायेगा। मैने इन मणियो को पहचान लिया। सेठ जी ने कुछ लाख रुपयो मे इन्हे खरीदी थी। वह ठग अपना काम कर गया था। मुझे पिताजी की बात याद आ गयी कि जब तक इस दुनिया मे बेवकूफ है, ठग कभी भूखे नही मरेंगे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-49

- **पंकज अवधिया**

तीन बून्दो से डायबीटीज का शर्तिया इलाज, जामुन की बाते और विष की सफाई

“तीन बून्द, केवल तीन बून्द से किसी भी प्रकार की डायबीटीज का जड से इलाज हो सकता है।“मेरे एक मित्र को जब मधुमेह पर लिखी जा रही लम्बी-चौडी रपट के विषय मे पता चला तो उन्होने एक विशेषज्ञ के बारे मे यह बताया। मैने पूछा कि क्या वे पारम्परिक चिकित्सक है या आधुनिक चिकित्सक? वे बोले कि पारम्परिक चिकित्सक के आस-पास है। पूरी तरह से पारम्परिक चिकित्सक नही है। यदि आप चाहो तो मै आपको उनके पास ले चलता हूँ। तीन बून्द मे डायबीटीज का जड से इलाज, ऐसा दावा करने वाले से मिलने मे भला क्या बुराई है? विशेषज्ञ मेरे शहर से सैकडो किलोमीटर की दूरी पर थे। सो, मुँह अन्धेरे ही हम उस ओर निकल पडे।

काफी दूरी तय करने के बाद हम विशेषज्ञ के ठिकाने पर आ पहुँचे। हमने उन्हे आने के विषय मे बताया नही था। हम आम रोगी बनकर जाना चाहते थे। उनके घर के सामने कुछ रोगी बैठे हुये थे। वे सभी हमारी तरह दूर से आये थे। एक तैतीस वर्षीय रोगी ने बताया कि उसके पूरे परिवार को डायबीटीज है। वह एलोपैथी की दवाए तो खाता ही है साथ ही हर उस व्यक्ति की सलाह मानता है जो जडी-बूटी के बारे मे बताता है। उसने तीन महिने तक बेल की पत्तियो के रस का सेवन किया था। फिर बोगनवीलीया की पत्तियो का रस भी पी गया था। गेहूँ का रस पी रहा था और साथ ही नोनी जैसे उत्पाद पर भी पैसे बहा रहा था। हम उसकी प्रयोगधर्मिता पर भौचक्क थे। हमे उसके पैंक्रियाज पर भी दया आ रही थी। पता नही कैसे-कैसे दिन उसे और देखने होंगे?

वह युवक हमसे बाते करते वक्त बार-बार छोटी सी मशीन को शरीर मे चुभोने को आतुर दिखता था। मुझे तो वह मधुमेह से ज्यादा “मधुमेह के भय” का मारा दिखा। यह भय खतरनाक है। यदि रोगी पढा-लिखा हो तो यह भय मधुमेह से ज्यादा उस पर हावी हो जाता है। शरीर बेवजह ही बोझ महसूस करने लगता है। पता नही बेल की पत्तियो के रस ने उसके शरीर का क्या हाल किया होगा?

बहरहाल, विशेषज्ञ को अपने दवाखाने मे आने मे समय था तो हम गाँव भ्रमण के लिये निकल पडे। इस बार मानसून मे देरी के कारण जामुन अभी तक नही शहरो मे नही आया है। गाँव मे जामुन से वृक्ष लदे हुये थे। फलो को तोडकर शहर ले जाने की तैयारियाँ हो रही थी। ग्रामीणो ने बताया कि शहर मे जामुन हाथो=हाथ बिक जाता है। शहर रोगो का घर है और यह फल रोगो को दूर रखता है। मधुमेह मे इसकी विशेष भूमिका है। मधुमेह के रोगी तो इस पर टूट पडते है। पेट भरने के बाद भी इसे खाते रहते है इस तर्ज पर कि मानो आज ही उन्हे मधुमेह से छुटकारा मिल जायेगा। फिर वे

गुठलियो को रख लेते है। साल भर गुठलियो का चूर्ण के रुप मे सेवन करते रहते है। बिना किसी से पूछे और बिना किसी को बताये। इस पर मधुमेह की चिकित्सा मे पारंगत पारम्परिक चिकित्सक खूब हँसते है। वे कहते है कि "जामुन खाने की कला" के बारे मे लोग नही जानते है। जामुन कब खाना, कब नही खाना, जामुन खाने के बाद क्या पीना और क्या नही पीना, भोजन मे किस तरह का परहेज करना आदि-आदि जाने और समझे बिना शहरी रोगी बस खाने के लिये टूट पडते है। जामुन की गुठली यदि ठीक से नही चुनी गयी हो तो पेट और किडनी की कई प्रकार की बीमारियाँ हो सकती है। जामुन प्राकृतिक है, इसके ये तो मायने बिल्कुल नही है कि इससे केवल लाभ ही होगा। यह औषधी है तो इसे खाने की विधि होगी। उम्र के अनुसार अलग-अलग मात्रा होगी।

सबसे पहले तो जामुन स्वाद लेकर आराम से खाना चाहिये। हडबडी मे ज्यादा जामुन खाने की बजाय आराम से खाये गये जामुन ज्यादा लाभदायक है। जामुन पके होने चाहिये न कि बाजार की माँग के अनुसार शाखाओ से गिराये गये अधपके जामुन। शहरो मे तो जामुन पर मख्खियाँ भिनभिनाती रहती है। जब ठेले वालो को डाँटो तो वे कहते है कि जामुन को ढककर रखेंगे तो लोग कैसे जान पायेंगे कि हम जामुन बेच रहे है। मुझे अपनी रपट याद आती है जिसमे मैने जामुन के उन पक्षो के बारे मे विस्तार से लिखा है जिनके बारे मे प्राचीन चिकित्सा विशेषज्ञ शायद लिखना भूल गये थे।

गाँव के भ्रमण के बाद हम वापस लौटे तो विशेषज्ञ आ चुके थे। वह तैतीस वर्षीय युवक दवा लेकर बाहर निकल रहा था। उसके पास दसो किस्म की दवाए थी। कुछ तो टीवी वाले बाबाओ के उत्पाद थे। मुझे तो तीन बून्द से इलाज की बात बतायी गयी थी। मित्र ने शांत रहने को कहा और हम विशेषज्ञ के सामने पहुँच गये। उन्होने थोडी बहुत जानकारी ली और फिर मुझे मधुमेह का रोगी घोषित कर दिया। नाडी देखकर बोले कि आपने खूब अंग्रेजी दवाए ली है। जबकि मै न तो मधुमेह का रोगी हूँ और न ही कोई दवा ली है। वे लम्बी-चौडी दवाओ की सूची लिखने मे व्यस्त हो गये। मुझसे रहा नही गया। मैने तीन बून्दो वाले इलाज की चर्चा छेड दी। वे बोले कि तीन बून्दो वाली दवा की कीमत हजारो मे है। मै पैसे देने के लिये तैयार हो गया पर पहले पूछा कि क्या इस बात की गारंटी है कि रोग पूरी तरह ठीक हो जायेगा और आजीवन किसी दवा की जरुरत नही होगी? मैने उनसे यह भी कहा कि यदि आप गारंटी दे तो मै आपकी सिफारिश सरकार से कर सकता हूँ। आप निश्चित ही पुरुस्कार और सम्मान के हकदार होंगे। इस पर वे बगले झाँकने लगे। बोले कि गारंटी नही है। मैने कहा कि क्या आप उन रोगियो की सूची

दे सकते है जिन्हे लाभ हुआ है। उनका जवाब स्पष्ट नही था। वे मुझे टालने की कोशिश करने लगे।

अगले रोगी को वे आवाज देते इससे पहले मित्र ने राज खोला और मेरा परिचय दिया कि ये वैज्ञानिक है और मधुमेह से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान की रपट बना रहे है। इन्होने करोडो पन्ने मधुमेह पर लिखे है और अभी भी लिख रहे है। विशेषज्ञ ने परिचय सुन हाथ खडे करना ही ठीक समझा।

मैने अपनी रपट मे हजारो पारम्परिक चिकित्सको से मुलाकात से प्राप्त अनुभव को शामिल किया है। मुझे एक भी ऐसा पारम्परिक चिकित्सक नही मिला जिसने कुछ दिनो या चन्द दवाओ से इस मर्ज को ठीक करने का दावा किया हो। ज्यादातर ने तो साफ शब्दो मे कहा कि यदि कोई ऐसा दावा करे तो वह महज लफ्फाजी होगी। मेरी रपट मे वनौषधीयो का वर्णन तो है ही पर साथ मे सही वनौषधीयो के चुनाव पर काफी विस्तार से लिखा गया है। वनौषधीयो के प्रयोग के साथ कैसा भोजन लेना है, यह भी महत्वपूर्ण है। आज का शहरी मधुमेह रोगी मनचाहा भोजन करता है। अंग्रेजी दवाए तो लेता ही है पर साथ ही अपने अधकचरे ज्ञान से जडी-बूटियाँ भी लेता रहता है। यह मधुमेह से लडने की शरीर की क्षमता को कम कर देता है। शरीर रसायनो के सामने धराशायी हो जाता है। रोग से लडने की उसकी इच्छाशक्ति एक तरह से मर जाती है। वह रसायनो पर आश्रित हो जाता है। शरीर की एक बार ऐसी दशा हो गयी तो इससे बाहर निकलना बडा ही मुश्किल होता है। मधुमेह का पता लगते ही दवाओ का आश्रय लेने की बजाय शरीर को स्वस्थ्य बनाने की ओर ध्यान देना चाहिये। ऐसा करने से कुछ समय मे ही मधुमेह से लडने के लिये शरीर तैयार हो जाता है। फिर विशेषज्ञो की राय लेकर ही वनौषधीयो का सेवन करना चाहिये। सही विशेषज्ञो की सलाह लेनी चाहिये। कमीशन का काम करने वालो से बचके रहना चाहिये। चाहे उनका कितना भी बडा नाम क्यो न हो। एक बार मे एक वनौषधी से शुरुआत सही होती है। ऐसा नही कि आप नीम भी ले, बेल भी और जामुन भी। मौसमी फलो को ले। साल भर नाना प्रकार के फल मिलते रहते है। जब जामुन का मौसम न हो तो किसी भी रुप मे जामुन खाने की बजाय उस मौसम का फल खाइये।

अपने रोगियो को निपटाने के बाद विशेषज्ञ मेरी ओर मुखातिब हुये। हाथ जोडकर बोले कि आपने इस विषय मे इतना लिखा है इसलिये आपसे एक विनती है। मै तीन बून्दो वाला नुस्खा आपके सामने रखना चाहता हूँ, आप अपनी राय बताये। मेरे हामी भरने पर वे बोले कि मै बोगनवीलिया की पत्ती, उस काँटे वाली वनस्पति की पत्ती और आइक्सोरा

के फूल का रस रोगियो को देता हूँ। उस काँटे वाली वनस्पति की पहचान मैने आमतौर से बागीचे मे उगने वाले सेंसीवेरिया के रुप मे की। मैने उनसे कहा कि आप किस आधार पर इन तीनो को मिलाते है? बोगनवीलिया और सेंसीवेरिया तो भारतीय मूल की वनस्पति नही है। आइक्सोरा की यह प्रजाति भी भारतीय नही लगती है। यह भारतीय पारम्परिक ज्ञान नही है। बोगनवीलिया को मधुमेह के लिये उपयोगी आजकल लोग बताने लगे है पर इसका कोई वैज्ञानिक और पारम्परिक आधार नही मिलता है। सेंसीवेरिया को जहरीला पौधा माना जाता है। विदेशो मे तो विशेषज्ञ इसे घर के बागीचे मे न लगाने की सलाह देते है क्योकि यह बच्चो और पालतू जानवरो के लिये नुकसानदायक हो सकता है। आइक्सोरा से मधुमेह के इलाज के विषय मे भी मुझे संश्य ही है। इस पर विशेषज्ञ ने कहा कि मैने अपनी परिकल्पना के आधार पर इसे बनाया है। मैने बिना देरी के कहा कि यह आपकी परिकल्पना न जाने कितनो के लिये अभी तक जानलेवा साबित हो चुकी होगी। भगवान जाने ऐसा मनमाना मिश्रण शरीर के अन्दर क्या गुल खिला रहा होगा? यह तो सरासर अपराध है मानव जीवन से खिलवाड का।

इस बीच दूसरे गाँव वाले भी आ गये। उन्होने मेरी बात सुनी तो विशेषज्ञ को समझाया कि भगवान का दिया सब कुछ है फिर चन्द पैसो के लालच मे यह गलत काम क्यो कर रहे हो? मुझे बताया गया कि वह विशेषज्ञ (अब तो उसे विशेषज्ञ कहना भी बेमानी लगता है) दसो एकड जमीन का मालिक है। धान और वनोपज का खरीददार है। उसकी ट्रके चलती है। महुवे की शराब और मुर्गियो का कारोबार है। और न जाने क्या-क्या धन्धे है। लडका फर्जी चिकित्सक है। बाप-बेटे मिलकर इस तीन बून्द वाले नुस्खे से लोगो को बेवकूफ बनाते है। इसके लिये बकायदा उन्होने आदमी रखे हुये है जो शहरो से रोगी पकड के लाते है।

मेरे मित्र भी सब कुछ सुन रहे थे। उन्होने कुछ दिनो पहले ही तीन बून्दो का सेवन किया था। मेरी बाते सुनकर उन्हे उबकाई आने लगी। मानो अभी वे बून्दे पेट मे हो। वे बडा असहज महसूस कर रहे थे। मै उन्हे लेकर डूमर के वृक्ष के पास गया जहाँ बन्दरो ने फल खाकर नीचे फेके थे। ताजे डूमर के फल एकत्र किये और छककर खाये। मित्र ने पूछा कि इससे तीन बून्दो का जहर तो उतर जायेगा पर क्या मधुमेह मे भी लाभ होगा? मैने कहा कि इससे शरीर को लाभ होगा। शरीर को लाभ होगा तो मधुमेह मे लाभ तो होगा ही। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-50

- पंकज अवधिया

हड्डी रोगो की चिकित्सा मे जुटा एक गाँव, खरदा कन्द और संवर्धित ज्ञान की महत्ता

इस जंगल यात्रा के दौरान मै एक ऐसे गाँव पहुँचा जहाँ लगभग सभी घरो मे हड्डी रोगो की चिकित्सा होती थी। बडी संख्या मे रोगी यहाँ एकत्र थे। रोगियो लगातार यहाँ आते रहते है। सडक पर पडे गुटखे के पाउच और चिप्स के पैकेट इसके प्रमाण थे। आज से दस-बारह साल पहले जब मै उस गाँव मे आया था तब केवल एक ही पारम्परिक चिकित्सक रोगियो को देखते थे। मैने उनसे लम्बी बात की थी और फिर अपने बाटेनिकल डाट काम वाले शोध दस्तावेजो मे उनके बारे मे विस्तार से लिखा था। वे इतने सहज थे कि रोगियो को जडी-बूटी के बारे मे बता देते थे। पर फिर भी रोगी उनके हाथो से ही उन जडी-बूटियो को लेना पसन्द करते थे। इतने सालो के बाद एक बार फिर वहाँ जाकर मै रोमांचित था। अपना देश इतना बडा है कि एक ही स्थान मे दोबारा जाना कम ही हो पाता है। शायद इस जन्म मे देश के सभी कोनो तक जाकर पारम्परिक चिकित्सको से मिलना सम्भव ही नही हो पाये पर जितना सम्भव हो उतना तो किया ही जा सकता है।

गाँव पहुँचने पर मैने उसी पारम्परिक चिकित्सक से मिलने का मन बनाया। मै उनके घर पहुँचा तो वहाँ नाममात्र की भीड थी। पारम्परिक चिकित्सक तो दिखे नही। हाँ, उनकी शक्ल से मिलती0जुलती शक्ल वाला एक व्यक्ति रोगियो को देख रहा था। वह उनका लडका था। शायद उसने मुझे पहले देखा हो। झट से पहचान गया और घर के अन्दर ले गया। अन्दर खाट पर वही पारम्परिक चिकित्सक लेटे हुये थे। बहुत उम्र हो गयी थी उनकी। मुझे देख वे उठ बैठे और हम चर्चा करने लगे।

यह गाँव जंगलो से घिरा हुआ था। "था" इसलिये कह रहा हूँ क्योकि इस यात्रा के दौरान मैने खेत ही खेत देखे। धान के खेत जिनमे खेती की तैयारी चल रही थी। खेतो मे बबूल के वृक्ष जमे हुये थे। हाँ, कुछ परसा और पडरी के वृक्ष भी थे जो इस बात का अहसास करा रहे थे कि यहाँ पहले जंगल था। इन दस-बारह सालो मे सब कुछ कितना बदल गया। जंगल को स्थानीय लोगो ने चूल्हे मे फूँक डाला। अब वे बहुत पछता रहे है। जंगल से उन्हे सब कुछ मिल जाया करता था। वे इसे बचाते हुये इसका दोहन कर सकते थे

जैसा कि उनके पूर्वज पीढीयो से कर रहे थे। अब उन्हे लकडी से लेकर दवाओ तक के लिये शहर पर निर्भर रहना होता है। और इन सब के लिये जेबे ढीली करनी होती है। जंगल के विनाश ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को असंतुलित कर दिया है।

"मुफ्त मे ज्ञान बाँटना मेरे लिये अभिशाप बन गया साहब।" बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक की बातो मे गहरा दर्द छुपा हुआ था। उन्होने रोगियो की बढती भीड को देखते हुये गाँव के ही कुछ लोगो को अपना ज्ञान बाँट दिया। ज्ञान का वितरण हो रहा है- ऐसा सुनकर दूर-दूर से लोग आये। पारम्परिक चिकित्सक ने उन्हे विधि विधान से सब कुछ बताया और उनसे शपथ करवायी कि किसी भी हालत मे वे चिकित्सा के पैसे नही लेंगे। उनके चेलो ने सब कुछ एकस्वर से स्वीकार किया। पर सभी ने इसका पालन नही किया। बहुत से चेले आज भी नि:शुल्क चिकित्सा कर रहे है पर उनके अपने गाँव के चेलो ने इसे व्यापार बना दिया। अब आप तो जानते ही है कि व्यापार मे सब कुछ सीधा सादा नही होता है। जिसमे छल प्रपंच न हो वह कैसे सफल व्यापारी होगा? उनके चेलो ने सबसे पहले गुरु को बदनाम करने की राह पकडी। उनके बारे मे उडा दिया गया कि वे इलाज कम और जादू अधिक करते है। फिर इलाज के लिये मोटी फीस तय कर दी गयी। अनपढ चेलो ने शहरो के पैथोलाजी लैब से सम्पर्क कर लिया। अब रोगी को वहाँ से जाँच करवानी पडती थी। शहर के कुछ आधुनिक चिकित्सक भी इस व्यापार मे भागीदार हो गये। चेलो का भला हुआ पर गुरु के पास रोगियो का टोटा हो गया।

खरदा कन्द नाम से पहचानी जाने वाली वनस्पति पूरे प्रदेश मे मिलती है। पारम्परिक हड्डी विशेषज्ञ इसे अक्सर प्रयोग मे लाते है। पर इसके अलावा भी इस वनस्पति के ढेरो उपयोग है। इसका प्रयोग अनगिनत पारम्परिक नुस्खो मे होता है। इनमे से बहुत से ऐसे नुस्खे है जो इसके बिना अधूरे माने जाते है। जब से राज्य मे नयी पीढी के हड्डी विशेषज्ञो की बाढ आयी है तब से इस कन्द का मिलना कम हो गया है। न केवल स्थानीय उपयोग के लिये इसे एकत्र किया जा रहा है बल्कि अब तो व्यापारी भी बडी मात्रा मे इसका एकत्रण करवाकर महानगरो मे भेज रहे है। व्यापारी अपने सम्पर्को को बता रहे है कि कैसे इस कन्द का प्रयोग करना है? इस कन्द का एकत्रण करने वालो का कहना है कि यदि यही स्थिति रही तो आने वाले कुछ सालो मे कन्द के लिये मारामारी मच जायेगी।

देश मे औषधीय और सगन्ध फसलो की व्यवसायिक खेती कर रहे किसान कुछ चुनिन्दा फसलो तक ही सीमित है। इन फसलो से उन्हे उतना अधिक लाभ नही हो पा रहा है। मै

अपने लेखो के माध्यम से खरदा कन्द जैसी वनस्पतियो की खेती की सलाह देता हूँ ताकि किसान इससे लाभ प्राप्त कर सके और जंगलो पर दबाव कम हो सके।

मुझे याद आता है कि सरगुजा मे अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान मैने इस कन्द पर आश्रित रहने वाले एक बीटल को देखा था। वहाँ के पारम्परिक चिकित्सको ने बताया था कि यह कीट केवल इस वनस्पति को खाता है और इसी पर अपना जीवन चक्र पूरा करता है। यदि यह वनस्पति समाप्त हुयी तो यह कीट भी समाप्त हो जायेगा। इस कीट और वनस्पति सम्बन्ध की यह विशेषता थी कि कीट पूरी तरह से वनस्पति को नष्ट नही करता है और वनस्पति ने भी इस कीट को नष्ट करने के लिये इतने लम्बे समय मे रसायन विकसित नही किये। पारम्परिक चिकित्सको के लिये कीट और वनस्पति दोनो ही उपयोगी है। कीटो का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा मे औषधि के रुप मे वे करते है। जिन जंगलो से कन्दो को बडी मात्रा मे उखाडा जा रहा है वहाँ इस कीट की हालत क्या हो रही होगी, यह कल्पना से परे है। मै उनके व्यवहार पर निगरानी रखना चाहता हूँ पर दूसरे कार्यो के कारण यह सम्भव नही हो पा रहा है। काश! ऐसे समय मे कोई शोधार्थी सामने आता और इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ मे ले लेता पर अपने देश मे तो सभी ने विदेश का रुख करने की ठानी है।

बहरहाल, उस गाँव के बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक की ओर लौटे। उन्होने अपनी बात जारी रखते हुये कहा कि उनके पूर्वजो ने इस कन्द का एक ही तरह से उपयोग बताया था। इसके दूसरी तरह से उपयोग के विषय मे मुझे जानकारी नही है। प्रचलित विधि तो चेलो मे बँट गयी और वे चेले मेरे बेटे को आगे बढने नही दे रहे है। इससे ही मै निराशा मे हूँ। मैने खाट पकड ली है। पारम्परिक चिकित्सक की ये बाते निश्चित ही दुख पहुँचाने वाली थी। क्या मै उनकी मदद कर सकता था? हाँ, कर तो सकता था। पर कैसे?

मेरी शोध की कई विधियो मे से एक विधि यह रही है कि किसी नुस्खे के विषय मे जानकारी होने पर मै उसी नुस्खे की चर्चा जितने भी पारम्परिक चिकित्सको से मिलता हूँ, उनसे करता हूँ। पारम्परिक चिकित्सक अपने अनुभव के आधार पर उस नुस्खे के गुण-दोष बताते जाते है। इससे उस नुस्खे के विषय मे जानकारी बढती जाती है। एक पंक्ति का नुस्खा इस तरह कालांतर मे हजारो पन्नो का हो जाता है। गाँव के इस बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक से दस-बारह साल पहले मैने जो खरदा कन्द का नुस्खा सीखा था उसके साथ भी मैने ऐसा ही किया। आज खरदा कन्द का यह सरल नुस्खा कम्प्यूटर की 50 एमबी से अधिक की फाइल की शक्ल ले चुका है। इसमे इस कन्द के हजारो प्रयोग है। इसे तीन सौ से अधिक वनस्पतियो के साथ प्रयोग करके शक्तिशाली बनाया जा

सकता है। अब वह समय आ गया था कि मै इस बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक का ज्ञान "संवर्धित ज्ञान" के रुप मे उन्हे वापस करुँ। मैने उन्हे इसके विषय मे विस्तार से बताना आरम्भ किया। अपने मूल ज्ञान के इस विस्तार को जानकर वे अचम्भित थे। उन्होने इसका कुछ अंश ही लिया और फिर आजमाने की बात कही। इससे निश्चित ही उनके रोगियो को अधिक लाभ होगा। उनकी आँखो मे आँसू थे। वे धन्यवाद दे रहे थे पर इसमे मेरा कोई विशेष योगदान नही था। मैने तो बस इस ज्ञान को संवर्धित करने मे अपनी छोटी सी भूमिका निभायी। यह अलग बात है कि इसे संवर्धित करने मे न जाने कितना धन जेब से चला गया पर इस बात का सुकून है कि यह "संवर्धित ज्ञान" असंख्य रोगियो की जान बचा पायेगा।

इस मूल ज्ञान के संवर्धन का अभी अंत नही हुआ है। अभी मुझे ना जाने कितने और पारम्परिक चिकित्सको से मिलना है और उनसे इस ज्ञान के विषय मे जानना है। खरदा कन्द के ज्ञान को जानने के बाद बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने मुझे एक उपयोगी नुस्खा बताया। यह नुस्खा सिकल सेल एनीमिया से सम्बन्धित था। राज्य की 17 प्रतिशत से अधिक आबादी इस लाइलाज समझे जाने वाले रोग से प्रभावित है। बहुत से रोगी इस मर्ज को साथ लिये लम्बे समय तक जीवित रह जाते है। उन्हे समस्याए आती रहती है। इन्ही समस्याओ के समाधान के लिये बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने यह नुस्खा बताया। मैने सिकल सेल एनीमिया पर बहुत कुछ लिखा है। मैने उन्हे धन्यवाद दिया और उम्मीद जाहिर की तो इस मूल नुस्खे को संवर्धित करके मै वापस लौटाने एक दिन फिर से आऊँगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-51

- **पंकज अवधिया**

बीस हजार किस्मो की हर्बल टी वाला देश और जहरीली आम चाय पीते देशवासी

पहाडी पर पारम्परिक चिकित्सक बहुत आगे निकल गये। मै तेजी से चढ नही पा रहा था। पीछे घने जंगल मे मुझे कुछ डर सा महसूस हो रहा था पर इतनी हिम्मत नही थी कि तेज कदमो से चलकर आगे जा रहे पारम्परिक चिकित्सको के साथ हो लूँ। एक वृक्ष

की शाखा का सहारा लेना चाहा तो बहुत से ब्लिस्टर बीटल्स दिखायी दिये। ब्लिस्टर माने फफोले। जरा सा भी खतरा महसूस होने पर ये कीडे बिना देरी अपने शरीर से पिचकारी की तरह तरल छोडते है। जैसे ही यह तरल त्वचा के सम्पर्क मे आता है फफोले पड जाते है। बेहद दर्द होता है। ये कीडे दिखते सुन्दर है। मैने अपनी प्रयोगशाला मे इन्हे रखकर सालो तक शोध किया था पर प्रयोगशाला तो प्रयोगशाला होती है, प्रकृति मे उनकी शक्ति अलग ही होती है। इससे पहले कि वे मेरी ओर बढते मैने आगे बढने मे ही भलाई समझी। सीधी चढाई मे बडी तकलीफ होती है। विशेषकर जब जंगल मे बहुत नमी हो। अचानक आँखो के सामने अन्धेरा छाया और मै गिरने लगा। गिरते-गिरते मुझे लगा कि सामने दो लोग खडे है। मै कुछ समझता इससे पहले होश खो बैठा।

जब होश आया तो पारम्परिक चिकित्सक मुझे घेरे हुये बैठे थे। सचमुच दो नये लोग खडे थे। उन्होने ने ही मुझे गिरता देखकर पारम्परिक चिकित्सको को पुकारा था। ये नये लोग स्थानीय विश्वविद्यालय मे शोध कर रहे थे और वनस्पतियो की तलाश मे आये थे। वे पूरी तैयारी से थे। उनके पास सुरक्षा के सभी उपकरण थे, दवाईयाँ थी और साथ ही गरम पानी भी था। मुझे अपनी लापरवाही का ख्याल आया। मै अपने साथ कुछ भी लेकर नही चलता। कुछ दवाईयाँ रहती है तो वे गाडी मे छूट जाती है। कभी-कभी पीने का पानी रख लेता हूँ। सालो से जंगल जाने के कारण पारम्परिक चिकित्सको पर इतना अधिक विश्वास हो गया है कि लगता है, वे सब सम्भाल लेंगे।

शोधार्थियो ने मुझे दवाए देनी चाही तो पारम्परिक चिकित्सको ने मना कर दिया। उन्होने गरम पानी माँगा। फिर उसमे पास के कुछ वृक्षो की ताजी जडे डाल दी। कुछ समय बाद यह पानी मुझे पीने को दिया गया। मुझे कुछ राहत मिली। थोडे आराम के बाद हम आगे बढने के लिये तैयार हो गये।

छात्र जीवन ही से मुझे हर्बल टी के बारे मे जानने की बडी ही उत्सुकता रही है। उस समय लेमन ग्रास की पत्तियो से बनी चाय को ही एकमात्र हर्बल टी के रुप मे मै जानता था पर जब मैने पारम्परिक चिकित्सको के साथ अधिक समय व्यतीत करना आरम्भ किया तो इतनी सारी हर्बल टी के विषय मे जानकारी एकत्र हो गयी कि अब उन्हे याद रख पाना मुश्किल है। हर रोग के लिये पारम्परिक चाय उपलब्ध है। हम भले ही इसे हर्बल टी कहे पर पारम्परिक चिकित्सको के लिये यह काढा है। काढा का नाम सुनते ही कडवाहट की याद आ जाती है। पर सभी काढे कडवे नही होते है। यदि होते भी है तो पारम्परिक चिकित्सक जानते है कि कैसे उन्हे स्वादयुक्त बनाया जा सकता है।

मुझे याद आता है कि जब मै सरगुजा मे वानस्पतिक सर्वेक्षण कर रहा था तब गर्मी के दिनो मे एक बार गश खाकर गिर पडा था। पारम्परिक चिकित्सको ने पास ही उग रही मीठी पत्ती नामक वनस्पति को तोडा और पास की झोपडी मे मुझे ले गये। मीठी पत्ती को पानी मे उबाला और बोले, लीजिये, यह चाय पीजिये। इससे लू का असर चला जायेगा। सचमुच वह चाय कमाल की थी। इससे पहले स्कोपेरिया नामक उस वनस्पति को हम किसानो का दुश्मन समझते थे। हमे पढाया गया था कि इससे देखते ही उखाड कर नष्ट कर देना चाहिये। पर इसी बेकार समझी जाने वाली वनस्पति का यह गुण देखकर मै दंग रह गया।

आजकल मलेरिया पर शोध कर रहे दुनिया भर के वैज्ञानिक ऐसा घोल बना रहे है जिसे मलेरिया प्रभावित क्षेत्रो मे लोगो को पीना होगा। इस घोल को पीने वाले लोगो को जैसे ही मच्छर काटेगा, वह तुरंत मर जायेगा। इसे नयी खोज बताया जा रहा है और इस अकादमिक उपलब्धि पर विदेशी मुहर लगा दी गयी है। मुझे याद आता है, बस्तर के जंगलो मे किये जा रहे वानस्पतिक सर्वेक्षणो का समय जब मलेरिया से बचाव जरुरी था विशेषकर बरसात के दिनो मे। हमे शरीर को ढककर रखने की सलाह दी जाती थी। जंगल मे जाते वक्त खुले भाग मे मच्छर रोधी क्रीम लगाने की सख्त हिदायत थी। रात को रेस्ट हाउस मे मच्छरदानी लगानी पडती थी पर पारम्परिक चिकित्सक इन सब से बेपरवाह मजे से नंगे बदन जंगल मे आगे-आगे चलते रहते थे। यह उनकी हर्बल टी का असर था जिसे वे पीने को सभी को देते थे पर इसे बनाने की विधि किसी को नही बताते थे। स्वाद से यह स्पष्ट था कि इस चाय मे भुईनीम के पौध भाग होते थे पर शेष बीस अवयवो के बारे मे जानकारी नही मिल पाती थी। यह चाय पीने मे मिलजुले स्वाद वाली होती थी पर इसे पीने के बाद खूब पसीना आता था और शरीर मे नयी स्फूर्ति का संचार होता था। पारम्परिक चिकित्सक जंगल मे चलते समय एक विशेष प्रकार के मकोडो को पकडकर अपने पास रखने की बात कहते थे। एक जंगल यात्रा के दौरान दस मकौडे पकडने पर ही वे हर्बल टी का राज बताने को तैयार थे। यह शर्त बडी टेढी थी पर मुझे तो इसे पूरा करना ही था। मुझे यह जानकर बडा आश्चर्य हुआ कि मीठी पत्ती नामक उसी वनस्पति के कारण ही चाय स्वादिष्ट होती थी। शेष सभी अवयव बेहद कडवे थे। जब हमे मच्छर काटते थे तो अपने आप गिर कर तडपने लगते थे। कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो जाती थी। इस चाय का एक भी ऐसा अवयव नही था जो शरीर के लिये नुकसानदायक था। सभी के अपने फायदे थे।

पिछले सप्ताह ही जब मै अपने डेटाबेस मे हर्बल टी के गिनती लगा रहा था तो कुल संख्या बीस हजार से अधिक निकली। हर रोग के लिये हर्बल टी पारम्परिक चिकित्सको के पास उपलब्ध है। सभी को पीने का निश्चित समय है। दसो विधियाँ है। किस हर्बल टी के साथ क्या खाना है और क्या नही, यह भी ज्ञान उपलब्ध है। आप जानते ही है कि मै मधुमेह के पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर एक रपट तैयार कर रहा हूँ। मधुमेह के रोगियो को आधुनिक चिकित्सक नंगे पाँव चलने से मना कर देते है पर पारम्परिक चिकित्सक उन्हे नगे पाँव चलाते है दिन के अलग-अलग समय पर। उन्हे जंगल मे विशेष वनस्पतियो के ऊपर चलना होता है। यदि वनस्पतियाँ उपलब्ध नही होती है तो सूखे भागो का प्रयोग किया जाता है। ऐसे हर प्रयोग के बाद रोगी को विशेष हर्बल चाय दी जाती है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि चलने के बाद चाय पीने से होने वाला लाभ दोगुना हो जाता है। मधुमेह की चिकित्सा से सम्बन्धित अद्भुत पारम्परिक ज्ञान हमारे देश मे है पर यह विडम्बना ही है इसे आम लोगो के लिये प्रयोग नही किया जा रहा है।

चलिये, अब वापस उसी पहाडी पर पहुँचते है जहाँ मै हर्बल टी पीकर आगे बढने की तैयारी कर रहा था। शोधार्थियो से विदा लेकर हम कुछ आगे बढे तो पारम्परिक चिकित्सको ने चौकाने वाली बात बतायी। उनका कहना था कि शरीर को आराम की जरुरत थी और आपने आराम नही किया इसलिये गश खाकर गिर गये। यदि आपने आराम किया होता तो ऐसा नही होता। गिरने के बाद शरीर को जब आराम मिल जाता तो वह फिर से सक्रिय हो जाता। हमने आपको काढा पिलाकर गल्ती की। शरीर ऐसे किसी भी सहारे का जल्दी से आदी हो जाता है। इसलिये जब तक जरुरी न हो तब तक जडी-बूटी का सहारा नही लेना चाहिये। शरीर को भगवान ने जबरदस्त शक्ति दी है। वह कैसी भी परिस्थिति मे अच्छे से कार्य कर सकता है पर किसी भी तरह का सहारा देने पर उसे कमजोर बनने मे देर नही लगती है। अब आगे आपको चढने मे जल्दी से थकान होगी। इसलिये सब कुछ जानते हुये भी वे कभी ही इस काढे का प्रयोग करते है।

घर वापसी के बाद मैने इस पर गहन चिंतन शुरु किया तो मुझे अपनी बहुत सी गल्तियो का अहसास हुआ। मेरी रोज की दिनचर्या मे ढेरो ऐसी चीजे थी जिनके बिना दिन अधूरा लगता था। सबसे बडी जरुरत तो चाय की थी। दिन मे दो बार चाय पीना जैसे मजबूरी हो गयी थी। फिर बुद्धिजीवी होने के लिये काफी का सेवन भी अक्सर हो जाता था। पारम्परिक चिकित्सक मुझे दसो बार समझाते रहे कि मै चाय को अलविदा कह दूँ तो मेरा स्वस्थ्य सुधर जायेगा पर मै अनसुना करता रहा। इस बार मुझे अपनी भूल का

अहसास हुआ। मैने एक झटके मे चाय छोडने का मन नही बनाया। मुझे पारम्परिक चिकित्सको की हिदायत फिर याद आयी कि शरीर जिसका आदी हो गया हो उसे धीरे-धीरे छोडना चाहिये ताकि उसे तकलीफ न हो। मैने चाय इसी तरह धीरे-धीरे छोड दी। यदि मै आम इंसान होता तो शायद झट से हर्बल टी पीना शुरु कर देता पर मुझे पारम्परिक चिकित्सको की यह बात जमती है कि शरीर को रोजाना किसी भी प्रकार के काढे की जरुरत नही है। जहाँ तक हो सके इन काढो से दूर रहा जाय। जब कोई रोग जकड ले तब ही विशेषज्ञो की राय के आधार पर हर्बल टी का प्रयोग करे। इससे उसका जबरदस्त प्रभाव होगा।

चाय पर शोध पर अपना जीवन कुर्बान करने वाले मेरे एक अमेरिकी वैज्ञानिक मित्र को जब मेरे चाय छोडने के विषय़ मे पता चला तो वे बोले कि देखियेगा, अब आप को दुबले होने से कोई रोक नही सकेगा। आम चाय से शरीर का हार्मोनल संतुलन बिगड जाता है जो यह असंतुलन मोटापे को बढाता है। मैने उन्हे धन्यवाद दिया और पूछा कि आप अपने इस शोध के बारे मे दुनिया को क्यो नही बताते? इस पर वे बोले कि यदि मै यह कह दूँ तो दुनिया से आम चाय का जहरीला कारोबार समाप्त हो जायेगा और हमारी जान पर बन आयेगी। इसलिये हम सब कुछ जानते हुये भी चाय के बारे मे अच्छी लगने वाली बाते घुमा फिरा कर दुनिया को बताने मजबूर है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-52

- **पंकज अवधिया**

कोई तो बचाये मुझे कर्क राशि मे होने वाले इस सूर्य ग्रहण से?

22 जुलाई ,2009 का दिन मेरे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। इस दिन सूर्य ग्रहण है। सुबह चार बजे से रात बारह बजे तक का व्यस्त कार्यक्रम है पर मेरी राशि और ज्योतिष रोडे अटका रहे है। यदि ज्योतिषीयो की माने तो मेरा जन्म कर्क राशि मे पुष्य़ नक्षत्र मे हुआ है और सूर्य ग्रहण भी कर्क राशि मे पुष्य़ नक्षत्र मे है। सारी दुनिया कर्क राशि वालो के लिये संकट खडा किये हुये है। घर से निकलने से मना किया जा रहा है। दुर्घटनाओ की

आशंका है। मै बडे ही असम्नजस मे हूँ।

22 जुलाई को पहला निमंत्रण काली बाबा की तरफ से है। इस बाबा ने सुबह तीन बजे जंगल मे बुलाया है। तंत्र-मत्र दिखाने और सीखाने के लिये नही बल्कि जडी-बूटी के एकत्रण के लिये। आम तौर पर सूर्य ग्रहण के दौरान जडी-बूटियाँ एकत्र नही की जाती है। पर तंत्र से जुडे लोग विशेष किस्म की जडी-बूटियाँ ग्रहण काल मे ही एकत्र करते है। वे चन्द्र और सूर्य ग्रहण की प्रतीक्षा करते रहते है। मुझे तंत्र मे कम विश्वास है पर मै उनके साथ जाकर जडी-बूटी एकत्रण की विधियाँ देखना चाहता हूँ। उनकी शर्ते बडी कठिन है। हमे नंगे पाँव जंगल मे जाना होगा। जब ग्रहण के दौरान अन्धेरा हो जायेगा तो रोशनी नही करनी है। जहाँ खडे है वही खडे रहना होगा। योजना है कि उस स्थिति से पहले ही जडी-बूटियो तक पहुँच जाया जाये। काली बाबा अपने चेले चपाटो के साथ होंगे। उनके साथ शहरी धनाढयो की बडी संख्या होने की उम्मीद है। तंत्र की सबसे अधिक आवश्यकता उन्हे कुछ ज्यादा ही होती है। काली बाबा का कहना है कि लकडी के औजारो से दीमक की बाम्बी खोदी जायेगी और फिर हत्थाजोडी की तलाश की जायेगी। सुबह का समय जंगली जानवरो के लिये वापस लौटने का समय होता है। इतनी भीड मे उनके पास आने की उम्मीद कम ही है। पर मुझे लगता है कि मै ग्रहण के प्रति उनके व्यवहार को करीब से देख सकूंगा।

मैने रात को पास के एक शहर मे रुकने की योजना बनायी है ताकि तीन बजे तक काली बाबा के डेरे पर पहुँच सकूँ। जाहिर है इस जंगल यात्रा के दौरान मेरे मन मे ढेरो प्रश्न रहेंगे पर काली बाबा के सामने प्रश्न पूछने की मनाही है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि उन्हे सवाल के जवाब नही मालूम हो इसलिये सवाल पूछने पर ही पाबन्दी लगा दी गयी है। नेरे साथ फिल्म बनाने वाले होंगे जबकि मै भी कैमरे से लैस रहूंगा।

ऐसा नही है कि ग्रहण के दौरान मै पहले घर से बाहर नही रहा हूँ। मैने बहुत बार पारम्परिक चिकित्सको के साथ ग्रहण के दौरान जंगल की यात्रा की है। वे जंगल कुछ लेने नही बल्कि देने जाते है। वे जडी-बूटियो का घोल बनाते है और फिर उस घोल को बडे वृक्षो की जडो मे डाल आते है। ऐसा वे पीढीयो से कर रहे है। वे इस बारे मे ज्यादा बताते नही है पर यह अवश्य कहते है कि यह प्रक्रिया उपयोगी वनस्पतियो को ग्रहण के कुप्रभाव से बचाने के लिये ही है।

ग्रहण के समय मे बहुत बार स्थानीय अन्ध-श्रद्धा निर्मूलन समिति के साथ आम लोगो को यह दिखाने के लिये बाहर बैठा हूँ कि इससे कोई नुकसान नही होता है। पर इस बार

ज्योतिषीयो के अनुसार स्थिति सबसे खराब है। बहुत बडा अनर्थ होने वाला है। इसलिये पारिवारिक ज्योतिषी ने पहले ही चेतावनी दे दी है। चेतावनी तो सभी दे रहे है। एक अखबार कहता है कि कर्क राशि वालो को लगभग चारो ओर से संकट आयेंगे। मै इस वाक्य मे "लगभग चारो ओर" से डरा हुआ हूँ। चारो ओर लिखा होता तो कोई बात नही थी पर यह लगभग चारो ओर ने मुझे भयग्रस्त कर दिया है। सभी अखबार अलग-अलग मंत्र पढने की सलाह दे रहे है ग्रहण के दौरान। यह भी कह रहे है कि केवल यही मंत्र पढना है। दूसरे सभी मंत्र को भूल कर भी नही जपना है। मेरे पास बीस से अधिक मंत्र एकत्र हो गये है। इक्कीसवाँ मंत्र लेकर पारिवारिक ज्योतिषी अभी आते ही होंगे।

काली बाबा से निपटने के बाद एक सर्प विशेषज्ञ के पास जाना है। वे अपने चेलो को हरेली अमावस्या के दिन दीक्षा देते है। 22 जुलाई को ही हरेली अमावस्या भी है। हमे श्री गणेश नामक सर्प विशेषज्ञ के घर किये गये पिछले साल के प्रयोगो को दोहराना है। एक बार फिर विषयुक्त सर्पो के बीच नंगे बदन लेटना है और अपनी गुरु भक्ति का परिचय देना है। इस सब को सुनकर पारिवारिक ज्योतिष कहते है कि पिछली बार तो बच गये थे इस बार तो सब के सब सर्प डस लेंगे। सूर्य ग्रहण जो है मेरी राशि पर। वे जब सुनते है कि इसके बाद चावल के साथ सर्प विष का प्रसाद ग्रहण करने की योजना है तो उनसे रुका नही जाता है। वे पिताजी को आँखे फैलाकर डराते है और घोर अनर्थ की बात करते है।

इस सर्प विशेषज्ञ से मिलने के बाद उन कन्द मूलो को एकत्र करने जाना है जिन्हे हरेली अमावस्या के दिन चरवाहे पशुओ को खिलाते है। इससे पशु साल भर रोगो से बचे रहते है। देश के अलग-अलग हिस्सो मे अलग-अलग किस्म के कन्द खिलाये जाते है। बहुत से भागो मे तो इस दिन ग्रामीण भी कन्द मूलो का सेवन करते है। इन कन्दो को खोजने जंगल मे जाना होता है। पातालकुम्हडा जैसे कन्दो के लिये घंटे भर तक मेहनत करनी पडती है। आप एक किनारे पर खडे रहकर फोटोग्राफी नही कर सकते है। आपको स्वयम भी हाथ लगाना होगा। यदि गाँव मे नाना प्रकार के रोगी होंगे तो अलग-अलग प्रकार के कन्द लाने होंगे। यह मान्यता है कि आप जितने अधिक लोगो को कन्द-मूल देंगे उतना ही अधिक पुण्य आपको मिलेगा। मै यह अवसर खोना नही चाहता हूँ।

शाम होते-होते भी आराम का मौका नही मिलेगा। दर्जनो फोन आयेंगे कि आप हमारे गाँव आये रात को, आज तंत्र साधक और साधिकाए दिखेंगी। दूर से जलती हुयी आग दिखेगी जो ऐसे कुलाँचे मारेगी कि आप के होश उड जायेंगे। जाने कितने सालो से ऐसे फोन कालो के आधार पर मै उन गाँवो की यात्रा कर रहा हूँ और लोगो को बता रहा हूँ

कि इस अन्ध-विश्वास से बाहर निकले। हमे एक बार भी आग का गोला नही दिखा। न साधक दिखे और न साधिकाए।

"कर्क राशि वाले वैसे ही साढे साती का दंश झेल रहे है। ऊपर से सूर्य ग्रहण। पंकज जी को कुछ हो गया तो मेरी जिम्मेदारी नही है।"पारिवारिक ज्योतिषी कुद्ध होकर फोन कर रहे है। परिवारजन कहते है कि वे मेरे शुभ-चिंतक है। वरना भला कौन फोन पर फोन करके चेतावनियाँ देता है? आजकल तो दक्षिणा पर ही सारा ज्योतिष टिका होता है। इस तरह की बाते मन को व्यथित कर देती है। 22 जुलाई, 2009 मेरे इस जीवन मे दोबारा नही आने वाला न ही ऐसी अनोखी खगोलीय घटना इस जन्म मे दोबारा घटने वाली है। मै अपनी योजना पर अडिग रहना चाहता हूँ। मै तो जंगल जाऊँगा। मैने पारिवारिक ज्योतिषी को दो टूक कह दिया है। वे नाराज हो गये लगते है पर मुझे उम्मीद है कि इस शुभ-चिंतक को साथ चलने के लिये जल्दी ही मना लूंगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-53

- **पंकज अवधिया**

आप भी मिले मेरे मधुका मित्र से जिन्होने असंख्य लोगो को नया जीवन दिया है

इंटरनेट पर सोशल नेटवर्किंग साइटो मे मेरे इन असंख्य मित्रो के नाम नही मिलते है पर फिर भी मै उनसे जुडा हुआ हूँ। इनकी संख्या करोडो मे है पर मै अभी तक कुछ लाख मित्रो से अच्छे से मिल पाया हूँ। इन मित्रो के विषय मे मैने विस्तार से जानकारियाँ एकत्र की है। आशा है ये जानकारियाँ एक दिन आन-लाइन होंगी और मेरे ये मित्र आप सबके मित्र बन सकेंगे। आज एक ऐसे बुजुर्ग मित्र से मै आपको मिलवा रहा हूँ जो उडीसा मे आसन जमाये हुये है। इन वृक्ष मित्र को मै प्रेम से मधुका कहता हूँ। मेरे असंख्य मधुका मित्र है पर इनकी बात ही निराली है। आप के सामने सीजीबीडी डेटाबेस मे अंकित जानकारियाँ यहाँ संक्षेप मे प्रस्तुत है:

वृक्ष कहाँ पर है: उडीसा के पर्यटन स्थल नर्सिंगनाथ जाने के रास्ते मे बायी ओर। यह रास्ता नुआपाडा से नरसिंगनाथ की ओर जाता है।

वृक्ष का हिन्दी नाम:महुआ

वृक्ष का अंग्रेजी नाम: मधुका इंडिका

वृक्ष की आयु: सौ साल से अधिक

वृक्ष का सीजीबीडी डेटाबेस मे क्रमाँक: 85444

वृक्ष के आस-पास क्या जंगल है:पहले थे। अब तो सब साफ हो रहे है।

वृक्ष के आस-पास कैसी वनस्पतियाँ है:

मौसम के अनुसार अलग-अलग प्रजाति की छोटी वनस्पतियाँ उगती है। इस वृक्ष के पास बीजा का एक पुराना वृक्ष है।

कितने प्रकार के पक्षी साल भर इस वृक्ष मे आते है:

मैने पच्चीस प्रजातियो को अब तक देखा है। स्थानीय लोग इससे कही अधिक प्रजातियो के नाम बताते है।

क्या वृक्ष पर किसी पक्षी का स्थायी घोसला है:

हर यात्रा के दौरान तीन से चार घोसले दिख जाते है।

वृक्ष के पास कितनी बार जा चुके है?:

मै पिछले एक दशक मे 18 बार जा चुका हूँ।

क्या सभी यात्राओ की तस्वीरे है?:

हाँ, सभी यात्राओ की तस्वीरे है। ये यात्राए अलग-अलग मौसम मे हुयी इसलिये इन तस्वीरो मे बडी विविधताए है।

कितने प्रकार के कीट इस वृक्ष पर देखे जा चुके है:

मैने नौ प्रजाति के ऐसे कीटो को अब तक देखा है जो इस के विभिन्न पौध भागो को खाते है।

क्या मित्र कीट भी इस वृक्ष पर देखे गये है:

धान की फसल के हानिकारक कीटो को खाने वाले मित्र कीट बडी संख्या मे इस वृक्ष मे आश्रय लेते है।

क्या किसान इस वृक्ष का उपयोग करते है?:

हाँ, किसान विशेषकर बुजुर्ग किसान इसकी शाखाओ को अपने खेतो मे गाड देते है। शाखाओ को सिंचाई नालियो मे भी डाल दिया जाता है। वे कहते है कि इससे कीटो का प्रकोप कम होता है। वे महुआ के साथ दूसरी वनस्पतियो का भी प्रयोग करते है। महुये की पत्तियो का सत्व खरपतवारो के सत्व के साथ मिलाकर सब्जियो मे रोग नियंत्रण किया जाता है।

कितने प्रकार के सर्प इस वृक्ष मे देखे गये है:

मैने तीन प्रकार के सर्प अब तक देखे है इस वृक्ष पर।

क्या आस-पास के लोग इस वृक्ष की पूजा करते है?:
हाँ, साल मे कई बार। बहुत से घरो मे विवाह के बाद वर-वधू को इस वृक्ष की परिक्रमा करने को कहा जाता है।
क्या इसकी जडो का कोई उपयोग किया जाता है?: जडो से औषधीयाँ बनायी जाती है। डेढ सौ से अधिक नुस्खो मे इसकी जड का उपयोग किया जाता है।
क्या इसकी छाल का कोई उपयोग है?:
हाँ, छाल से सिकल सेल एनीमिया के रोगियो की चिकित्सा की जाती है। छाल को तीन सौ से अधिक नुस्खो मे प्रयोग किया जाता है।
क्या इसकी शाखाओ का कोई उपयोग है?: हाँ, जिस घर मे शादी होने वाली रहती है वहाँ द्वार पर इन शाखाओ को टांगा जाता है। हरेली के दिन भी ऐसा ही किया जाता है।
क्या इसके फूलो का कोई उपयोग है?:
हाँ, फूलो की शराब जनप्रिय है। पारम्परिक विधियो से बनी इस शराब को संतुलित मात्रा मे स्वास्थ्य के लिये अच्छा माना जाता है। हीमोफीलिया के रोगियो के लिये इस शराब का आँतरिक और बहारी प्रयोग होता है।
क्या इसके फलो का कोई उपयोग है?:
फलो को खाया जाता है और इसका तेल भी बनाया जाता है। तेल का प्रयोग पच्चीस रोगो की चिकित्सा मे होता है।
क्या पूरे वृक्ष का कोई उपयोग है?:
प्रथम वर्षा का जल एकत्र करने वाले पारम्परिक चिकित्सक इस वृक्ष से जल एकत्र करते है और वर्ष भर इसका प्रयोग करते है। इसकी छाँव का प्रयोग भी रोगियो के लिये किया जाता है। इसकी जड के पास से एकत्र की गयी मिट्टी से नाना प्रकार के रोगो की चिकित्सा की जाती है।
क्या स्थानीय लोग इससे जुडी कोई कहानी या कथा बताते है?: हाँ, बहुत पहले यहाँ अकाल पडा था। उस समय जंगल ने स्थानीय लोगो को सहारा दिया था। जिन वृक्षो का धन्यवाद करते वे नही थकते है उनमे यह भी है।
क्या इससे प्राप्त भागो को स्थानीय लोग एकत्र करके धनार्जन करते है?:
हाँ, इसकी तस्वीरे डेटाबेस मे है।
कितने पारम्परिक चिकित्सक इस वृक्ष से पौध भाग एकत्र करते है?: पचास से अधिक। दूर-दूर से भी पारम्परिक चिकित्सक आते है।
इस वृक्ष ने अब तक कितने लोगो को जीवन दान दिया है?:
असंख्य पर इसका कोई दस्तावेज नही है।
क्या पारम्परिक चिकित्सक इस वृक्ष को औषधीय गुणो से परिपूर्ण करने के लिये कुछ

उपाय करते है?:

हाँ, दीपावली के समय जंगली कन्दो के सत्वो से इसे सींचा जाता है।

क्या तांत्रिक इस वृक्ष के पास आते है?:

हरेली और दीपावली के समय उनकी बैठक इसकी छाँव मे होती है।

क्या इस वृक्ष पर बान्दा है?:

हाँ, है। स्थानीय लोग बताते है कि पहले वाला बान्दा सूख चुका है। पिछले साल से नये बान्दे ने अपना फैलाव आरम्भ किया है।

इसकी तस्वीर ली गयी है।

क्या इन बान्दा का कोई स्थानीय उपयोग है?: बान्दा के लिये स्थानीय लोगो और पारम्परिक चिकित्सको मे मारामारी मची रहती है। इसके औषधीय उपयोग है। बान्दा को लगातार एकत्र किया जाता है इसलिये इसका फैलाव धीरे-धीरे हो रहा है।

क्या वृक्ष पर आर्किड है?:

हाँ, एक ही प्रकार का आर्किड है। इसकी तस्वीर ली गयी है।

क्या आर्किड के स्थानीय उपयोग है?:

हाँ, आर्किड का प्रयोग बतौर औषधि होता है। स्थानीय लोग बताते है कि खरियार रोड के किसी धनी परिवार ने इस आर्किड को अपनी तिजोरी मे रखा है। हर साल दीपावली मे इसकी पूजा होती है। जिस साल क्षेत्र मे कम बारिश होती है उस साल बहुत से लोग इस आर्किड को अपने अन्न भंडार मे रखते है। आर्किड को पूजा-पाठ करके एकत्र किया जाता है।

कितनी सम्भावना है कि यह वृक्ष विकास की भेंट चढेगा?:

यह वृक्ष सडक के एकदम किनारे है। यदि सडक का चौडीकरण हुआ तो इसे काट दिया जायेगा।

यदि इसे काटा गया तो क्या स्थानीय लोग इसे बचाने सामने आयेंगे?:

ऐसा लगता तो है।

आपके सम्बन्ध कैसे है इस वृक्ष से:

मित्र की तरह।

आपने कितनी बार इनसे आलिंगन किया है?:

हर बार करता हूँ। मेरे साथ यात्रा कर रहे लोग भी करते है।

क्या युवा पीढी इसके महत्व को जानती है?:

नही, पिछले साल कुछ मनचले युवको ने इसमे आग लगाने की कोशिश की थी। उन्हे स्थानीय लोग ने समझाइश दी है।

क्या आप इस वृक्ष के समकक्ष किसी दूसरे वृक्ष को जानते है?:
हाँ, जब भी मै इसके पास जाता हूँ मुझे घटारानी क्षेत्र के महुआ वृक्ष (सीजीबीडी डेटाबेस के अनुसार क्रमाँक: 15418) की याद आ जाती है।
"लकडी माफिया" इसे किस नजर से देखता है?: स्थानीय आस्था के कारण इस ओर कम ही देखता है।
क्या वन विभाग को इसके महत्व के विषय मे जानकारी है?: स्थानीय लोग तो इन्कार करते है। मुझे उनकी बात सही लगती है।

आशा है आपको मेरे इस मधुका मित्र से मिलकर प्रसन्नता हुयी होगी। मै उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मै सेटेलाइट की सहायता से इनकी स्थिति निर्धारित कर पाऊँगा और घर बैठे ही इन्हे देख पाऊँगा। जब भी कोई लालची नजर इस ओर उठेगी एक अलार्म बज उठेगा और स्थानीय लोगो को सूचना मिल जायेगी। वे दौड पडेंगे इस जीवनदाता को बचाने। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-54

- **पंकज अवधिया**

वनस्पतियो का पारम्परिक उपचार और इससे विषैले साँपो से बचाव

कल रात से तेज बारिश शुरु हो गयी है। अब हफ्तो तक घने जंगलो मे जाना मुश्किल हो जायेगा। सडक मार्ग से घने जंगलो को निहारा तो जा सकेगा पर अन्दर घुस पाना सम्भव नही होगा। जंगलो का चप्पा-चप्पा जानने वाले भी इस मौसम मे जंगल से दूर रहते है। पता नही कहाँ पानी भरा हो या कहाँ दलदल हो। सारी जडी-बूटियाँ उन भागो से एकत्र कर ली जाती है जो ऊपरी भाग मे है। बरसात मे नाना प्रकार के विषैले जीव निकल आते है। साँपो का भय सबसे अधिक होता है। मै हर बार दूर से घने जंगओ को निहारकर मन मसोस कर रह जाता हूँ। कई बार जाँबाज पारम्परिक चिकित्सको ने मेरे मन से साँप का डर दूर करने के लिये बहुत से उपाय किये पर कुछ उपायो को मैने अपनाया और शेष को अपनाने की हिम्मत ही नही हुयी।

दो तरह के साँप स्थानीय तौर पर पिटपिटी और डोन्ह्रिया के नाम से जाने जाते है। ये साँप अक्सर नही काटते है। मनुष्य को देखते ही राह बदल देते है। पिटपिटी को तो गाँव के बच्चे उठा-उठाकर फेकते रहते है। यह उनका ग्रामीण खिलौना है। मै बचपन से यह सुन रहा हूँ कि इन दोनो साँपो मे से किसी एक के काट लेने पर ज्यादा नुकसान नही होता है पर एक सीमित अवधि तक दूसरे विषैले साँप नही काटते है। डोन्ह्रिया के काटने पर तो डेढ गाँजे का नशा आता है और फिर स्थिति सुधर जाती है। जब मै छत्तीसगढ के मैदानो मे सर्वेक्षण कर रहा था तब बहुत से लोगो ने इस साँपो से जबरदस्ती कटवाने की बात कही। एक बार तो डोन्ह्रिया को पकड भी लिया गया। वह काटने को तैयार ही नही होता था। मै जोश के साथ अपना पैर आगे करके बैठा था। काफी जद्दोजहद के बाद भी कोई नतीजा नही निकला। हम कुछ रुककर फिर से एक और प्रयास करने की योजना बनाने लगे।

तभी वहाँ से एक पारम्परिक चिकित्सक गुजरे। उन्होने देखते ही सारा माजरा समझ लिया। वे क्रोध मे बोले कि यह डोन्ह्रिया नही है बल्कि विषैला साँप है। इसका मतलब स्थानीय लोगो से साँप की पहचान मे भूल हुयी थी। अच्छा ही हुआ जो उसने मुझे काटा नही। अन्यथा लेने के देने पड जाते।

बाद मे जब मैने सर्प विष चिकित्सा मे महारत रखने वाले पारम्परिक चिकित्सको और सर्प विशेषज्ञो के बीच काम किया तो मुझे सही जानकारियाँ मिलने लगी। उन्होने बहुत सी ऐसी वनस्पतियो के विषय मे बताया जिन्हे खाने से शरीर मे एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध आने लगती है। उस दुर्गन्ध के कारण साँप दूर ही रहते है। मुझे गुम्मा की याद आती है। छत्तीसगढ मे धान के खेतो मे काम करने वाले लोग अक्सर इसके बारे मे बताते है। गुम्मा खरसवार की तरह बरसात के मौसम मे उगता है। इसकी भाजी बडे चाव से खायी जाती है। इसे खाने के बाद किसान बेधडक खेतो मे काम करते है साँपो के बीच। गुम्मा की गन्ध जो हमे महसूस नही होती है, साँपो को दूर रखती है।

मैने जब इस पारम्परिक ज्ञान के विषय मे अपने शोध दस्तावेजो मे लिखा तो विज्ञान जगत के तथाकथित महारथियो ने खूब मजाक उडाया। पर मैने इसका जमीनी स्तर पर प्रयोग देखा था। मै अपने कार्य मे लगा रहा। विज्ञान के पैरोकारो के साथ सबसे बडी समस्या यह है कि जिस रहस्य या मान्यता की व्याख्या वे नही कर पाते है उसे बिना देर किये अन्ध-विश्वास की संज्ञा दे दी जाती है। कालांतर मे जब वैज्ञानिक इसकी व्याख्या कर लेते है तो फिर उसे विज्ञान मान लिया जाता है। मैने अपने लम्बे अनुभव से यह पाया है कि आम लोगो का पारम्परिक ज्ञान विज्ञान सम्मत है। यदि आज का

विज्ञान इसकी व्याख्या नही कर पा रहा है तो वह इस ज्ञान का नकारात्म्क पहलू नही है बल्कि आधुनिक विज्ञान की कमी है। अब भला अपनी गल्ती कौन मानता है? इसलिये सारा दोष पारम्परिक ज्ञान पर मढ दिया जाता है। पर इससे पारम्परिक ज्ञान और इसकी सहायता से जीवन जीने वालो पर कोई असर नही पडता है। वे बिना परवाह इसका उपयोग करते रहते है। मै तो इन्हे अन्ध-विश्वास की संज्ञा देने की बजाय विज्ञान मानते हुये व्याख्या के लिये खुला रखने की सलाह देता हूँ।

बहरहाल, गुम्मा के विषय मे शोध दस्तावेजो के प्रकाशित होने के बाद जब दुनिया भर के अलग-अलग भागो के पारम्परिक ज्ञान विशेषज्ञो ने इस बात की पुष्टि करनी आरम्भ की तो इस पारम्परिक ज्ञान को महत्ता मिली। साँपो के अधययन पर अपना जीवन कुर्बान कर देने वाले बहुत से विशेषज्ञो ने गुम्मा जैसी दसो वनस्पतियो के विषय मे बताया। इस सब के बावजूद हमारे देश मे इस ज्ञान का माखौल उडाया जाता रहा। पाश्चात्य जगत ने साँप प्रभावित क्षेत्रो मे अपनी सेना को सुरक्षित रखने के लिये इस तरह की वनस्पतियो पर शोध आरम्भ किया। तब जाकर भारतीय वैज्ञानिको को अपने पिछवाडे मे उग रही इस वनस्पति का महत्व पता चला। यहाँ भी इस पर शोध आरम्भ हुये है। मै इन्हे सही शोध नही कहता हूँ क्योकि इनका आधार मूल पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान होता है और इसी ज्ञान को शब्दो के आकर्षक साँचे मे डालकर ज्यादातर वैज्ञानिक बडी चतुराई से इसे अपने नाम कर लेते है। वैसे भारत मे यदि मुख्य धारा से हट कर काम करना है तो महात्मा गाँधी की यह बात हमेशा याद रखनी चाहिये।

First they ignore you, then they ridicule you, then they fight you, then you win
- Mahatma Gandhi.

चलिये, अब पारम्परिक चिकित्सको की ओर लौटते है। पारम्परिक चिकित्सको ने मुझे बताया कि यह सही है कि बहुत से साँपो के काट लेने पर दूसरे विषैले साँप बहुत दिनो तक नही काटते है। पर यह सब विशेषज्ञो की निगरानी मे किया जाना चाहिये। इसके लिये बहुत से नियम है। सरगुजा मे वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान पारम्परिक चिकित्सको ने मुझे पाँच दिनो की तैयारी की बात बतायी। पहले दिन पेट की सफाई की जाती है और फिर औषधीय चावल और कन्द-मूल खाने को दिये जाते है। यह क्रम तीसरे दिन तक चलता रहता है। चौथे दिन विशेष वनस्पतियो का सेवन आरम्भ होता है। पाँचवे दिन विशेष साँपो से कटवाया जाता है। इसके बाद पारम्परिक चिकित्सक नंगे पाँव उस व्यक्ति को जंगल मे ले जाते है और जानबूझकर विषैले साँपो को छेडने को कहते है। वे दावा करते है कि व्यक्ति की जीवनी शक्ति के आधार पर यह उपचार तीन से पाँच महिने

तक कारगर रहता है। व्यक्ति को कुछ फर्क नही पडता है। उसमे किसी प्रकार के शारीरिक परिवर्तन नही आते है। हाँ, इन दिनो वह बीमार कम पडता है। यह साँपो का नही बल्कि वनस्पतियो का असर होता है।

अम्बिकापुर के अजीरमा गाँव मे अपनी शिक्षा के दौरान मैने एक पारम्परिक चिकित्सक से मुलाकात की थी। उनका कहना था कि ऐसे उपचार सभी साँपो के लिये उपयोगी न होकर करैत और नाग के लिये ही प्रभावकारी होते है। एक दशक से भी अधिक समय मे मैने सौ से ज्यादा ऐसी उपचार विधियो की जानकारियो का दस्तावेजीकरण किया है। साँपो के प्रकार और वनस्पतियो की उपलब्धता के आधार पर उपचार की विधि बदलती जाती है। एक दिन का भी उपचार होता है और सबसे लम्बा उपचार एक महिने का होता है। एक महिने लम्बा उपचार जहरीले कीटो से भी रक्षा करता है। दावा तो यह भी किया जाता है कि इससे भालू जैसे वन्य जीवो की आक्रमण की स्थिति मे कम नुकसान होता है।

गुम्मा भाजी हर साल मै शौक से खाता हूँ। साँपो के लिये नही बल्कि उसके स्वाद के लिये। जिन उपचारो के विषय मे मैने जानकारियो का दस्तावेजीकरण किया है उनमे से वनस्पति आधारित उपचारो को मैने अपनाया है। मैने अपने स्तर पर इसके प्रभाव का पूरा-पूरा आँकलन नही किया है पर इन उपचारो को सामान्य स्वास्थ्य के लिये बडा ही उपयोगी पाया है।

आज यह पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान कुछ लोगो तक ही सीमित है और इसका प्रयोग कम हो रहा है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि यह आने वाले समय मे संरक्षण के अभाव मे विलुप्त हो जाये। इस ज्ञान की बडी महत्ता है। पर इसके लिये आधुनिक योजनाकारो और शोधकर्ताओ को इसे विस्तार से बताना होगा। यह सम्भव नही जान पडता है। यह मै उदाहरण के माध्यम से समझाना चाहूँगा। मैने औषधीय कीटो पर बहुत काम किया है। कल ही अमेरिका से एक जाने माने कीट वैज्ञानिक का सन्देश आया कि वे लाल चीटे जिसे स्थानीय भाषा मे चापरा या माटरा कहा जाता है, के औषधीय गुणो पर पूरी दुनिया मे उपलब्ध जानकारियो को एक स्थान पर एकत्र कर रहे है। उन्होने मेरे शोध पत्र का उल्लेख किया और कहा कि क्या आपके देश के चिकित्सा वैज्ञानिको ने इस चीटे से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर शोध कार्य किये? मैने उन्हे विनम्रता से जवाब दिया कि बहुत से चिकित्सा वैज्ञानिको ने इसमे रुचि दिखायी पर जो जानकारी मेरे शोध पत्र मे है वह ऊँट के मुँह मे जीरे के समान है। असली जानकारी तो हजारो पन्नो की शक्ल मे है। कम्प्यूटर की भाषा मे कहे तो 2 जीबी से अधिक की

सामग्री। अब इस सामग्री को दुनिया की कोई भी शोध पत्रिका मूल रुप मे प्रकाशित नही करेगी। वे इसे काट-छाँटकर कुछ पन्नो की सामग्री बना देंगे। इससे अर्थ का अंनर्थ भी हो सकता है। इसलिये सौ से अधिक शोध-पत्रो को पचपन से अधिक प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओ के माध्यम से प्रकाशित करवाने के बाद मैने यह राह छोड दी। अब अपने डेटाबेस मे इसे सुरक्षित रखता हूँ इस उम्मीद मे कि इस जीवन मे या इसके बाद कोई इसे मूल रुप मे प्रकाशित कर पाने मे सक्षम होगा।

चलिये, अब फिर वापस लौटते है। आपने छत्तीसगढ के नाग लोक का नाम तो सुना ही होगा। तलहटी वाले इस क्षेत्र मे बडी संख्या मे साँप पाये जाते है। हर साल इनके डसने के कारण बडी संख्या मे लोग मारे जाते है। ऐसा नही है कि साँप से बचने के उपचारो की जानकारी इस क्षेत्र मे नही है। जानकारियाँ है पर उन्हे फिर से पुनरजीवित करने की जरुरत है। इस साल मेरी योजना इस क्षेत्र मे जाकर महिनो गुजारने की थी पर यह सम्भव नही हो पाया। योजनाकार चाहे तो राज्य के एक क्षेत्र के उपयोगी पारम्परिक ज्ञान का उपयोग दूसरे क्षेत्र मे करके जनता को अकाल मौतो से बचा सकते है।

बरसात मे जंगल के भीतर घुसने के लिये मै तो अंतरिक्ष यात्रियो की तरह विशेष सूट बनाने की मंशा रखता हूँ। ऐसा सूट जिसके अन्दर बैचैनी न हो और वह जहरीले जीवो से बचा सके। स्थानीय स्तर पर दर्जी मेरी बात सुनते है और सूट तैयार करते है पर "परफेक्शन" आने मे अभी सालो लगेंगे-ऐसा लगता है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-55

- **पंकज अवधिया**

ग्रहण के दौरान उपयोग की जाने वाली वनस्पतियो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान

सूर्य ग्रहण से कुछ घंटो पहले जब मै यह लेख आरम्भ कर रहा हूँ तब मेरे पास रात भर जागने के लिये भरपूर पानी रखा हुआ है। मौसम बहुत ठंडा हो गया है क्योकि चौबीस घंटो से भी अधिक समय से घनघोर वर्षा हो रही है। मेरे पास पीने के लिये जो पानी है उसमे तुलसी की पत्तियाँ डाल दी गयी है। घर मे रखी सभी भोज्य सामग्रियो मे तुलसी

मौजूद है। मै बचपन से देख रहा हूँ कि किसी भी ग्रहण के समय तुलसी का इसी तरह प्रयोग किया जाता है। ऐसा नही है कि ग्रहण के समय केवल तुलसी का ही प्रयोग किया जाता है। देश के अलग-अलग भागो मे अलग-अलग प्रकार की वनस्पतियो के प्रयोग के उदाहरण मिलते है।

मुझे याद आता है, बस्तर मे एक पारम्परिक चिकित्सक के साथ मै ग्रहण की चर्चा कर रहा था। उन्होने बताया कि ग्रहण के समय मंजूरगोडी नामक वनस्पति का महत्व बढ जाता है। इस वनस्पति को उन बेशकीमती वनौषधीयो के साथ रख दिया जाता है जिनका उपयोग पारम्परिक चिकित्सक साल भर करते है। मंजूरगोडी अपने आप मे एक बेशकीमती वनस्पति है। बहुत से पारम्परिक चिकित्सक कौआगोडी का प्रयोग करते है। वे ग्रहण से चौबीस घंटे पहले इसे एकत्र कर लेते है और फिर ग्रहण के दौरान इसे घर के बाहर टाँग कर रखा जाता है।

उत्तरी छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सक तो नेगुर के प्रयोग के पक्षघर है। वे इसकी पत्तियो को एकत्र करते है और फिर ग्रहण के दौरान तोरण के रुप मे प्रवेश द्वार पर लगा देते है। इन पत्तियो को गर्भवती महिलाओ के सिरहाने पर भी रख दिया जाता है। नेगुर की जडो को छोटे-छोटे टुकडो मे काट लिया जाता है फिर इसकी माला बनाकर छोटे बच्चो को पहना दी जाती है। बीमार बुजुर्गो के सिरहाने पर जड को रख दिया जाता है। पारम्परिक चिकित्सक ग्रहण के बीस दिन पहले से ही इस वनस्पति की सेवा शुरु कर देते है। पहले सात दिनो तक इसे गोबर के घोल से सींचा जाता है और फिर विभिन्न वनस्पतियो के सत्व से। नेगुर के पौध भागो को ग्रहण के तुरन्त बाद पास की बडी नदी मे प्रवाहित कर दिया जाता है।

मैने अपने शोध दस्तावेजो मे पहले यह लिखा है कि नेगुर को पारम्परिक चिकित्सक बहुत ही उपयोगी वनस्पति मानते है। आम लोगो के लिये भी यह पूजनीय है। आम लोग से अपने घरो के सामने लगाते है ताकि वे साल भर बीमारी से बचे रहे।

अपनी नियमगिरि यात्रा के दौरान उडीसा के पारम्परिक चिकित्सको से इस विषय मे चर्चा हुयी। उन्होने ग्रहण काल मे उपयोग की जाने वाली साठ से अधिक वनस्पतियो के विषय मे बताया। इनमे सबसे रोचक और प्रचलित उपयोग कलमी नामक वनस्पति का था। पर्वत के उन स्थानो से जहाँ से नदियो का उदगम होता है पारम्परिक चिकित्सक कलमी की जड ले आते है और फिर ग्रहण के दौरान इसे घर के विभिन्न कोनो मे रख देते है। अलाबेली नामक गाँव के पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि पहले इस जड के

काढे से ग्रहण के पहले और बाद मे नहाने की परम्परा थी पर अब कम ही लोग इस बारे मे जानते है।

हाल की जंगल यात्रा के दौरान मुझे पारम्परिक चिकित्सको से नयी जानकारी मिली। वे आज के सूर्य ग्रहण की तैयारियाँ कर रहे थे। उन्होने दस पुराने वृक्षो के नीचे से मिट्टी एकत्र की और फिर उसे सुरक्षित रख लिया। पीपल, बरगद, गस्ती, पाकर, नीम, भिरहा, कलमी, गिन्धोल, सेमर और सलिहा के पुराने वृक्ष इस हेतु चुने गये। ग्रहण से पहले वे इस मिट्टी का लेप तैयार करके अपने शरीर मे लगा लेंगे और ग्रहण के समाप्त होते ही नदी मे स्नान कर लेंगे। ऐसा केवल पारम्परिक चिकित्सक ही करते है। आम लोगो को ऐसा करने की सलाह नही दी जाती है।

बहुत से भागो मे तुलसी के साथ नीम का प्रयोग लिया जाता है। ग्रहण के दौरान बेल की नयी पत्तियो को चबाने की परम्परा भी है। बेल के साथ नीम की पत्तियो को भी चबाया जाता है। बागबहरा के पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि ग्रहण के दौरान बुजुर्गो विशेषकर जटिल रोगो से ग्रस्त बुजुर्गो का बहुत ध्यान रखा जाता है। ग्रहण के पहले और बाद पाँच प्रकार की वनस्पतियो को जलाकर धुँए को कमरे के हर कोने तक पहुँचाया जाता है। इनमे भिरहा की पत्तियाँ सबसे अधिक मात्रा मे डाली जाती है। मैने अपने शोध दस्तावेजो मे पहले लिखा है कि भिरहा के धुँए की सहायता से आज की पीढी बरसात मे मच्छरो को दूर रखती है। इसका धुँआ इतना कडवा होता है कि छोटे बच्चे रो पडते है। कई मायनो मे इसे नीम से बेहतर माना जाता है।

जबलपुर मे मेरी नानी ग्रहण के दौरान बहुत सी वनस्पतियो के प्रयोग की सलाह देती थी। इनमे तुलसी और नीम प्रमुख थी। ग्रहण के पहले सूतक लगने के बाद से ही खाना-पीना बन्द कर दिया जाता था और ग्रहण के दौरान भजन किया जाता था। "दादी माँ के नुस्खे" विषय पर जानकारी एकत्र करते समय मैने देश भर की दादी माँओ द्वारा सुझाये गये हजारो ऐसे नुस्खो के विषय मे जानकारी एकत्र की जो ग्रहण के समय उपयोग की जाने वाली वनस्पतियो से सम्बन्धित है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रो मे इनका प्रयोग हो रहा है।

औषधीय कीडो और मकौडो के जानकार पारम्परिक चिकित्सक ग्रहण के पहले और बाद मे इनका एकत्रण नही करते है। इस बार रेड वेलवेट माइट यानि रानी कीडे देर से निकले है मानसून मे देरी के कारण पर पारम्परिक चिकित्सक इस ग्रहण के कारण इस बार

माइट को एकत्र करने मे देर कर रहे है। व्यापारी इस बात को नही मानते है इसलिये व्यवसायिक स्तर पर एकत्रण जारी है।

मैने हजारो वनस्पतियो के विषय मे इस तरह की जानकारियाँ एकत्र की है। परम्परा के रुप मे पारम्परिक चिकित्सक और आम लोग इन्हे अपनाते है। हमारी तरह वे इसके वैज्ञानिक कारण ढूँढने की कोशिश नही करते है। पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण करते समय सभी जानकारियो को जस का तस लिख देना होता है। इसी नियम के कारण ये जानकारियाँ मेरे पास सुरक्षित रह पायी है। कौन जाने आने वाले समय मे यह पारम्परिक ज्ञान मानव जाति के बहुत काम आये।

आधे घंट मे जंगल की यात्रा शुरु करनी है। तेज बारिश के कारण नदी-नाले अटे हुये है। घर के सामने ही पानी भरा हुआ है। ड्रायवर का अता-पता नही है पर फिर भी उम्मीद है कि हम इस यात्रा मे जा पायेंगे---- **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-56

- **पंकज अवधिया**

जैव-विविधता के गढ देवस्थल, अंकोल, झगडहीन, डाफर कान्दा और पारम्परिक चिकित्सक

हम सपाट मैदानी क्षेत्र मे लगातार चले जा रहे थे। चारो धान के खेत थे। जंगल का नामोनिशान नही था। धान के खेत मे किसान बडी संख्या मे अपने कार्यो मे लगे हुये थे। अचानक हमे एक स्थान पर घने वृक्षो का समूह दिखायी दिया। साथ चल रहे लोगो ने कयास लगाया कि शायद कोई बडा तालाब होगा। पर जब उस स्थान तक पहुँचे तो पता चला कि वह पास के गाँव के पवित्र स्थल है जहाँ ग्राम देवता विराजते है। उस स्थान मे वृक्ष इतने अधिक घने थे कि हमे दिन मे अन्दर जाने के लिये टार्च का सहारा लेना पडा। इस बीच हमारी ग़ाडी देख पास के खेतो से कुछ किसान आ गये और उस स्थान की महिमा बताने लगे।

उन्होने बताया कि यह स्थान पहले घने जंगल मे हुआ करता था। साल मे एक बार गाँव के बैगा के साथ लोग बडा जोखिम उठाकर यहाँ आया करते थे। आज तो जंगल पूरी तरह से साफ हो चुके है। केवल यही स्थान बचा है। इस स्थान से वृक्ष की कटाई प्रतिबन्धित है। पर जैसा कि आप जानते है कि प्रतिबन्ध इसे तोडने वालो को अक्सर उकसाता है। यहाँ भी ऐसा ही हुआ पर वृक्षो को काटने वाले शीघ्र ही अनजान रोगो से मारे गये। यह बात जंगल मे आग की तरह फैल गयी। उसके बाद से यहाँ के वृक्ष जस के तस है। उनके बीज यहाँ गिरते रहते है और नये पौधे तैयार होते रहते है। अब गाँव वाले साल मे कई बार यहाँ पूजा के लिये आते है। वैज्ञानिक भाषा मे ऐसे स्थानो को "सेकरेड ग्रुव" कहा जाता है। ऐसे स्थान वनस्पतियो के संरक्षण और संवर्धन की दिशा मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

कुछ समय मे ही हमने इस स्थान मे पचपन से अधिक प्रकार के बडे वृक्षो की गिनती कर ली। इनमे अंकोल के वृक्षो की संख्या सबसे अधिक थी। अंकोल के नये और पुराने सभी प्रकार के वृक्ष थे। इनके फल जमीन मे गिरे हुये थे और वर्षा के बाद अंकुरित हो रहे थे। किसानो ने बताया कि कुछ समय पहले इन फलो को चूसने के लिये यहाँ स्कूली बच्चो का जमावडा लगा रहता था। अंकोल औषधीय महत्व का वृक्ष है। इसके सभी पौध भागो का उपयोग औषधि के रुप मे होता है। आप इसकी महत्ता के बारे मे मेरे पिछले लेखो मे पढ चुके है। मैने इस वृक्ष के पारम्परिक चिकित्सकीय उपयोगो के विषय मे विस्तार से लिखा है। कही अंकोल हो और उसके उपयोग मे दक्ष पारम्परिक चिकित्सक आस-पास न हो ऐसी कैसे हो सकता है? अंकोल नाना प्रकार के कैंसर की जटिल अवस्था मे प्रयोग किया जाता है। "देसी कीमोथेरेपी" मे जिन वनस्पतियो का प्रयोग होता है उनमे अंकोल का नाम सम्मान से लिया जाता है। देसी कीमोथेरेपी से शरीर को बहुत कम नुकसान होता है और इसका प्रभाव स्थायी होता है। मैने "देसी कीमोथेरेपी" शब्द का प्रयोग सबसे पहले इस लेख मे किया है। इसके विषय़ लिखा बहुत है पहले।

किसानो ने बताया कि साढे पाँच सौ से अधिक पारम्परिक चिकित्सक इस स्थान पर आकर पूजा-अर्चना करते है और यहाँ से वनस्पतियाँ एकत्र करते है। इन पारम्परिक चिकित्सको की सूची गाँव के शिक्षक के पास थी। बाद मे जब मैने अपने डेटाबेस मे इन नामो को खोजा तो कुछ नाम ही मिले। इसका अर्थ यह था कि अब जल्दी हे मुझे इन पारम्परिक चिकित्सको से मिलना होगा। पर इसके लिये मुझे तैयारी करनी होगी। मैने कैसर के पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर तैयार की गयी रपट मे व्यवसायिक दुरुपयोग से बचाने के लिये कूट शब्दो का प्रयोग किया है। अब मै पारम्परिक चिकित्सको की

सुविधा के लिये इसे हिन्दी मे तैयार कर रहा हूँ। साथ ही छतीसगढी भाषा मे एक आडियो सीडी तैयार कर रहा हूँ। इससे मेरे पास उपलब्ध ज्ञान उन तक पहुँच जायेगा और यदि वे चाहेंगे तो अपना ज्ञान डेटाबेस के लिये दे पायेंगे।

एक दिन मे तो इतने सारे पारम्परिक चिकित्सको से मिलना सम्भव नही था इसलिये कुछेक से मैने मुलाकात की। शिक्षक महोदय ने बताया कि उन्होने मोटे तौर पर जो अन्दाज लगाया है उसके अनुसार इस स्थान की जडी-बूटियो से पारम्परिक चिकित्सक बारह हजार से अधिक नुस्खे बनाते है। इनमे से ज्यादातर जटिल रोगो से सम्बन्धित है। शिक्षक महोदय के प्रयासो की जितनी तारीफ की जाये उतनी कम है।

यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि पारम्परिक चिकित्सक अपने अनुभव के आधार पर इस स्थान को जडी-बूटियो के सत्वो से सींचित करते रहते है। वे इन जडी-बूटियो के लिये दूर-दूर की यात्रा करते है। सत्वो का सींचन वृक्षो को औषधीय ग़ुणो से परिपूर्ण रखता है। मेरे साथ आये पारम्परिक चिकित्सको को झगडहीन, डाफर कान्दा जैसी अनमोल वनस्पतियाँ दिख गयी। वे इन्हे एकत्र करने के लोभ का संवरण नही कर पाये। किसानो ने उन्हे रोका और कहा कि कम से कम दो घंटे इस स्थान मे अपना श्रमदान दो फिर जडी-बूटियाँ ले जाना। पारम्परिक चिकित्सक सहर्ष तैयार हो गये। वे धान के उन खेतो मे गये जहाँ पारम्परिक खेती हो रही थी। वहाँ से उन्होने बडी मात्रा मे मोथा और कौआ-कैनी जैसे खरपतवारो का एकत्रण किया और फिर उन्हे निश्चित अनुपात मे मिलाकर उनका रस निकाला। इस रस को उन्होने सेमल के पुराने वृक्ष की जड मे डाला। उन्होने कहा कि इससे सेमल की जडो का अच्छा विकास होगा और जडे औषधीय गुणो से परिपूर्ण होंगी। अगली बार जब यहाँ के पारम्परिक चिकित्सक सेमल मूसली का एकत्रण करेंगे तो इसके प्रभाव से प्रसन्न हो जायेगे।

मुझे याद आता है अपने विश्वविद्यालीन शोध के दौरान मैने इन खरप्तवारो के सत्वो का प्रभाव धान, गेहूँ, चना और अलसी जैसी फसलो मे देखा था। वह शोध प्रयोगशाला स्तर का था पर बाद मे जब इसे किसानो के खेतो मे दोहरा गया तो सकारात्मक परिणाम मिले। इन सत्वो से इन फसलो की उपज पर प्रभाव पडता है। जैविक कृषि के क्षेत्र मे काम रहे शोधकर्ताओ और किसानो के लिये यह महत्वपूर्ण जानकारी है।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे स्थान पर आने का मौका मिला। अब मुझे बार-बार यहाँ आना होगा। मै किसानो को जानकारियो के लिये धन्यवाद दे ही रहा कि मुझे फुफकारे सुनायी दी। किसानो ने कहा कि इस स्थान पर बहुत से अजगर है पर वे किसी

को नुकसान नही पहुँचाते है। उन्होने ऐसे साँप की उपस्थिति की भी बात की तो नाग की तरह है पर दूसरो सर्पो को खा जाता है। वे किंग कोबरा की बात कर रहे थे। वह कभी-कभार ही दिखता है। यह मेरे लिये महत्वपूर्ण जानकारी थी।

इस स्थान पर आने से मुझे अचानक ही नियमगिरि के देव स्थलो की याद आ गयी। वे देवस्थल भी जैव –विविधता से परिपूर्ण थे। स्थानीय लोग सरल शब्दो मे बताते थे कि यदि कोई वन्य पशु हमला कर दे तो उस देवस्थल पर चले जाइये। हमलावर बाहर से ही वापस हो जायेगा। बाक्साइट के खनन के लिये नियमगिरि मे आँखे गडाये बैठी कम्पनी के नुमाइंदे इन देवस्थलो को उजाडते हुये कंवेयर बेल्ट को ले जाना चाहते थे। उन्हे इनके महत्व और आम लोगो की आस्था के विषय़ पता नही था। ऐसा ही हाल मैने बस्तर मे देखा। मैने असंख्य देवस्थलो की यात्रा की और उनकी तस्वीरे खीची पर आज लोहे के कारखाने के लिये उन्हे उजाड दिया गया है या उजाडने की तैयारी है। मेरी तो दोबारा वहाँ जाने की हिम्मत नही होती है। मन अवसादग्रस्त हो जाता है। आज जहाँ भारतीय वैज्ञानिक ऐसे देवस्थलो की महत्ता बताते दुनिया भर मे शोध-पत्र पढ रहे है वही हमारे देश मे इन्हे बचाने की सुध किसी को नही है। इनकी रक्षा के लिये आगे आने वालो को विकास-विरोधी कह दिया जाता है पर वास्तव ये विनाश-विरोधी होते है। पता नही कब समाज अपने सच्चे सेवको की कीमत समझेगा? **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-57

- **पंकज अवधिया**

"रेगिस्तानी जहाज" के कहर से सफाचट होती औषधीय वनस्पतियाँ और वन्य जीव

"न जाने जंगल को किसकी नजर लग गयी है, छोटी वनस्पतियाँ खोजे नही मिलती है। हम जंगल मे काफी भीतर तक चले जाते है फिर भी उपयोगी वनस्पतियो का नामोनिशान नही मिलता है। साहब, क्या कोई कीडा देखा है आपने जो जंगल के जंगल साफ कर दे?" पिछली बहुत सी जंगल यात्राओ के दौरान पारमरिक चिकित्सको की ऐसी बाते मुझे सुनने को मिल रही थी। मै उनके साथ जंगल मे अन्दर तक गया भी पर

कारण का पता नही लगा। इस बार की जंगल यात्रा के दौरान मेरा सारा ध्यान औषधीय कुकुरमुत्तो पर था। हमने गाडी से एक घाटी पर चढाई की और जल्दी ही चोटी पर आ पहुँचे। अचानक ही सडक के किनारे जंगल के थोडा भीतर एक अजीब सा व्यक्ति दिखायी दिया। वह वेशभूषा और चेहरे-मोहरे से छत्तीसगढ का नही लग रहा था।

मैने सुना था कि पहाडी के इस भाग मे वन्य पशु बहुलता से है। हम गाडी से उतरना पसन्द नही करते है जहाँ, वहाँ वह व्यक्ति आराम से खडा था। मैने गाडी पीछे करने का मन बनाया। गाडी को पीछे करने पर वह व्यक्ति घने जंगल मे घुसने लगा। तब तक साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक उतर कर उसके पास तक पहुँच चुके थे।

मैने पास से उसे देखा तो वेशभूषा से ही पहचान गया कि ये राजस्थान से आये है। पारम्परिक चिकित्सको ने भी झट से पहचान की कि ये भेड-बकरी वाले है जो जंगल मे घूम-घूम कर साल भर अपनी भेड-बकरियो को चराते है। पहले वे हर साल छत्तीसगढ आते थे पर अब स्थायी तौर पर रहने लगे है। मैने उस व्यक्ति से डरकर भागने का कारण पूछा तो उसने कहा कि वन अधिकारी समझ कर वह भाग रहा था। मैने गाडी मे रखे पेडे उसे दिये। अब रुक ही गये थे तो मैने आस-पास की तस्वीरे लेनी आरम्भ की। वह व्यक्ति हमे संश्य से देखता रहा। अचानक कुछ दूरी पर हलचल नजर आयी। हम उस ओर बढ चले।

कुछ दूर ही गये थे कि हमारे सामने एक नही बल्कि नौ "रेगिस्तानी जहाज" थे। इस जंगल मे ये ऊँट क्या कर रहे है? मेरे मन मे कई प्रश्न उमडने लगे। मैने कैमरा निकाला और उनकी फिल्म बनाने लगा। ध्यान से देखा तो पता चला कि ये ऊँट सलिहा के एक बडे वृक्ष की पत्तियाँ खा रहे थे। उनके खाने की रफ्तार गजब की थी। इतने सारे ऊँटो का दबाव सहते-सहते वृक्ष एक ओर झुकता जा रहा था। फिर अचानक जोर की आवाज के साथ गिर गया। मन आक्रोश से भर गया। छत्तीसगढ मे जिन वृक्षो की संख्या पिछले एक दशक मे कम हुयी है उनमे सलिहा शीर्ष वृक्षो मे है। ग्रामीण तो इसे नुकसान पहुँचा ही रहे है। रही-सही कसर ये ऊँट पूरी कर रहे थे। मैने फिल्माँकन जारी रखा। सलिहा को गिराने के बाद ऊँट आगे बढे और कोरिया नामक औषधीय वनस्पति को खाने लगे। कुछ ही समय मे पूरी वनस्पति चट कर गये। ऊँट के इतने पेटू होने की बात मैने सुनी थी पर देखी नही थी। हम फिर उस व्यक्ति के पास लौटे।

"आप कहाँ से आये है?" मैने पूछा। "आप समझ लो कि गुजरात-राजस्थान से आये है। कुछ गुजरात के है और कुछ राजस्थान के।"उस ने कहा। जब हमने पूछा कि कौन-कौन

सी वनस्पतियाँ इसे पसन्द है तो उसने कहा कि जंगल मे लगभग सब कुछ ये खा जाते है पर सलिहा, बेर और कोरिया विशेष रुप से पसन्द है। छत्तीसगढ और राजस्थान की वनीय वनस्पतियो मे जमीन-आसमान का फर्क है। यहाँ आकर ऊँटो का खान-पान बदल गया है। वे अब ज्यादा पेटू हो गये है। ऊँट यहाँ के जंगलो के लिये नही बने है और यहाँ के जंगल ऊँटो के लिये। जंगल बडा ही असहज महसूस कर रहा है। उसकी सभी जीवो के लिये जिम्मीदारियाँ है। वह इन्हे पूरी नही कर पा रहा है।

मैने अपने लेखो मे पहले जंगली हाथियो के विषय मे लिखा है। वे विशाल वृक्षो को धराशायी कर देते है। शहरियो को लगता है कि इससे जंगल नष्ट हो रहे है पर वास्तव मे हाथी इसी जंगल के लिये बने है और जंगल हाथियो के लिये। गिरे हुये वृक्ष पर असंख्य छोटे जीव आश्रित रहते है। माँ प्रकृति ने ही ऐसी व्यवस्था की है कि हाथी वृक्षो को गिराये और छोटे जीवो तक उसे पहुँचाये। ऐसी अवस्था ऊँट के लिये नही है।

उस व्यक्ति को साथ लेकर हम उसके डेरे की ओर बढे। पास पहुँचने पर हमने भेड-बकरियो का एक बडा समूह देखा जो बडी निर्दयता से जंगल की छोटी वनस्पतियो को खा रहा था। पारम्परिक चिकित्सक उस ओर भागे यह जानने के लिये ये झुंड किसे खा रहा है और किसे छोड रहा है? मैने कैमरा झूम किया तो यह झुंड सब कुछ सफाचट करने वाला दिखायी दिया। अब साफ हो गया था कि जंगल से जडी-बूटियो को कौन साफ कर रहा था? पर अभी तो और भी बुरी खबरे सुननी बाकी थी।

मैने उस व्यक्ति से पूछा कि वन्य जीवो के आने पर क्या आप वृक्ष पर चढ जाते है तो उसने कहा कि मै तो चढ जाऊँ पर परिवार की महिलाए और बच्चे क्या करेंगे? अरे, साहब, यहाँ तो एक भी जंगली जानवर नही है। मुझे उस व्यक्ति की बात पर विश्वास नही हुआ क्योकि इस जंगल से रात को गुजरते हुये मैने दसो बार जंगली जानवरो को देखा था। तेन्दुए बहुत अधिक संख्या मे है यहाँ। बाद मे जब हम उसके परिवार की तस्वीरे लेने लगे और वह व्यक्ति दूर चला गया तो मैने फिर से वही प्रश्न किया। परिवार की महिलाओ ने बताया कि हमारे पास बडी संख्या मे खूँखार कुत्ते है जो जंगली जानवरो को खदेड देते है। छोटे जानवरो को तो मार भी देते है। एक बुजुर्ग महिला ने कहा कि मर्दो ने तो तेन्दुए को भी "निपटाया" है, भेड-बकरियाँ तेन्दुए की आसान शिकार जो है।

हम जैव-विविधता के लिये अभिशाप बने इस खतरे को आँखो के सामने देख रहे थे। गाँव की पंचायत को कुछ पैसे देकर खुलेआम बिना निगरानी के चरायी हो रही है। न केवल वनस्पतियाँ बल्कि वन्य-जीवो का भी स्थायी नुकसान हो रहा है। किसी को इसकी सुध

नही है। उस व्यक्ति ने जब हमसे दूर भागने की कोशिश की थी तभी लग गया था कि कुछ गडबड है। बाद मे उस व्यक्ति ने जानकारी दी कि पूरे राज्य मे उसके जैसे दसो दल है जो जंगल मे चरायी करवा रहे है।

"आजकल इस जलाश्य मे हिरण नही दिखते है?" वापस लौटते हुये मैने एक ग्रामीण से पूछा तो उसने बिना देर के कहा कि हिरणो की घास तो भेड-बकरियाँ चट कर रहे है। अब हिरण नही है तो उन पर आश्रित रहने वाले माँसाहारी जीव या तो पास के गाँवो की ओर बढ रहे है या बेमौत मर रहे है। मैने जब इस बारे मे तस्वीरे और समाचार अपने मित्रो को दिखाया तो वे बोले कि यह खोजी पत्रकारिता कहलाती है। आप तो वैज्ञानिक है आपको यह काम शोभा नही देता है। आप इसे किसी स्थानीय अखबार को दे दे वह अपने गणित के आधार पर निर्णय कर लेगा कि इसे छापना है या नही।

नया राज्य बनाने के बाद छत्तीसगढ को जो अभिशाप भोगने पड रहे है उनमे से एक जैव-सम्पदा को खतरा भी है। आपने ऐसी किसी जानकारी के विषय मे आवाज उठायी नही कि इस पर राजनीति होने लगती है। सत्तापक्ष पर विपक्ष पिल पडता है और सत्तापक्ष न चाहकर भी इसे अपनी इज्जत की लडाई मानकर इस पर लीपा-पोती करने लगता है। समस्या जस की तस रहती है। जैव-सम्पदा की रक्षा की जिम्मेदारी दलगत राजनीति से उठकर है। पता नही कब हमारे राजनेता की समझ मे यह छोटी-सी बात आयेगी?
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-58

- **पंकज अवधिया**

अच्छे स्वास्थ्य के लिये मच्छरो का प्रयोग, रेडियो साक्षात्कार और अंतरराष्ट्रीय दबाव

"हाँ तो बताइये कैसे बनता है मच्छरो का काढा? क्या किलो भर मच्छरो की जरुरत होती है या टन भर? कैसे पीते है इस काढे को?" कनाडा के सीबीसी रेडियो के सम्पादक मार्क विंकलर ने तो जैसे प्रश्नो की बौछार ही कर दी। पिछले सप्ताह वे अपने किसी रेडियो कार्यक्रम के लिये मेरा साक्षात्कार ले रहे थे। दरअसल उन्होने मेरा एक शोध आलेख पढ

लिया था जो मच्छरो के सम्भावित उपयोग के बारे मे था। यह शोध पत्र है तो दिलचस्प पर वर्ष 2003 मे प्रकाशित होने के बाद विज्ञान जगत ने इसमे अधिक रुचि नही दिखायी। इस पर आगे काम नही हुये और न ही मुझसे मार्क की तरह किसी ने विस्तार से पूछा। बाटेनिकल डाट काम ने यह अवश्य बताया कि यह आलेख उन आलेखो मे से है जिन्हे सबसे ज्यादा यानि हजारो मे हिट्स मिलती रही है। ये तो कनाडा के मार्क थे जिन्हे मन हुआ कि इस शोध के बारे मे वे मुझसे विस्तार से पूछे।

एक घंटे के साक्षात्कार से पहले उन्होने बता दिया था कि कुछ भी लाइव नही है इसलिये आराम से बात की जाये। शुरु मे वे ऐसे ही आराम से बात करते रहे पर धीरे-धीरे उनके प्रश्न जटिल होते गये। बीस मिनट बाद ही मुझे आभास हो गया कि यह सब केवल साक्षात्कार के लिये नही पूछा जा रहा है। इसके पीछे सब कुछ जानने की मंशा भी है और जरुर इसे वैज्ञानिको के लिये तैयार किया जा रहा है। यह आभास होते ही मैने ठान लिया कि पूछने दो उन्हे जो पूछना है, अब तो वे खेत की पूछेंगे तो मै खलिहान की बताऊँगा। हुआ भी ऐसा। मार्क इतना चिढ गये कि खीझने लगे। और फिर उन्हे धन्यवाद कहकर साक्षात्कार खत्म करना पडा। उन्होने यह भी नही बताया कि इसे कब प्रसारित किया जायेगा?

मच्छरो और मलेरिया से सभी परेशान है। छत्तीसगढ के आम लोग भी। पर जैसा मै अक्सर लिखता हूँ दुनिया मे प्रयोगधर्मी दिमागो की कमी नही है। इसी प्रयोगधर्मिता के चलते राज्य के पारम्परिक चिकित्सको ने हर नयी वनस्पति और कीट के साथ प्रयोग किये है और उनके कुछ न कुछ उपयोग ढूँढ निकाले है। जहाँ एक ओर लेंटाना नामक वनस्पति को वैज्ञानिक जैव-विविधता के लिये खतरा मानकर रसायनो से इसे नष्ट करने का अनुमोदन कर रहे है वही पारम्परिक चिकित्सको ने इस विदेशी पौधे के औषधीय गुण विकसित कर लिये है। आम ग्रामीण भी पीछे नही है। मैने अपने शोध दस्तावेजो मे पहले लिखा है कि कैसे तिल्दा क्षेत्र के ग्रामीण मुँह मे छाले होने पर लेंटाना की दातून करते है। दातून के रुप मे लेंटाना का प्रयोग और इसके फायदे के विषय मे उस देश के लोग भी नही जानते जहाँ से यह आया है। इसी तरह सैकडो किस्म के कीडो के औषधीय उपयोग पारम्परिक चिकित्सको ने विकसित किये है। इनमे बहुत से ऐसे कीडे है जो कि फसलो को नुकसान पहुँचाते है। मसलन धान मे आक्रमण करने वाले माहो कीट के दसो औषधीय उपयोग है। पारम्परिक चिकित्सक न केवल सीधे ही इस कीडे का उपयोग करते है बल्कि इसे औषधीय मिश्रणो मे वनस्पतियो के साथ भी प्रयोग करते है। मैने विस्तार से इस पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है।

होम्योपैथी का छात्र होने के नाते औषधीय कीटो और मकौडो मे मेरी विशेष रुचि रही है। बहुत सी होम्योपैथी दवाए इनसे बनती है और जबरदस्त असर भी करती है। अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान एक बार मैने देखा कि विभिन्न वनस्पतियो को औषधीय गुणो से समृद्ध करने के लिये पारम्परिक चिकित्सक जडी-बूटियो का जो घोल बना रहे है उसमे वे मच्छरो को भी डाल रहे है। यह मेरे लिये नयी जानकारी थी। मैने पूरी प्रक्रिया का दस्तावेजीकरण किया और फिर जब दूसरे पारम्परिक चिकित्सको से इस विषय पर चर्चा की तो उनसे काफी कुछ जानने को मिला। मच्छरो का ऐसा उपयोग आधुनिक साहित्यो मे दर्ज नही है। कुछ बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सको से जब मैने ऐसे पारम्परिक नुस्खो के विषय़ मे जानकारी प्राप्त की जिनमे तीन सौ से अधिक औषधीयो का प्रयोग किया जाता है तब मुझे मच्छरो का नाम भी सूची मे मिला। क्या मच्छर इंसानो की औषधीयो मे प्रयोग हो रहे है? मैने इन नुस्खो को न केवल तैयार होते देखा बल्कि रोगियो पर प्रयोग के बाद नुस्खो से होने वाले लाभो के विषय मे विस्तार से अध्ययन किया। मच्छारो के उपयोग के इसी ज्ञान पर मैने सतही शोध आलेख लिखा था। इसमे सम्भावित उपयोगो पर भी चर्चा की थी। इसमे पारम्परिक चिकित्सको को ही महत्व दिया गया था आखिर वे ही असली हीरो है, मै तो मात्र उनके ज्ञान के बारे मे लिख रहा हूँ।

कनाडा के मार्क को एक घंटे की साक्षात्कार मे सब कुछ चाहिये था। वे प्रयोग विधि से लेकर गुप्त नुस्खो के बारे मे जानना चाहते थे। मै कैसे देश के पारम्परिक ज्ञान के बारे मे सब कुछ बता देता? मैने उनसे कहा कि आप राष्ट्रीय जैव-विविधता बोर्ड द्वारा तय किये गये मापदंडो के हिसाब से चले और उनसे अनुमति लेने के बाद मेरा साक्षात्कार ले। अच्छा तो यही होगा कि आप पारम्परिक चिकित्सको का साक्षात्कार ले। मार्क यह सब अनसुना करते गये और ग्वांटेनामो बे का कैदी समझकर मुझसे सवाल करते रहे।

पिछले सप्ताह जर्मनी से आये एक सन्देश ने भी मुझे काफी उद्वेलित किया। यह सन्देश दुनिया के जाने माने वैज्ञानिक का था जो नोबल पुरुस्कार प्राप्त कर चुके है। उन्होने मेरे कार्यो की जम कर तारीफ की और फिर बताया कि वे भी पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण कर रहे है। उन्होने औषधीय कीटो और डायबीटीज पर वैसे ही काम किया है जैसे मै कर रहा हूँ। उन्होने "जोर" डालकर कहा कि आप जितना काम कर रहे हो उसकी महत्ता तभी होगी जब आप उसे अंतरराष्ट्रीय विज्ञान पत्रिकाओ मे प्रकाशित करेंगे। मुझे मालूम है कि पत्रिकाओ का खर्च बहुत अधिक है और आप वहन नही कर सकते है। मेरे विश्वविद्यालय ने इन पत्रिकाओ को पैसे दिये है। यदि आप चाहे तो मेरे साथ मिलकर

अपने शोध कार्यो का प्रकाशन करे ताकि बिना पैसे के सब कुछ हो जाये। हाँ, आपको सब कुछ पूरे विस्तार से बताना होगा। इस नोबल वैज्ञानिक की "चाल" समझकर मै दंग रह गया।

मैने उन्हे विनम्रतापूर्वक लिखा कि मैने पहले सौ से अधिक शोध पत्र दुनिया भर की शोध पत्रिकाओ मे प्रकाशित करवाये है। मैने पाया है कि ये शोध पत्रिकाए सम्पादन के नाम पर महत्वपूर्ण जानकारियो को उडा देती है और फिर उन जानकारियो का अन्यत्र प्रयोग हो जाता है। मैने बहुत बार इसकी शिकायत की और नतीजा सिफर रहा। फिर पत्रिकाए पारम्परिक चिकित्सको का नाम नही प्रकाशित करती है। सारा श्रेय वैज्ञानिको को दे दिया जाता है। यह मुझे पसन्द नही है। मैने उनसे यह भी कहा कि मेरे शोध-दस्तावेज विस्तार से है। अब 1000 जीबी से अधिक मधुमेह की रपट और 200 जीबी से अधिक औषधीय धान की रपट को मूल रुप मे बिना छेडछाड के प्रकाशित करने का माद्दा किस पत्रिका मे है? यदि इसे सिकोडा गया तो इसकी मूल भावना खत्म हो जायेगी।

जर्मन वैज्ञानिक महोदय ने जवाब मिलने पर भी पीछा नही छोडा है। वे लगातार ई-मेल भेज रहे है। हाल के ई-मेल साफ जता रहे है कि उन्हे कूट भाषा मे लिखी जा रही मधुमेह की रपट के बारे मे सब कुछ जानना है, और उस रपट मे अपना नाम भी जुडवाना है। डाक्टरेट की मानद उपाधि से लेकर विदेश मे घर तक के आफर दे रहे है ये सज्जन। मै इन्हे अनदेखा कर रहा हूँ। मेरे मित्र इसे जीवन का स्वर्णिम अवसर बता रहे है।

मच्छरो के उपयोगो मे भी इन जर्मन वैज्ञानिक की रुचि है। वे कनाडा के रेडियो कार्यक्रम की बात भी जानते है। कैसे? ये उन्होने नही बताया। मुझे अब समझ आने लगा है रेडियो साक्षात्कार क राज। पता नही, आगे और कितने अंतरराष्ट्रीय दबाव झेलने होंगे? शुक्र है कि मेरे पास अपना हिन्दी ब्लाग है जिसके माध्यम से मै अपने देशवासियो से सीधे जुड सकता हूँ और इन दबावो के विषय मे बता सकता हूँ। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-59

- **पंकज अवधिया**

बीज यात्रा, पारम्परिक चिकित्सक और रक्षा के साथ बीजबन्धन का प्रस्ताव

सुबह देर से उठा तो थकान हावी थी। अपने कमरे तक पहुँचा तो एक पैकेट पडा हुआ था। मैने उसके बारे मे पूछताछ की तो बताया गया कि अम्बिकापुर से आये किसी व्यक्ति ने यह पैकेट दिया है। मैने पैकेट खोला तो उसमे एक अंकुरित हो रहा बीज था। यह बीज था अंकोल का। सारी थकान पल मे दूर हो गयी और इस नन्हे बीज से सारा अतीत याद आ गया। लगभग एक दशक पहले जब मै सरगुजा क्षेत्र मे वानस्पतिक सर्वेक्षण कर रहा था तब वहाँ के पारम्परिक चिकित्सको से एक अघोषित समझौता हुआ था। यह समझौता था बीजो के आदान-प्रदान का। हम जिस भी वनस्पति पर चर्चा करते उसके बीज आपस मे बाँट लेते और उपयुक्त स्थान पर उसे रोप देते। उस बीज से नये पौधे निकलते और जब कालांतर मे उसमे फल लगते तो पहले बीज को वापस उसी पारम्परिक चिकित्सक को दे देते जिससे मूल बीज को प्राप्त किया था। बीज को पारम्परिक चिकित्सक फिर किसी को दे देते थे। इस तरह यह क्रम चलता रहता था।

मैने बस्तर से एकत्र किया गया अंकोल का बीज सरगुजा के एक युवा पारम्परिक चिकित्सक को दिया तो वह गदगद हो गया। उसने उस बीज को अपने घर मे लगाया और जब बीज से बने वृक्ष मे सबसे पहले फल आये तो बिना देरी एक बीज भेंट करने रायपुर चला आया। यही बीज मेरे पास पैकेट के अन्दर पडा था। उसने अंकुरित होता बीज दिया था यानि इशारा साफ था। मुझे जल्दी ही इसे किसी दूसरे पारम्परिक चिकित्सक को दे देना था ताकि वह इस परम्परा को आगे बढाये।

पैकेट लेकर मै बाहर आया तो इंतजार करता वह पारम्परिक चिकित्सक दिख गया और गले मिलकर हम पुरानी यादो मे खो गये। पारम्परिक चिकित्सक ने अंकोल के वृक्ष का हाल बताया। उसकी योजना थी कि वह इसका खूब प्रचार-प्रसार करे। बीजो के माध्यम से पूरे सरगुजा मे फैलाये पर उसे इस बात का भी आभास था कि एक ही प्रजाति की बजाय विभिन्न प्रजातियो के मिश्रण का फैलाव ज्यादा जरुरी है। पारम्परिक चिकित्सक ने मुझे अंकोल का तेल भी भेंट मे दिया। मैने अपने शोध दस्तावेजो मे लिखा है कि किसी भी तरह की चोट मे यह तेल रामबाण की तरह काम करता है। इस तेल के इतने सारे प्रयोग है कि हर घर मे इसे होना ही चाहिये, हल्दी की तरह। पर इस तेल को प्राप्त करना टेढी खीर है।

देश के अलग-अलग क्षेत्र के पारम्परिक चिकित्सक अलग-अलग विधियो से तेल बनाते है। अलग-अलग विधियो से बनाये गये तेल के गुण भी अलग-अलग होते है। सरगुजा से आये इस पारम्परिक चिकित्सक ने जो तेल मुझे दिया उसमे कुसुम के तेल की गन्ध भी थी जबकि मैदानी क्षेत्रो के पारम्परिक चिकित्सक जब अंकोल का तेल देते है तो उसमे तिल के तेल की गन्ध भी होती है। हमारे प्राचीन ग्रंथ अंकोल के तेल के विषय मे जानकारी देते तो है पर इसके अलग-अलग प्रकारो के विषय मे कुछ नही बताते।

पिछले सप्ताह ही मैने अंकोल के ढेरो बीज एकत्रित किये थे एक देवस्थल से। अगले कुछ दिनो मे गाँव-गाँव घूमकर इन्हे पारम्परिक चिकित्सको के बीच बाँटने की योजना है। गाँव के आम लोगो ने यदि रुचि दिखायी तो उन्हे भी बीज देने है पर पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद। पारम्परिक चिकित्सक तो अंकोल के बीजो को हाथो-हाथ ले लेते है और बिना देरी उसे लगा देते है पर आम लोग इसके औषधीय गुणो को जानने के बाद भी सुस्ती दिखाते है। बीज ले लेते है और फिर उसे घर मे एक किनारे पर रख देते है। इस तरह बीज खराब हो जाता है। अगली बार जाओ तो कह देते है कि बीज लगाया था पर उगा ही नही। इस रवैये को देखते हुये पारम्परिक चिकित्सको ने मजेदार रास्ता अपनाया है।

वे युवाओ को बीज देकर कहते है कि इसकी पूजा करने के बाद रोपने से वशीकरण की शक्ति आ जाती है। या फिर ऐसी शक्ति आ जाती है कि आप किसी को मोह सके। बस, इतना सुनते ही युवा पूरे मन से उसे रोप देते है। उसकी सेवा करते है और यह भी समझने लगते है कि उनमे यह शक्ति आ गयी है। मेरी जंगल यात्रा के दौरान पारम्परिक चिकित्सको ने ऐसे बहुत से युवाओ से मुझे मिलवाया है जो दुर्लभ प्रजातियो के संरक्षण मे अपनी अप्रत्यक्ष पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। ऐसे युवाओ को कालांतर मे वृक्षो के बडे होने होने पर पारम्परिक चिकित्सक औषधीय उपयोगो के विषय मे बता देते है जिससे युवा न केवल अपना और परिवार का भला कर पाते है बल्कि आस-पास के लोगो को भी रोगो से मुक्ति दिलवा देते है।

क्या बीजो से मोहनी या वशीकरण शक्ति की कपोल-कल्पित बाते जोडना अन्ध-विश्वास को बढावा देना नही है? पारम्परिक चिकित्सक ऐसा नही मानते है। उनका कहना है कि येन-केन-प्रकारेण कैसे भी युवाओ को इस दिशा मे आगे लाना है। आप सीधी भाषा मे लाख समझाये वे प्रेरित नही होते है। वे नवागाँव के उजडते जंगल का उदाहरण देते है जहाँ के ग्रामीण युवाओ को जब यह बताया गया कि यहाँ मोहनी बूटियाँ है तो वे जी-जान से इसे बचाने मे लग गये। ऐसी व्यवस्था की कि कोई बाहरी आदमी अन्दर जा ही

नही पाये। मुझे पारम्परिक चिकित्सको का यह तरीका गलत नही लगता पर मै अपने रास्ते चलना पसन्द करता हूँ। ग्रामीणो युवाओ की तरह मुझे शहर के आम लोगो को वृक्ष लगाने के लिये प्रेरित करने मे कठिनाई होती है। प्रदूषण से बचने के लिये वृक्ष लगाने मे रुचि कम ही ली जाती है पर जब बताया जाता है कि डायबीटीज या ब्लड प्रेशर मे यह उपयोगी है तो बीजो के लिये वे टूट पडते है।

बचपन से ही हर बार रक्षाबन्धन के समय यह ध्यान आता है कि यदि बहने भाईयो को राखी के साथ-साथ औषधीय वनस्पतियो के बीज भी दे और यह वचन ले कि बहन की तरह ही वे बीजो की भी रक्षा करेंगे आजीवन तो इस देश की पर्यावरण से जुडी ज्यादतर समस्याओ का समाधान निकल आयेगा। नाना प्रकार के बीज सरकार की ओर से नि:शुल्क उपलब्ध कराये जाने चाहिये ताकि बहने भाईयो की स्वास्थ्य समस्याओ के आधार पर बीज भेंट कर सके। यदि भाई को मधुमेह है तो कठपीपल के बीज, श्वाँस की बीमारी हो तो डूमर के बीज और ऐसे ही असंख्य विकल्प प्रस्तुत किये जा सकते है। मै अपने लेखो के माध्यम से वर्षो से यह प्रस्ताव समाज के सामने रख रहा हूँ, इस उम्मीद मे कि एक दिन तो समाज इसे मानकर पर्यावरण के प्रति अपनी सजगता का परिचय देगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-60

- **पंकज अवधिया**

रोगो को हरने वाली राखियाँ बन्धवाये इस रक्षाबन्धन मे

पारम्परिक चिकित्सको के साथ इस जंगल यात्रा के दौरान जब एक गाँव मे एक और जानकार को साथ लेने के लिये रुके तो पता चला कि वे बीमार है। तेज ज्वर से तडप रहे है। दवाए उन्हे दी जा रही थी पर फिर भी ज्वर कम नही हो रहा था। वे लगभग बेसुध थे और ज्वर बढने पर प्रलाप भी करते थे। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने खेतो का रुख किया। क्लिंग नामक एक खरसवार को चुना और फिर उसकी जडे खोदने लगे। ताजी जड को नीले धागे मे पिरोया और फिर उसे रोगी की कलाई मे बाँध दिया। मुझे बताया गया कि अब ज्वर कम होने लगेगा। रोगी के परिजनो को हिदायत दी गयी

कि जैसे जी ज्वर कम हो नीले धागे की सहायता से बन्धी जड कलाई से निकाल ले और फिर नीले की जगह लाल धागा बाँध दे। जब ज्वर पूरी तरह से चला जाय तो काले धागे का प्रयोग करे। ज्वर उतरने के चौबीस घंटो के बाद इस जड को या तो पास की नदी मे प्रवाहित कर दे या पुराने पीपल के नीचे गाड दे। इन तमाम निर्देशो के बाद हमने आगे की राह पकडी। शाम को जब लौटे तो रोगी की हालत काफी सुधरी हुयी थी। गाँव के बहुत से लोग जमा थे। वे पारम्परिक चिकित्सको का ही इंतजार कर रहे थे। बहुत से किसानो ने बताया कि क्लिंग को वे कचरे के रुप मे देखते आये है। पहली बार उन्होने इसके जीवनदायिनी गुणो के बारे मे जाना है।

मुझे याद आता है टीबी का एक रोगी जिसे आधुनिक चिकित्सको ने साफ कह दिया था कि अब बचने की कोई उम्मीद नही है। वह रोगी घर के एक कोने ने पडा रहता था। कोई उसके पास नही जाता था। वह मौत का इंतजार कर रहा था और मौत थी कि आती ही नही थी। पारम्परिक चिकित्सको को जब यह पता चला तो वे भाग कर आ गये। वे अंतिम समय तक प्रयास करते रहते है। वे कभी भी हथियार नही डालते। आधुनिक चिकित्सा के महारथियो को भी पारम्परिक चिकित्सको की यह जीवटता भाती है इसलिये भले ही वे अपने रोगियो को मुम्बई, दिल्ली भेजे पर जब उनके परिवार मे संकट आता है तो पारम्परिक चिकित्सको का रुख करते है। टीबी के उस रोगी को पारम्परिक चिकित्सको ने मछलियो और वनस्पतियो की सहायता से फिर से चंगा कर दिया। पर लम्बे संघर्ष ने रोगी की जीवनी शक्ति को कम कर दिया था। पारम्परिक चिकित्सको ने उसे अनोखा उपाय बताया।

अपने साथ जंगल ले जाकर उन्होने ग्यारह तरह की जडो की पहचान करवायी। रोगी को रोज मुँह अन्धेरे जंगल जाना होता। वह विशेष जड एकत्र करता और फिर दिन भर उसे काले धागे की सहायता से कलाई मे बाँधे रहता। दूसरे दिन दूसरी जड का इसी तरह प्रयोग करता। ग्यारह दिनो तक ग्यारह अलग-अलग जडो के अनोखे प्रयोग से उसे लाभ हुआ। पारम्परिक चिकित्सको का कहना था कि वैसे ही रोगी ने इतनी अधिक औषधीयो का सेवन कर लिया है इसलिये और अधिक औषधीयो के सेवन की बजाय यह जरुरी है कि ऐसे अनोखे उपाय अपनाये जाये। यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहूँगा कि अलग-अलग रंगो के धागो के प्रयोग के पीछे वैज्ञानिक कारण है। अपने शोध दस्तावेजो मे मैने इस विषय़ मे विस्तार से लिखा है। यदि आप जानना चाहे तो उन आलेखो को पढे।

मेरे मित्र मुझे आमतौर पर विवाह के दिन आमंत्रित करने की बजाय विवाह के पाँच दिन पहले आमंत्रित करना पसन्द करते है। वे एडी-चोटी का जोर लगा देते है। मुझे जाना ही

होता है। पर मै खाली हाथ तो जा नही सकता। मेरे पास नीले धागो मे गुथी ताजी जड होती है। इस जड को सलीके से वर की कलाई मे बाँध देता हूँ। अब पाँच दिनो तक वर को इसे पहने रहना होता है। ज्यादातर मित्र समझते है कि इसके प्रयोग से उनकी कामशक्ति बढेगी। बहुत से मित्र तो ऐसा दावा भी करते है पर यह अधूरा सच है। मुझे पारम्परिक चिकित्सको से इस अनूठे प्रयोग का पता चला। वे जब भी किसी बीमार पडने वाले व्यक्ति से मिलते है तो इस जड को बिना विलम्ब कलाई मे बाँध देते है। इससे शरीर का बिगडा हुआ संतुलन सही रुप मे आ जाता है और व्यक्ति बीमार पडने से बच जाता है। ऐसी जडो को पारम्परिक चिकित्सक विवाह समरोहो मे भी प्रयोग करते है। वे वर और वधू दोनो के लिये जडो का प्रयोग सुझाते है। उनका कहना है कि वर-वधू के लिये ये दिन बहुत महत्वपूर्ण है। ये जरुरी है कि इन दिनो मे वे प्रसन्न रहे और रोगो से बचे रहे। यह पारम्परिक ज्ञान कारगर है और बहुत अधिक उपयोगी है। आज के समय मे इसका और भी अधिक महत्व है। मैने स्वाइन फ्लू के लिये जो उपाय सुझाये थे उनमे जडो का ऐसा अनूठा प्रयोग भी शामिल था।

अपने वर्षो के अनुभव से मैने जडो और दूसरे वानस्पतिक भागो के हजारो प्रयोगो के विषय मे जानकारियाँ एकत्र की है। बहुत से ऐसे प्रयोगो को आधुनिक विज्ञान की कसौटी मे भी कसा गया है। भारत ही नही बल्कि दुनिया के दूसरे भागो मे भी पारम्परिक चिकित्सक ऐसे प्रयोग सदियो से करते आ रहे है। मै इन प्रयोगो को नयी पीढी के बीच लोकप्रिय करना चाहता हूँ ताकि वे स्वस्थ रह सके। मै इस पारम्परिक ज्ञान के उपयोग से ऐसी राखियाँ बनाने के पक्ष मे हूँ जो भाईयो को रोगो से और आज की दुनिया के मानसिक तनावो से मुक्त रख सके। देश भर मे पारम्परिक चिकित्सको के मार्गदर्शन मे ऐसी राखियाँ बने और भाईयो की कलाईयो मे सजे।

इस वर्ष के रक्षाबन्धन मे तो ऐसी राखियो की उम्मीद करना सही नही है पर मुझे विश्वास है कि आने वाले वर्षो मे इस ओर आम लोगो का ध्यान जायेगा। मै आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि हर वर्ष जिस तरह पारम्परिक चिकित्सक और दूसरे लोग रक्षाबन्धन के दिन मेरे पास आते है वैसे ही आप आयेंगे तो ऐसे रक्षाबन्धनो से आपका भी स्वागत किया जायेगा। हम इस परम्परा को वर्ष मे कई बार अपनाते है और लाभांवित होते है।

ज्यादातर पारम्परिक चिकित्सक जनहित मे इस पारम्परिक ज्ञान को सार्वजनिक करने के पक्ष मे है पर वे इसके गलत व्यवसायिक उपयोग के भय से भी प्रभावित है। उन्होने "रुद्राक्ष माफिया" को फलते-फूलते और उनके हाथो गरीबो को लुटते देखा है। उन्होने यह

भी देखा है कि प्राचीन भारतीय योग कैसे कुछ लोगो की बपौती बन गया है और कैसे इस पारम्परिक ज्ञान से छदम बाबा लोग अरबो कमा रहे है। उन्हे लगता है कि पारम्परिक ज्ञान को सार्वजनिक करते ही कही चैनल वाले बाबाओ की गिद्ध दृष्टि उन पर न गड जाये। उनका डर गलत नही है। मै अपने लेखो मे बार-बार लिखता हूँ कि जब आयुर्वेद पर हर भारतीय का बराबर हक है तो क्यो कुछ कम्पनियाँ और बाबा इस पर अपना वर्चस्व कायम किये हुये है? आयुर्वेद से देश को खरबो की आमदनी होती है और दुनिया भर मे इसका बाजार है तो फिर भारतीयो को इसका लाभ मुफ्त मे मिलना चाहिये। ठीक उसी तरह जैसे पेट्रोल से कमाने वाले अरब देश अपने नागरिको को हिस्सा देते है। क्यो भारतीय पारम्परिक ज्ञान से बने शीतोप्लादि और मधुमेहहर चूर्ण जैसे उत्पाद मनमानी कीमत पर बिकते है जबकि वे हमारे ही जंगल से हमारे ही पारम्परिक ज्ञान के आधार पर बने है। किसने चन्द लोगो को इससे लाभ कमाने का आधिकार दिया है? इस पर खुलकर चर्चा होनी चाहिये।

कल की जंगल यात्रा मुझे राखियो के लिये करनी पडेगी। इस बार जो मित्र और परिजन आने वाले है वे ऐसी राखियाँ चाहते है जो उन्हे कम से कम एक दिन मानसिक तनाव से दूर रख सके और चैन की नीन्द सुला सके। उन्हे निराश करने का मेरा मन बिल्कुल नही है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-61

- **पंकज अवधिया**

दस्तावेजीकरण की राह तकता भारतीय कृषि से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान

रात गहरा रही थी। एक स्थान पर आग जलाकर हम लोग खुले मे बैठे थे। आस-पास कुछ दूरी तक खेत थे और फिर उसके बाद जंगल शुरु होते थे। रात उन बुजुर्ग किसानो के साथ गुजारनी थी जो जंगली सुअरो से अपनी फसल की रक्षा के लिये खेतो पर पहरा दे रहे थे। हमारी गाडी पास ही खडी थी। गाडी मे सोने की बजाय मैने मचान पर बैठना उचित समझा। फिर जब नीचे आग जल गयी तो हम सब नीचे आकर बैठ गये। बुजुर्ग किसानो से पारम्परिक कृषि की बात होने लगी। उन दिनो की बात जब कृषि जंगलो पर

निर्भर थी। बुजुर्ग किसान तब पारम्परिक धान की खेती करते थे। इनमे से बहुत से औषधीय धान भी थे। औषधीय धान पास के नगर मे रहने वाले राज परिवार के लिये उगाया जाता था। राजा के पारम्परिक चिकित्सक यानि राजवैद्य अपनी निगरानी मे इन्हे उगवाते और फिर शाही गाडियो मे लदवाकर नगर ले जाते। उस समय औषधीय धान की खेती किसान और पारम्परिक चिकित्सक मिलकर करते थे।

कृषि की शुरुआत से लेकर फसल की कटाई तक जंगल से एकत्र की गयी वनस्पतियाँ अहम भूमिका निभाती थी। पारम्परिक चिकित्सक जंगल से इन वनस्पतियो को लाते और उनके सत्व तैयार किये जाते। इन सत्वो से जमीन को सींचा जाता। उसके बाद बीजो को उपचारित किया जाता और फिर पूरी फसल के दौरान कई बार इसका छिडकाव किया जाता। यह कृषि उस समय दूसरे किसानो द्वारा की जा रही खेती से एकदम भिन्न थी। बुजुर्ग किसान बताते है कि इस कृषि से उपज कम होती थी पर गुणवत्ता विशेषकर औषधीय गुण चरम पर होते थे। राज परिवार इन्हे नियमित भोजन मे प्रयोग करता था। दूर देश से आने वाले मित्रो और मेहमानो को भी इसे बतौर उपहार दिया जाता था।

मैने बुजुर्गो किसानो से कृषि मे उपयोग होने वाली वनस्पतियो के विषय मे पूछना शुरु किया तो उन्होने दसो वनस्पतियो के नाम बताये। यह भी बताया कि कब उन्हे एकत्र करना है और कैसे सत्व बनाना है? उन्होने कहा कि बहुत सी वनस्पतियाँ अब जंगल मे खोजे नही मिलती है। जडी-बूटियो के व्यापारियो ने जंगल के जंगल साफ कर दिये है। राज परिवार को धान देने से पहले कुछ मात्रा मे वे इसे अपने परिवार के लिये भी रख लेते थे। बुजुर्ग किसान अपने मजबूत काले बालो और अपनी अच्छी सेहत का राज उस समय खाये गये औषधीय धान को देते है और फिर आहे भरकर कहते है कि काश, हमे अभी भी वैसा ही अन्न खाने को मिलता तो परिजन बार-बार बीमार नही पडते। आज बुजुर्ग किसानो के पास पडा यह पारम्परिक ज्ञान रुपी खजाना उनके किसी काम का नही है। वे अब इसे भूलते जा रहे है। कभी ही इसकी चर्चा की जाती है। जब मैने इसमे रुचि दिखायी तो सारी रात वे बिना थके इसके विषय मे बताते रहे।

जब मैने युवा किसानो के साथ औषधीय और सगन्ध फसलो की व्यवसायिक खेती आरम्भ की तो यह पारम्परिक ज्ञान मेरे बहुत काम आया। कृषि से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान (Traditional Agricultural Knowedge) के दस्तावेजीकरण के लिये हमारे देश मे पानी की तरह पैसे बहाये गये। गुजरात से लेकर मध्य प्रदेश तक की संस्थाओ ने अरबो हजम किये पर सही मायने मे किसी ने दस्तावेजीकरण नही किया। जमीन पर अधिक समय बिताने की बजाय महानगरो मे महंगे सम्मेलन आयोजित करने मे सारे

पैसे लगा दिये गये। इसका यह दुष्परिणाम हुआ कि बहुत सा पारम्परिक ज्ञान बुजुर्ग किसानो के साथ समाप्त हो गया। कृषि की शिक्षा के दौरान मैने इस ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे बहुत रुचि ली पर इस ज्ञान को कहाँ और कैसे संरक्षित करुँ, यह किसी ने नही बताया। अपने गुरुजनो को इस विषय मे बताया तो उन्होने बिना विलम्ब इस ज्ञान को अपना बताकर शोध-पत्र प्रकाशित करवा लिये। किसी ने गुजरात की एक संस्था से सम्पर्क करने को कहा पर जब मैने वहाँ जनता की गाढी कमायी का खुल्लमखुल्ला दुरुपयोग देखा तो मन नही हुआ कि दस्तावेज उन्हे सौपूँ। सारा ज्ञान मेरे पास सुरक्षित रखा रहा। पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर अधिक ध्यान देने के कारण मै इस पर कार्य को आगे नही बढा पाया।

कुछ दिनो पहले गुजरात की उसी संस्था की वेबसाइट पर यह जानकारी पढी कि उन्होने 90,000 से अधिक पारम्परिक तकनीको के विषय मे जानकारी एकत्र की है तो मुझे लगा कि अपने पास संरक्षित ज्ञान को मै भी दस्तावेज की तरह प्रस्तुत करुँ। जब मैने पारम्परिक तकनीको को सूचीबद्ध करना शुरु किया तो केवल कीट नियंत्रण की पारम्परिक कृषि तकनीक ही संख्या मे डेढ लाख से अधिक निकली। मुझे पता नही कि उस संस्था ने इतनी तकनीको की जानकारियाँ जुटाने के लिये कितने करोड फूँके पर मै अपने बारे मे यह कह सकता हूँ कि मैने जो भी खर्चा अपनी जेब से खर्चा। अब मै इस ज्ञान को मूल रुप मे सीजीबीडी डेटाबेस के माध्यम से दस्तावेज के रुप मे प्रकाशित करने की योजना बना रहा हूँ।

अपनी हाल की जंगल यात्रा के दौरान जब भी मैने ऐसे किसानो को ढूढने की कोशिश की जो कि पूरी तरह से पारम्परिक कृषि को अपना रहे है तो मुझे असफलता ही हाथ लगी। छोटे से छोटा किसान भी बिना यूरिया के फसल नही उगा रहा है। पारम्परिक कृषि पारम्परिक चिकित्सको के पास कुछ हद तक बची हुयी है। वह भी कितने दिनो तक इसे बचा पायेंगे, कहा नही जा सकता है। अपनी कृषि की शिक्षा के दौरान मै ऐसे संस्थान या विभाग की परिकल्प्ना किया करता था जो छात्रो को देश की पारम्परिक कृषि के विषय मे बताता। छात्र अपने नये विचारो से इस कृषि के ज्ञान को समृद्ध करते और फिर नयी पीढी की खेती के लिये उसका प्रयोग होता। आज हमारे देश मे तो सरकारी कृषि संस्थान विदेशी एजेंडे पर काम कर रहे है। सारे शोध कार्य विदेशो मे प्रस्तुत किये जा रहे है और हमारे किसान आत्महत्या कर रहे है। मुझे नही लगता कि वे पारम्परिक कृषि ज्ञान की कभी सुध लेंगे। हाँ, विदेशो मे बैठे उनके आका यदि उनसे ऐसा करने को कहेंगे और इसके लिये फंड देंगे तो वे डेढ टाँग से तैयार हो जायेंगे। ऐसे मे निजी प्रयास ही कुछ

राहत पहुँचा सकते है पर निजी प्रयास करने वालो को धन और सम्मान की लालसा त्यागनी होगी। मैने इस दिशा मे प्रयास आरम्भ किये है, उम्मीद है और लोग भी जुडेंगे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-62

- **पंकज अवधिया**

जहरीली पिचकारी चलाते कीडे, पौरुष शक्ति बढाने वाले अनोखे कन्द और बरसाती नाले

"अरे, पुल से पानी थोडा ही तो ऊपर है। गाडी आराम से निकल जायेगी। और फिर हम भी साथ है। पानी मे बही तो तुरंत सम्भाल लेंगे। देखिये न पीछे कितनी लम्बी कतार लग गयी है। अब आगे बढिए भी। हमारे दो सौ हमे दे दीजिये।" सामने बरसाती नाला था जो लबालब भरा था। पुल दिख नही रहा था और फिर भी स्थानीय लोग हमारी गाडी को पार कराने अमादा थे। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको और सहायको ने हौसला दिया और मैने गाडी आगे बढा दी। आधा पुल तो पार हो गया पर उसके बाद गढ्ढे ही गढ्ढे थे। शायद पानी की तेज धार ने पुल को काट दिया था। ऐसे फँसे कि गाडी पूरा जोर लगाने के बाद भी टस से मस नही हुयी। फिर पानी का एक रेला आया और उसने गाडी को अपने साथ ले जाने की कोशिश की। सबने आखिरी जोर लगाने की कोशिश की और फिर ले देकर गाडी ने पुल पार कर लिया। हमारी जान मे जान आयी। मैने कान पकडे कि अब दोबारा ऐसा जोखिम नही उठायेंगे। इस जोखिम से एक लाभ हुआ। सामने हरा-भरा जंगल था जो हमारा ही इंतजार कर रहा था।

साथी जंगल मे बिखर गये और मै तस्वीरे लेने लगा। पारम्परिक चिकित्सक लौटे तो उनके हाथो मे चार प्रकार की जंगली हल्दी थी। जंगली हल्दी आजकल मुश्किल से मिलती है और फिर एक साथ चार प्रकारो का मिलना हमारे लिये शुभ संकेत था। हल्दी छोडकर पारम्परिक चिकित्सक फिर जंगल मे ओझल हो गये। मै अकेले ही निकल पडा। मुझे बहुत से कीट ऐसे दिखायी दिये जिन्हे मै पहली बार देख रहा था। मै उन्हे मित्र के रुप मे देख रहा था पर वे मुझे मित्र मानने को तैयार नही थे। उनमे से एक ने पिचकारी मारी और मै तेज धार से मुश्किल से बचा। यह पिचकारी जहरीले रसायन की थी। यह

रसायन मेरी त्वचा को बुरी तरह से जला देता। पर मै बच गया। जब उसका जहर भरा पिटारा चुक गया तो मैने आराम से उसकी ढेरो तस्वीरे ली।

पिछले कुछ दिन बहुत तेजी से बीते। आपने इस लेखमाला मे पहले पढा है कि मै कृषि से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान पर शोध दस्तावेज तैयार कर रहा हूँ। मैने अगस्त मे प्रतिदिन 14 से 16 घंटे इसमे लगाने का मन बनाया था। जुलाई के अंत से ही यह काम शुरु हो गया था। अगस्त के प्रथम सप्ताह से ऐसी व्यस्तता बढी कि सारे काम किनारे हो गये। जंगल का भ्रमण रुक गया। जीवन-व्यापन के लिये सलाहकार का काम भी अटक गया। बस केवल दस्तावेजीकरण ही दस्तावेजीकरण। लम्बे समय तक कम्प्यूटर मे बैठना इस बार कुछ ज्यादा ही भारी लगा। जब पूरी तरह से थक गया तो जंगल की सुध ली। जंगल से लौटकर फिर काम मे लग गया। नियमित सलाह लेने वाले मेरे लगातार इंकार से कुछ चिंतित थे। मेरा सचिव उन्हे दिसम्बर के बाद का समय दे रहा था। धान मे कीट प्रबन्धन के पारम्परिक कृषि ज्ञान के आठ हजार दस्तावेज पूरे ही हुये थे कि मुम्बई से एक सज्जन का सन्देश आ गया।

उन्होने अपने फार्म हाउस मे औषधीय वनस्पतियाँ लगायी थी। वे मुझे अपना फार्म दिखाकर सलाह लेना चाहते थे। शुल्क देने को तैयार थे और मेरी यात्रा का व्यय भी। सचिव ने जब व्यस्तता बतायी तो उन्होने समय बचाने के लिये हवाई यात्रा का सुझाव दिया। मुझे इस बारे मे बताया गया। उनकी जिद पर मुझसे बात करवायी गयी। उन्होने जब हवाई यात्रा का खुलासा किया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। उनके पास निजी विमान था और वे उसे भेजकर मुझे बुलवाना चाहते थे। निजी विमान से आने का निमंत्रण नया नही था पर फार्म हाउस देखने के लिये कोई शाही सवारी भेजे तो कुछ अचरज अवश्य होता है। घर-परिवार मे प्राइवेट जेट से बुलाये जाने की खबर फैली तो सबने कहा कि शान से जाओ। पर मेरा मन दस्तावेजीकरण मे उलझा हुआ था। काफी सोच-विचार करने के बाद सितम्बर मे इस शाही सवारी से जाने की योजना बनायी है। वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिये उनसे आरम्भिक बातचीत हो गयी है। वे इस चर्चा से संतुष्ट है। इन सब गतिविधियो ने मुझे जंगल डायरी लेखन से एकदम अलग कर दिया है। कल सुबह फिर से जंगल की ओर जाना है। इसलिये आज रात मैने इस लेखमाला को आगे बढाने का निर्णय ले लिया है। यह लेखमाला रुक-रुक कर आगे बढेगी क्योकि आने वाले महिने व्यस्तता भरे है।

चलिये अब उस जंगल की ओर लौटे जहाँ तक हम बरसाती नाले को जैसे-तैसे पार कर पहुँचे थे। इस बार जब पारम्परिक चिकित्सक लौटे तो उनके हाथो मे कन्द थे। उन्होने

कन्दो को धोया और फिर हमे खाने को दिया। कन्द बिल्कुल भी स्वादिष्ट नही थे। उनमे काफी चिपचिपापन था। इन्हे पौष्टिक़ बताया गया। सो हमने चाव से खाया। उसके बाद जब हम घर से लाया गया खाना खाने बैठे तो पारम्परिक चिकित्सको ने बडे अचरज वाली बात बतायी। उन्होने कहा कि ये कन्द शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढाते है। इसके अवयव शरीर मे रच बस जाते है। इतने ज्यादा कि कई दिनो तक वीर्य का स्वाद मीठा बना रहता है। यह तो बडी ही उबकाई लाने वाली बात लगी। हमारा ड्रायवर तो खाना आधा छोडकर उठ गया और पास की झाडी मे जाकर उल्टियाँ करने लगा। पारम्परिक चिकित्सको ने गलत समय पर इस खुलासे के लिये क्षमा माँगी। मुझे भी अटपटा लगा। पर उसी पल मुझे सन्दर्भ साहित्यो मे पढी गयी बाते याद आ गयी। साथ ही इंटरनेट मे विचरने वाले अनसुलझे प्रश्न याद आ गये।

चिकित्सा विज्ञान से जुडे सन्दर्भ साहित्य बताते है कि वीर्य का स्वाद मनुष्य के भोजन पर निर्भर करता है। कैफीन का अधिक सेवन करने वालो के वीर्य का स्वाद कडवा को जाता है। खाद्य सामग्रियाँ वीर्य का स्वाद चरपरा और तीखा भी बना देती है। आम लोगो को इन तथ्यो से कोई वास्ता भले न हो पर चिकित्सा विज्ञान के शोधकर्ताओ ने इस पर काफी अध्ययन किया है। मैने वीर्य को मीठा बनाने वाली वनस्पति के बारे मे विस्तार से पहली बार सुना था। मन मे यह जिज्ञासा जागी कि पारम्परिक चिकित्सको ने भला यह कैसे जाना?

आपने बाटेनिकल डाट काम पर मेरे शोध दस्तावेज पढे है तो आप जानते ही होंगे कि बहुत से पारम्परिक चिकित्सक औषधीय बीजो को बोने से पहले मानव वीर्य से उपचारित करते है। क्यो करते है? क्योकि यह उनकी परम्परा है। इसकी वैज्ञानिक व्याख्या शायद ही किसी ने की हो पर मैने प्रयोगशाला परिस्थितियो मे उनके इस परम्परागत प्रयोग को दोहरा कर उसके सकारात्मक प्रभाव का अध्ययन किया है। पारम्परिक चिकित्सको ने देखा कि जब वे विशेष कन्द मूलो को खाने के बाद वीर्य का प्रयोग बीजोपचार के लिये करते है तो उनमे चीटी जैसे बहुत से कीट टूट पडते है। इससे उन्होने इस बात की पुष्टि की कि विशेष कन्द मूलो का सेवन वीर्य को मीठा बना दे रहा है। मै अचरज भरे मन से पारम्परिक चिकित्सको की बाते सुन रहा था और उनके गहरे ज्ञान से अभिभूत हो रहा था।

भोजन के बाद हमने आगे की राह पकडी। कुछ दूर गये ही थे कि एक और बरसाती नाला सामने था। उसे पार करवाने वाला कोई नही था। बडी गाडियाँ अपने जोखिम पर निकल रही थी। हमने वापसी की राह पकडी। वापस गये तो पहले वाले नाले मे पानी का

स्तर बढ चुका था। शायद ऊपरी भाग मे वर्षा हुयी थी जिसके कारण यह जल स्तर बढा था। हम फँस गये। शाम होने लगी। मोबाइल महाश्य टावर खोज-खोज कर थक चुके थे। देर रात तक वहाँ रुकना था। शाम तक जंगल मे घूमते रहे और फिर रात होते ही गाडी के पास आ गये। आग जलायी और फिर पानी के उतरने का इंतजार करने लगे। खाना हमारे पास नही था। वे ही कन्द थे जिन्हे हमे खाना था।

बाते चलती रही। मै बीच-बीच मे अपनी जंगल टार्च से आस-पास देख लेता था कि कही कोई जंगली जानवार भी जडी-बूटियो की बात सुनने न आ गया हो। कुछ आँखे चमकती थी पर पारम्परिक चिकित्सक बिना विलम्ब उन्हे छोटे जानवर की आँखे कह देते थे। करीब दस बजे मैने पानी का स्तर देखने के लिये रोशनी उस ओर फेंकी तो सडक पर पडे लम्बे साँप ने ध्यान खीचा। कोबरा जैसा ही था पर उससे बहुत अधिक लम्बा। वह अपनी मस्ती मे चला जा रहा था। मै नही डरा पर पारम्परिक चिकित्सको ने कहा कि डरो क्योकि यह अहिराज है यानि किंग कोबरा। यह हमे नुकसान नही पहुँचायेगा पर चूँकि यह साँपो का राजा है इसलिये हमे इसका सम्मान करना चाहिये। इससे डरना चाहिये। किंग कोबरा को देखकर मै धन्य हुआ। ऐसा मंत्रमुग्ध हुआ कि तस्वीर लेना ही भूल गया।

रात दो के आस-पास कुछ ट्रके उस ओर दिखायी दी। एक वैन भी थी। जल स्तर कम होने लगा था। ट्रक निकली और फिर वैन। उसके बाद हमने भी हिम्मत दिखायी और पुल पार कर लिया। बरसाती दिनो मे इतनी देर रात जंगल से गुजरना बडा ही रोमांचक अनुभव रहा। इस बीच मोबाइल ने टावर खोज लिया। घर पर बात हुयी और सारी चिंताए दूर हुयी। रात को लगातार चलने की बजाय हमने सुबह पाँच बजे एक गाँव मे रुकने की योजना बनायी। चाय की तलब लग रही थी। एक टपरेनुमा होटल के मालिक को जगाया और उससे आलू-पोहा और लाल चाय बनाने को कहा। वह भला आदमी था। उसने तैयारी शुरु कर दी।

बाते चलती रही। गाँव जागने लगा। तभी हमने बाहर डोंगी उठाये कुछ लोगो को जाते देखा। मछुआरे होंगे, मैने कयास लगाया। होटल वाले ने कहा कि नही किसान है। फसल देखने जा रहे है। मैने सोचा कि शायद मैने गलत सुन लिया है। जब उसने वही बात दोहरायी तो विश्वास करना ही पडा। बाद मे खुलासा हुआ कि यहाँ जलधान की खेती होती है। डूबान क्षेत्र मे किसान सूखे खेतो मे धान छिडक देते है। पानी गिरता है तो उनके खेत डूबने लगते है। जैसे-जैसे जल का स्तर बढता है, धान के पौधे भी बढते जाते है और फिर फसल पकने पर नाव मे बैठकर कटाई होती है। यह सब सुनकर हमने नाश्ता करके

आराम करने की बजाय किसानो के साथ इस अनोखे धान को देखने की योजना बनायी। कुछ ही देर मे हम भी डोंगी उठाने मे किसानो की मदद कर रहे थे। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-63

- **पंकज अवधिया**

पानी मे डूबे गाँवो का अनकहा दर्द, स्त्री रोगो के लिये उपयोगी वनस्पतियाँ और सलिहा

दूर-दूर तक पानी ही पानी था। मै अपलक इस मनोहारी दृश्य को निहार रहा था। दूर पानी के बीच पहाडो के शीर्ष दिख रहे थे जो सघन वनस्पतियो से ढके हुये थे। तभी पास खडे व्यक्ति ने कहा कि साहब, आप जो सामने पानी देख रहे है उसमे 52 गाँव डूबे हुये है। मै चौक पडा। दिख तो कुछ भी नही रहा था पर उस व्यक्ति की बाते सुनकर परिकल्प्ना से बने दृश्य सामने आ गये। मै छत्तीसगढ के गंगरेल बाँध के पीछे वाले हिस्से के जंगलो मे खडा था। यह बाँध कई दशक पहले महानदी पर बनाया गया था। आज यह बाँध जाने कितने लोगो की प्यास बुझा रहे है और कितने ही खेतो को पानी दे रहा है। बाँध की इस उपलब्धि के सामने 52 डूबे हुये गाँबो का दुख कम दिखता है पर घर से बिछडने का दुख वही जानता है जिस पर यह गुजरती है।

कुछ समय पहले मै घने जंगल मे औषधीय बेलो के चित्र ले रहा था। पास ही उफनती पैरी नदी थी। मै वर्षो से यहाँ आ रहा हूँ। हर बार मुझे कुछ नया मिल ही जाता है। मुझे इस क्षेत्र से मोह हो गया है पर मै चाहकर भी प्रेम नही करना चाहता। यह प्रेम स्थायी नही होगा। यह वह क्षेत्र है जो निकट भविष्य़ मे पानी के भीतर समा जायेगा। यहाँ भी एक बाँध बनने जा रहा है। यह बाँध नयी राजधानी की प्यास बुझायेगा। मुआवजा बाँटा जा रहा है। डूबान क्षेत्र का बोर्ड लगा दिया गया है। वहाँ से निवासी पूरी तरह से इस बाँध निर्माण के प्रति जागरुक है। पर यहाँ असंख्य ऐसे भी निवासी है जिन्हे इसके बारे मे नही बताया गया है और शायद बताया भी नही जायेगा। जिस दिन यह क्षेत्र डूबेगा पानी के साथ ये निवासी भी काल के गाल मे समा जायेंगे। मै असंख्य जीव-जंतुओ की बात कर रहा हूँ जो हमारी तरह ही इस धरती के निवासी है। बाँध बनाना यदि जरुरी हो तो

बनाये जाये पर विस्थापितो मे केवल मनुष्य ही नही शामिल किये जाये। वनस्पतियो और उन पर आश्रित असंख्य जीवो के पुनरस्थापन की भी योजना हो।

गंगरेल के पानी से आधे डूबे एक गाँव मे मुझे एक ऐसे व्यक्ति मिले जिनके नाते रिश्तेदार इस आधे डूबे गाँव को उसके हाल मे छोडकर शहरो मे बस गये। बुजुर्ग व्यक्ति अब अपनी बूढी पत्नी के साथ दूसरे गाँव वालो के साथ रहते है। उनकी कोई संतान नही है। उन्होने बताया कि 52 गाँव और डूबे क्षेत्र मे घने जंगल थे। जब पानी भरना शुरु हुआ तो गाँव वाले अपने मवेशियो के साथ सुरक्षित जगहो पर आ गये पर वनस्पतियो और दूसरे प्राणी देखते ही देखते पानी मे समा गये। उन्होने दो बाघो को पानी मे समाते देखा था। उस समय यह क्षेत्र बाघो और दूसरे खूँखार जीवो के लिये प्रसिद्ध था। आज जंगली जानवरो के नाम पर इस क्षेत्र मे भालू अधिक संख्या मे है। पहाडियो के ऊपर जिन गाँवो वालो ने शरण ली, भालुओ ने भी वही ठिकाना बना लिया।

अपनी गाडी गाँव मे ही खडी कर मै स्थानीय लोगो के साथ जंगल मे काफी देर तक तस्वीरे लेता रहा। यह क्षेत्र जैव-विविधता से पूर्ण लगा। जडी-बूटियो के व्यापारी शायद यहाँ तक नही पहुँचे है इसीलिये दूसरे स्थानो मे दुर्लभ हो चुकी बहुत सी वनस्पतियाँ यहाँ मजे से उग रही थी। इन वनस्पतियो के बचे होने के दूसरे कारण भी है। आजकल दैनिक मजदूरी इतनी अधिक हो गयी है कि व्यापारी अधिक महंगी जडी-बूटियो के लिये ही वनवासियो को जंगलो मे भेजते है। इससे कम कीमत वाली जडी-बूटियाँ बच जाती है। एक अनोखी बात यह भी बता चली कि इस क्षेत्र मे पारम्परिक चिकित्सक कम है। इससे आम लोगो मे वनस्पतियो के औषधीय उपयोग के विषय़ मे कम जानकारी है। ज्यादातर लोग खेती करते है और मछली पकडते है। बहुत से लोग मजदूरी के लिये आस-पास के गाँवो मे चले जाते है।

यह सौभाग्य की बात थी कि हमारे साथ दूसरे क्षेत्र के एक पारम्परिक चिकित्सक थे। वे भी इस क्षेत्र की जैव-विविधता से मुग्ध थे। वे अपनी आवश्यकता की जडी-बूटियाँ एकत्र कर रहे थे। उन्होने चट्टानो के बीच हमे एक अनोखी वनस्पति दिखायी और बताया कि इस वनस्पति से स्त्री रोगो की चिकित्सा की जाती है। औषधीय चावल को पकाकर कुछ समय तक इस वनस्पति की चौडी पत्तियो मे रखा जाता है और फिर रोगियो को दिया जाता है। उन्होने दावा किया कि बहुत से रोगो की आरम्भिक अवस्था मे यह सरल प्रयोग लाभ पहुँचाता है। जिन्हे किसी तरह का रोग नही हो ऐसी महिलाओ को भी इन पत्तियो का ऐसा प्रयोग करना चाहिये। मैने उस वनस्पति की तस्वीरे खीची और उसकी वैज्ञानिक पहचान का प्रयास करने लगा। इसी उधेडबुन मे मुझे उडीसा के नियमगिरि क्षेत्र

के पारम्परिक चिकित्सको की बाते याद आने लगी। वे भी स्त्री रोगो के लिये इसी वनस्पति का प्रयोग करते है पर रोगो की पुरानी अवस्था मे वे एक-एक करके बारह तक वनस्पतियाँ बढाते जाते है। रोग की बढी हुयी अवस्था मे बारह अलग-अलग किस्म की वनस्पतियो मे गरम भात परोसा जाता है और फिर एक-एक कौर के रुप मे रोगी को खाने को दिया जाता है।

साथ चल रहे एक बुजुर्ग व्यक्ति कुछ लंगडाकर चल रहे थे। घुटने मे समस्या थी। उन्हे नही मालूम था कि उनके मर्ज का इलाज उन्ही के जंगलो मे था। मैने सलिहा नामक पेड की पहचान बतायी और उससे गोन्द एकत्र करने की विधि बतायी। फिर गोन्द के आँतरिक प्रयोग की विधि विस्तार से समझायी। उन्हे यह भी बताना नही भूला कि कितनी अवधि के बाद दोबारा गोन्द एकत्र किया जाये ताकि पेड बेमौत न मारे जाये। पेड को धार्मिक आस्था से जोडते हुये उनसे अनुरोध किया कि यदि स्थिति सुधरे तो हर सोमवार को पाँच विशेष वनस्पतियो के सत्व से इस पेड को सींच कर धन्यवाद दे दीजियेगा। दरअसल ये सत्व सलिहा को साल दर साल तक सुरक्षित रखेंगे। बुजुर्ग सहर्ष तैयार हो गये और बोल पडे कि पेड को सोमवार को धन्यवाद देने आना है और आपको? मैने कहा कि आपको लाभ हो तो यह विधि मूल रुप मे बिना शुल्क लिये दूसरो को बताइयेगा, मेरा धन्यवाद हो जायेगा।

जंगल मे अपनी विद्वता झाडने के लाभ भी है और नुकसान भी। लाभ यह कि लोगो से आत्मीय सम्बन्ध बन जाते है और नुकसान यह कि बहुत बार ऐसे ज्ञान को जानकर साथ चल रहे लोग आपको विद्वान मानकर मौन धारण कर लेते है और जानकर भी कुछ नही बोलते है इस गलताहमी मे कि ये तो सब जानते है। पर किसी को स्वास्थ्य सम्बन्धी तकलीफ मे देखकर मन रुक नही पाता है।

इस लेखमाला के पिछले लेख मे जलधान पर बात अटकी थी। इन दोनो जंगल यात्राओ के दौरान औषधीय धान पर ढेरो जानकारियाँ मिली। आने वाले लेखो मे मै इस पर लिखने की कोशिश करुंगा। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-64

- **पंकज अवधिया**

अहिराज, चिंगराज व भृंगराज से परिचय और साँपो से जुडी कुछ अनोखी बाते

कुछ लोगो को एक स्थान पर खडा देखकर मैने गाडी रोकी। पास जाने पर पता चला कि किसी के घर मे एक साँप घुस गया था। अभी ही उसे मारा गया था। सामने साँप पडा था। उसका सिर कुचला हुआ था पर उसमे जान थी। उसका शरीर हरकते कर रहा था। इसे चूहा खाने वाला साँप बताया जा रहा था। यह नुकसानदायक नही है-ऐसा भी लोग कह रहे थे पर उसे देखने से मन मे भय उत्पन्न हो जाता था। बडा ही लम्बा साँप था। मुझे सर्प-विज्ञान का वह नियम याद आ गया कि जितना बडा साँप उतना कम जहर। पर यह सभी मामलो मे सही नही है। आधुनिक सन्दर्भ ग्रंथ बताते है कि लम्बे साँप भी जहरीले हो सकते है।

जिन्होने इस साँप को मारा था वे महुए के नशे मे धुत थे। मेरा कैमरा देखकर जोश से भर गये। उन्होने साँप को अपने गले मे डालना चाहा पर उसमे जान थी। वह जमीन मे गिर गया। गाँव के बुजुर्ग उसे जलाने की तैयारी कर रहे थे। भीड मे से किसी ने कहा कि पहले इसे पूरा मार तो दो। क्यो आधा मारकर तडपने देते हो? यह आवाज भीड मे ही खो गयी। साँप तडपता रहा। उसके सिर पर जोर का वार हुआ था। सिर पिचका हुआ था। मेरे साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि इसे पानी मे छोड दिया जाये तो यह बच सकता है। भीड मे कोई उसे बचाने को तैयार नही था। लोगो ने कहा कि हम जमीन पर सोते है और साँप का सम्मान करते है पर इतने बडे साँप को हम बार-बार खदेड नही सकते है। लोगो का यह भी कहना था कि यदि आप ले जाना चाहे तो इसे गाँव से दूर ले जा सकते है। घायल साँप को देखकर उसे गाडी मे ले जाने की हमारी हिम्मत नही हो रही थी। उसे इस अवस्था मे दुश्मन और दोस्त मे अंतर करना शायद ही मालूम हो। मोबाइल करके पास के ग्रामीण सर्प विशेषज्ञ को बुलाया गया। उसने साँप की जाँच की और कहा कि बहुत देर हो चुकी है।

इस जंगल यात्रा मे ध्यान तो बरसात मे उगने वाली जडी-बूटियो पर था पर साँप के विषय मे भी अनूठी जानकारियाँ मिलती रही। एक स्थान पर हमे बताया गया कि पास के एक नाले मे बाढ के पानी के साथ अजगर बहकर आया है। गाडी से उस ओर गये पर सफलता हाथ नही लगी। फिर सूचना मिली कि घर मे बनायी गयी एक डबरी मे अजगर ने सियार को निगल लिया है। वह घर पास मे ही था पर एक उफनते नाले के कारण वहाँ नही जा सके।

साँपो पर चर्चा के दौरान मुझे अहिराज के अलावा चिंगराज और भृंगराज साँपो के बारे मे जानने मिला। इन दोनो साँपो का विस्तार से वर्णन ग्रामीणो ने किया। बताया कि दोनो विकट जहर से युक्त है। भृंगराज नाम की वनस्पति मै जानता हूँ पर इस नाम का साँप आश्चर्य का विषय रहा। जंगल की खाक छानने पर ये साँप दिखते है। ग्रामीण साथ चलने को तैयार दिखे पर मैने पूरी योजना के साथ सुबह से जाने की योजना बनायी। फिर इस कार्यक्रम को दशहरे तक टाल दिया। जंगल मे साँपो को खोजने के लिये थोडा सूखा मौसम चाहिये-ऐसा ग्रामीणो ने कहा।

बातो ही बातो मे कुछ ऐसे साँपो की बात पता चली जो कि जंगल मे लोगो का पीछा करते है। यह डराने वाली बात थी। वे गलत नही कह रहे थे। राज्य के अखबार ऐसे साँपो के जंगलो मे होने की खबरे विशेषज्ञो के हवाले से प्रकाशित करते रहते है। मुझे हरजंगतिया नामक साँप के विषय मे भी बताया गया कि जो एक पेड से दूसरे पेड तक छलाँग (?) लगाते हुये चलते है। चिंगराज, भृंगराज, हरजंगतिया जैसे स्थानीय नाम वैज्ञानिक साहित्यो मे नही मिलते है। जब तक इन्हे मै देख न लूँ ग्रामीणो की बातो के आधार पर हवा मे तीर मारना बेकार है।

दशहरे के बाद की यात्रा मे मुझे कौआ अर्थात महुये के फल की खली रखने को कहा गया है। यह खली और माचिस अभियान दल के हर सदस्य के पास होगी। यदि किसी साँप ने परेशान किया तो इसे बिना देर जलाया जायेगा ताकि इसकी गन्ध से वे दूर हो जाये। एक सदस्य पर संकट आते ही दूसरे सदस्य वहाँ पहुँचेंगे और यह प्रक्रिया दोहरायेंगे। वैसे विकल्प के रुप मे मिट्टी का तेल या टायर भी जलाया जा सकता है पर सबसे अच्छा उपाय यही है आपातकालीन परिस्थितियो मे। पर क्या साँप हमारे पीछे पडेंगे? यदि हाँ, तो जोखिम क्यो उठाया जाय? क्यो व्यर्थ ही उन्हे छेडा जाय? इस पर काफी देर तक हम चर्चा करते रहे।

राज्य मे पैरी नदी पर सिकासार बाँध है। अवकाश के दिन काफी लोग यहाँ पहुँचते है। क्षेत्रीय फिल्मो की शूटिंग भी होती है। मै अक्सर इस बाँध को पारकर उस पार के जंगल मे चला जाता हूँ जहाँ विविधता अब भी चरम पर है। हाल की जंगल यात्रा के दौरान श्री गणेश नामक एक पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ मेरे साथ थे। मैने अपने लेखो मे उनके बारे मे विस्तार से लिखा है। उन्होने हजारो जाने बचायी है। उनके सैकडो चेले है। इस जंगल यात्रा के दौरान मैने उन्हे साथ ले लिया। वे बता रहे थे कि पिछले सप्ताह एक सत्रह-अठ्ठारह साल के युवक को पैरावट मे एक जहरीले सर्प ने काट लिया था। शहर ले जाते-

जाते देर हो गयी। सरकारी अस्पताल ने हाथ खडे कर दिये। वापस गाँव मे श्री गणेश के पास उसे लाया गया। घंटो की अथक मेहनत से उन्होने उस युवक को बचा लिया। पर उनकी अपनी हालत बिगड गयी। मुँह मे छाले हो गये जो अभी तक उन्हे तकलीफ पहुँचा रहे थे। उनका खाना-पीना बन्द हो गया था। उन्हे इस बात का अहसास हो रहा था कि साँप बहुत जहरीला था।

मैने अपने ज्ञान के आधार पर उन्हे कुछ वनस्पतियाँ बतायी और फिर जंगल मे गाडी रोककर उन्हे चबाने के लिये कुछ जडे दी। कुछ घंटो मे छालो पर असर दिखने लगा। वे बडे प्रसन्न हुये। मै उन्हे गुरु मानता हूँ पर उल्टे वे मुझे अपना गुरु मानते है। वे चाहे जो कहे पर मै जानता हूँ कि मुझे उनके जैसा बनने के लिये कई जन्म लेने होंगे।

चलिये सिकासार बाँध पर लौटते है। जिन स्थानो मे फिल्मो की शूटिंग होती है वहाँ इस बार खाली-खाली सा लगा। मैने वहाँ के एक कर्मचारी से इस बारे मे पूछा तो उसने कहा कि पिछले कुछ दिनो से वहाँ साँप दिख रहे है। इसलिये लोग डर से नही जा रहे है। कुछ देर बाद मैने यही बात श्री गणेश को बतायी तो उन्होने सिर पकड लिया और कहा कि मुझसे बडी गल्ती हो गयी। उन्होने खुलासा किया कि पंचमी के दिन उनके चेलो ने उन्हे जो साँप भेंट मे दिये थे उन्हे सिकासार के इसी इलाके मे छोडा गया था। "मेरे सगे-सम्बन्धी (यानि वे साँप) ऐसा कर रहे है तो उसके लिये मै जिम्मेदार हूँ।" ऐसा कहकर वे उस ओर चल पडे। उन्होने उसी स्थान पर बैठकर मंत्र पढे इस उम्मीद मे कि शायद कोई साँप आ जाये। उनकी योजना उन्हे फिर से पकडकर पर्यटको से दूर छोडने की थी। पर घंटो मे इंतजार के बाद भी यह सम्भव नही हो पाया।

हर साल वनोपज के संग्रह के लिये वनवासी जंगल मे आग लगाते है। योजनाकार यह कहकर किनारा कर लेते है कि यह दशको से चला आ रहा है और इससे जंगल को नुकसान नही होता है। बल्कि कुछ मामलो मे फायदा ही होता है। पर जमीनी हकीकत कुछ और ही है। इस आग से बहुत से जीवो पर संकट खडा हो जाता है। साँप उनमे से एक है। ग्रामीण सर्प विशेषज्ञ बताते है कि इस आग ने जंगलो से बहुत से दुर्लभ साँपो को खत्म कर दिया है। हर साल आग का दायरा बढता जा रहा है और साँपो पर खतरा भी। **(क्रमशः)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मेरी जंगल डायरी से कुछ पन्ने-65

- **पंकज अवधिया**

तंग पिंजरो मे अघोषित आजीवन कारावास भुगतते वन्य प्राणी और उनसे जुडी बाते

कल्पना करिये कि आप रोजमर्रा के कामकाज मे लगे है। अचानक ही दूसरे ग्रह के लोग आये और आपको उठा ले। तंग कमरे मे आपको रखे और फिर अगले दिन आपके शहर से सैकडो किलोमीटर दूर ऐसी जगह पर छोड दे जहाँ आप कभी गये ही नही है। फिर आपको उस जगह पर रहने के लिये मजबूर करे। आपको सब कुछ शुरु से शुरु करना होगा। पता नही ऐसे माहौल मे आप अपने अस्तित्व को कायम रख पायेंगे भी कि नही। आप इसे सीधे-सीधे अन्याय कहेंगे। खैर, आप निश्चिंत रहे क्योकि आप इंसान है और यह आपके साथ शायद ही हो पर ऐसा व्यव्हार वन्य प्राणियो के साथ अक्सर होता है। उन्हे दूसरे ग्रहो के लोग इधर से उधर नही करते बल्कि हम-आप जैसे लोग ही करते है। हाल ही मे मै एक पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ से यह चर्चा कर रहा था।

ऊपर से जंगल भले ही शांत लगे पर भीतर भारी संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष अस्तित्व के लिये होता है। जंगल मे असंख्य खतरे होते है और कडा संघर्ष ही अधिक समय तक जीने देता है। जिस स्थान पर वन्य प्राणी जन्मते है उसके आस-पास से वे परिचित रहते है। वही वे बडे होते है और जीवन के लिये संघर्ष करते है। इन प्राणियो के इलाके बँटे होते है और इलाको के लिये इनमे जबरस्त संघर्ष होता है। मैने पिछले लेखो मे लिखा है कि कैसे पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ श्री गणेश के चेले जंगल से नाना प्रकार के साँप पकडकर लाते है और फिर पंचमी के दिन उन्हे दूसरे जंगलो मे छोड दिया जाता है। छोडने से पहले उनकी पूजा की जाती है और सर्प उत्सव मनाया जाता है। जंगल मे सर्प को वापस छोडना निश्चित ही साँपो के प्रति उनकी जिम्मेदारी को दर्शाता है। मै इस परम्परा का प्रशंसक रहा हूँ पर एक ही प्रश्न मुझे लम्बे समय से कचोटता रहा है कि साँपो को वापस उसी स्थान पर क्यो नही छोडा जाता? क्यो नये जंगल मे छोडा जाता है, जहाँ उन्हे जीवन के लिये संघर्ष एक बार फिर से आरम्भ करना होता है? इसका जवाब किसी के पास नही होता है। ज्यादातर लोग इस बारे मे सोचना ही नही चाहते पर वे लोग जो जंगलो मे रहते है वे इस बलात स्थान परिवर्तन को सही नही मानते है।

हाल की जंगल यात्रा के दौरान मैने यह बात श्री गणेश के सामने रखी। गम्भीरतापूर्वक मेरी बाते सुनने के बाद उन्होने मेरे प्रश्न को सही ठहराया। वे दशको से ऐसा कर रहे है। उन्होने बताया कि एक साल के अंतराल मे जब वे वापस उसी स्थान पर जाते है जहाँ उन्होने साँपो को छोडा था तो बहुत बार वे वहाँ नही मिलते है। कई बार वे एक बडे कुनबे के रुप मे मिलते है। उनकी संख्या बढ चुकी होती है। उन्होने मुझे आश्वासन दिया कि अपने चेलो के सामने वे यह बात रखेंगे और सम्भव हुआ तो अगले साल से सारे साँप उसी स्थान पर वापस छोडे जायेंगे जहाँ से इन्हे एकत्र किया गया था।

बलात स्थान परिवर्तन तेन्दुओ के साथ भी किया जाता है। यदि किसी क्षेत्र मे किसी तेन्दुए ने उत्पात मचाया और ग्रामीणो ने शिकायत की तो वन विभाग तेन्दुओ को पकड लेता है फिर दूसरे स्थान पर छोड देता है। मेरे वन अधिकारी मित्र इसे मानव अपराधियो को जिलाबदर करने के उदाहरण से समझाते है। पर यह जरुरी नही कि जिलाबदर किया गया अपराधी दूसरे जिले मे अपराध करे ही ना। फिर तेन्दुए अपराधी नही है। मनुष्य ने उनका निवास स्थान उजाडा है न कि तेन्दुए ने यह किया है। तेन्दुए के पास जंगल नही है और न ही भोजन। ऐसे मे वह मानव आबादी की तरफ क्यो नही आयेगा? दूसरे स्थान पर छोडे गये तेन्दुए कुछ समय तक तो जंगल की खाक छानते है। यदि वहाँ पहले से तेन्दुए है तो इलाके की लडाई होती है। और फिर थक-हारकर वे फिर से आस-पास के गाँवो का रुख करते है। फिर शिकायत होती है और तेन्दुए को पकडकर चिडियाघर मे बन्द कर दिया जाता है आजीवन कारावास की अघोषित सजा सुनाकर।

अपनी मस्ती से जंगल मे जीने वले तेन्दुओ और दूसरे बडे प्राणियो को तंग पिंजरो मे क्यो रखा जाता है? यह बात मुझे कभी समझ मे नही आयी। फन्दे से घायल हुये वन्य प्राणियो को तंग पिंजरो मे रखकर आसानी से दवा दी जा सकती है, भोजन दिया जा सकता है पर ताउम्र उन्हे ऐसे स्थान पर रखना भला कहाँ की इंसानियत है? शहरो मे आम लोगो को काटते आवारा कुत्तो के पक्ष मे आवाज उठाने वाले और सर्कस मे जीवो पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ मोर्चा खोलने वाले लोग क्यो तंग पिंजरो मे बन्द वन्य प्राणियो को देखकर मुँह मोड लेते है, यह बात समझ से परे है। मैने देखा है कि वन्य प्राणी खाना-पीना भूलकर पिंजरे को तोडने की जुगत मे रहते है। हाल मे रायपुर के पास स्थित एक चिडियाघर से एक भालू पिन्जरा तोडकर भाग गया। वन विभाग के लोग नहा-धोकर उसके पीछे लगे रहे। पर उसकी किस्मत अच्छी थी जो वह वापस जंगलो मे भाग गया।

कुछ दिनो पहले एक समाचार ने मन को खिन्न कर दिया। मरवाही क्षेत्र मे एक बैजर देखा गया। इसे दुर्लभ बताया गया। समाचार के अनुसार, वन विभाग को जब इसका पता चला तो उसने गाँव मे फन्दा लगाया और उसे पकड लिया। अब इसे चिडियाघर मे रखा जायेगा। यह समाचार साधारण समाचार लग सकता है पर कोई यह बताये कि इसमे उस बैजर का क्या कसूर है? वह मजे से जंगल मे घूम रहा था। उसकी बुरी किस्मत जो मनुष्यो की नजर उस पर पड गयी। बैजर का परिवार होगा जो उसका इंतजार करता होगा। उसका अपना जीवन होगा। ऐसे मे उसे फन्दा लगाकर पकडना और फिर चिडियाघर मे तंग पिंजरे मे बन्द कर देना, क्या अमानवीय कदम नही है? उस समाचार के अनुसार, अब चिडियाघर मे उसके प्रजनन के प्रयास किये जायेंगे। कृत्रिम परिस्थितियो मे प्रजनन टेढी खीर है। राज्य मे जंगली मैना को पिंजरे मे बन्दकर प्रजनन कराने के नाम पर लाखो रुपये फूँके जा चुके है पर नतीजा सिफर ही रहा है। क्यो नही बैजर के लिये फन्दा लगाने की बजाय उस पर नजर रखी जाती? आस-पास के लोगो को उसके महत्व के विषय मे बताया जाता? जिस भी पर्यावरणप्रेमी ने यह समाचार पढा उसने तीखी प्रतिक्रिया दी। कुछ स्थानीय नेताओ ने भी स्थानीय अखबारो के माध्यम से अपना विरोध दर्ज कराया। पता नही, जंगल के अधिकारिक रखवाले किस नीति के तहत वन्य प्राणियो के साथ ऐसा सौतेला व्यव्हार करते है?

देश मे वन प्रबन्धन के ढेरो छोटे-बडे संस्थान है। इन पर जनता की गाढी कमायी का अरबो रुपया व्यय होता है। ये बडी-बडी बाते करते है पर जमीनी स्तर पर वन प्रबन्धन के नाम पर इनका योगदान नही दिखता। उल्टे ये वनवासियो के पारम्परिक वन प्रबन्धन से सीखकर शोध-पत्र छापते है और फिर उस पर इतराते है। आज जब मनुष्यो और वन्य प्राणियो मे टकराव निर्णायक मोड की ओर आ रहा है, ऐसे विकट समय मे राष्ट्रीय चर्चा के माध्यम से सार्थक वन्य प्राणी प्रबन्धन नीतियाँ बनाने और उन्हे अमलीजामा पहनाने की जरुरत है। **(क्रमश:)**

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित